प्रकाशक :
सत्यदेव वर्मा, बी. ए., एल-एल बी.
मयूर प्रकाशन प्रा० लि० झाँसी

प्रथम संस्करण १९५७
द्वितीय संस्करण १९५९
तृतीय संस्करण १९६०
छठवां संस्करण १९६८
मूल्य साढ़े तीन रुपया

मुद्रक
रामसेवक खड्ग
स्वाधीन प्रेस, झाँसी

परिचय

वैदिक काल के एक अङ्ग पर कुछ लिखने की बहुत समय से इच्छा थी। उस काल की तरुण और सद्य ओजस्विता का स्पन्दन इतिहास और कथाओं में स्थान स्थान पर मिलता है। विकास का क्रम अनन्त है और मानव की वह ओजस्विता भी। किसी किसी युग में विकास-क्रम में कुछ कड़ियां सड़ी गली और निर्बल भी दिखलाई पड़ती हैं—हमारे ही देश मे नहीं, पृथ्वी के अन्य भागों में भी। इनके होते हुये भी मानव विकास मार्ग मे अग्रसर होता रहता है, भले ही समीचीन रूप से वह दिखलाई न पड़े। मानव सम्पूर्णतया कभी अशक्त नही होता, हो नहीं सकता—यदि ऐसा हो तो सृष्टि का कार्य खण्डित हो जाय। हमें अपने समाज मे जो कुछ भी शिथिलता, अकर्मण्यता और ऊँचे आदर्श के प्रति गतिहीनता दिखलाई पड़ती है वह विकास के क्रम की एक कडी मात्र है जो चिरकाल तक नही रह सकती। प्रश्न जो ऐसी परिस्थिति मे उठता है वह है—कब तक यह अवस्था चलेगी? कब तक इसे रहने दिया जावे अथवा सहन किया जावे? जैसे ही उसके उत्तर की बात सोची जाती है, प्रश्न समस्या का रूप धारण कर लेता है। प्रगति की बात सोचते ही समस्या के सुलझाव को तत्काल गति देने के उपायों पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है।

अनेक लोग प्रातः और सन्ध्या संकल्प करते हैं कि हम सौ वर्ष जियें, सौ शरद ऋतुयें देखें, सौ वर्ष तक बोलते और कार्य करते रहें इत्यादि। परन्तु कैसे? दूसरों का शोषण करके? मनमाने भोग-विलास के संसर्ग में रहते हुए? जब तक जीवन मे संयम और रहन-सहन में अनुशासन न वर्ता जाय यह सम्भव नही। वैसी चाह का बना रहना नैसर्गिक है, परन्तु इस कामना के मन मे बसे रहने मात्र से होता ही क्या है?

प्राचीन काल में संयम और अनुशासन की परिपाटी का विवेक के साथ अनुशीलन किया जाता था। उद्देश्य में अस्पष्टता नहीं थी, मन मे भ्रम को वसने नही दिया जाता था। कार्य-विधि मे दृढ़ संकल्प से काम लिया जाता था। इसीलिये जीवन की विविध झांकियों में ओज की सघता और तरुणता दिखलाई पड़ती है। आर्थिक कठिनाइयां प्रत्येक युग में मानव को संतप्त करने के लिये खड़ी हो हो जाती है और वह उनका सामना करता है। आर्थिक कठिनाइयो के अतिरिक्त मानसिक और आध्यात्मिक उलझनें भी मनुष्य को दुर्वल वनाने मे कसर नही लगातीं। आर्थिक क्लेशों के साथ जव ये भी लग जाती हैं तब तो कष्टों की दुस्सहता बहुत वढ जाती है। इन सबके होते हुये मनुष्य कैसे कामना करे कि वल पराक्रम से संयुक्त रहकर सौ सुहावनी शरदों को देखता रहूं ? अपनी कठिनाई स्पष्ट समझ में आ जावे और मति-विभ्रम न हो तो दृढ़ संकल्प के आश्रय से मनुष्य अवश्य आगे वढ सकता है। प्रकृति की क्रियाओ मे आतङ्क और सलोनापन दोनो हैं। मानव उस आतङ्क से भयभीत न होकर प्रकृति के सलोनेपन मे से अपने मन के लिये शक्ति और पुरुषार्थ को खीचे तो वह निस्सन्देह अपनी उस स्वच्छ कामना को सफल कर सकता है जो उस प्रार्थना मे व्याप्त है—मैं सौ सौ शरद ऋतुओ को अदीन होकर देखता रहूँ।

समाज में जब विभ्रम और भय का घुन लग जाता है, आस्था निर्वल हो जाती है, संकल्प चञ्चल हो उठता है, पर-शोषण वढ़ जाता है, अहंकार, दम्भ और अनृत के हठ की वाढ़ आ जाती तव विकासक्रम की कड़ी गलित दिखलाई पड़ने लगती है।

फिर भी मानव रटता रहता है—मैं सौ बरस तक जीवित रहूं ! सो कैसे ? विकास-क्रम का नियम केवल रट को कभी सफल नही होने देगा। इस सङ्कल्प को और भी कई तत्वो की सङ्गति चाहिये। उनमें बुद्धि और विवेक का वहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

जिस काल मे इस शिव-सङ्कल्प को बुद्धि और विवेक का सहयोग प्राप्त रहा होगा उस काल मे भी मानव के सामने कठिनाइयों और बाधाओ के पहाड आ खड़े होते होगे और वह उनका सफलता के साथ प्रतिरोध करता होगा। प्राचीन के इतिहास और साहित्य में इस तथ्य के उदाहरण सुने थे। सोचा कुछ अधिक हस्तगत करने का प्रयत्न करूँ।

एक दिन इसी उधेडबुन मे था कि अपनी छोटी सी बालिका को एक पुस्तक मे पढते हुये सुना—अयोध्या के एक राजा थे। बहुत अकाल पड़े। प्रजा दुखी हो गई। राजा को किसी ऋषि ने बतलाया कि तुम्हारे राज्य मे एक शूद्र तपस्या कर रहा है इसलिये अकाल पर अकाल पड़ रहे हैं, उसे मार दो तो अकाल का युग समाप्त हो जावेगा। राजा ने कहा, 'मैं राज्य छोड़ने को तैयार हूं, परन्तु यह कुकर्म करने को तैयार नही।' इस पर ऋषि ने कहा कि मैं तो तुम्हारी परीक्षा ले रहा था।

इस कहानी ने अनेक सुझाव दिये और मैं उसके मूल स्रोत की ओर आकृष्ट हुआ।

डाक्टर नारायणचन्द्र वन्द्योपाध्याय की पुस्तक "Economic life and progress in Ancient India" पृष्ठ ३२५ पर रोमपाद नाम के अयोध्या नरेश के राज्य काल मे भयानक अकाल पड़ने का वृत्तान्त मिला। अकाल का विस्तृत ब्योरा वाल्मीकि रामायण में है। रोमपाद को मैंने उपन्यास मे रोमक कर दिया है, क्योकि अयोध्या नरेशों की एक वंशावलि मे रोमपाद नाम नही आया है, रोमक आया है और मुझे यही नाम अच्छा लगा। रोमक के पुत्र का नाम कुछ और था, परन्तु मैंने उसके सुन्दर और कल्याणकारी पराक्रम के कारण उसका नाम बदल दिया है। उसी के नाम पर यह उपन्यास है।

उत्तरवैदिक काल मे दासता का एक रूप समाज में प्रचलित था। द्विज तक दास हो जाते थे। ऋण न चुका पाने पर स्वतंत्र-जन को दास हो जाना पड़ता था। दासोद्धार के उपाय भी थे (डाक्टर वन्द्योपाध्याय की वही पुस्तक पृ० २६५--२६८) उत्तरवैदिक काल में

पणि (फिनीशियन) आर्यावर्त्त में व्यापार करते थे। उनके बड़े-बड़े पोत चलते थे। थे व्याजभोगी। सम्भव है आज का 'बनिया' शब्द वणिक का अपभ्रन्श न होकर पणि का ही रूपान्तर हो। दास बनाने वाले व्याजभोगियों के प्रति आर्यों की घृणा स्वाभाविक थी। आर्य वणिक कृषि और वाणिज्य करते थे, पणियों के प्रधान व्यवसाय व्यापार और लेन-देन था।

तत्कालीन समाज का स्थिति-चित्रण इस उपन्यास में करने की चेष्टा की गई है। राजा ने अखण्ड और अनियन्त्रित सत्ताधारी का रूप प्राप्त नही कर पाया था। गौतम धर्म सूत्र से एकादश अध्याय में—'राजा सर्वस्योष्टो ब्राह्मण वर्जम्'—'ब्राह्मण को छोड़ राजा सब का अधिपति है' पीछे की बात है। उत्तरवैदिक काल मे राजा को चुनने और निकाल देने तथा फिर चुन लेने का अधिकार समिति को था—'ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह'···तथा···नाऽस्मै कल्पते (Dr. Radha Kumud Mukurji's Hindu civilization P. 99 और P. 106—अथर्ववेद ३ : ३ : ४; ६ : ८८; ५ : १९) समिति का सभापति ईशान कहलाता था। चुनाव की प्रथा वही थी जो यहा दी गई है। राजा के पदच्युत किये जाने या वक नियत समय के लिये निकाल देने की प्रथा भी थी जिसका वर्णन उपन्यास में आया है। देश के प्रति जनता में गाढ़ा प्रेम था। उसकी प्रतिध्वनि मनुस्मृति और श्री मद्भागवत मे 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की सूक्ति में आई है। ऋग्वेद मे स्वराज्य का शब्द स्पष्ट रूप से आया है—यतेमहि स्वराज्ये (५ · ६६ : ६) हम स्वराज्य के लिये प्रयत्नशील रहे। यह वह युग है जब साधारण आर्यजन का मन घोर विपत्तियों और कठिनाइयो के सामने न तो झुकता था और न थकता था—तरुण, तेजस्वी और सदा ओज से भरा हुआ। वे एक दूसरे से कहते थे—उद्‌बुध्यध्व समनस. सखायः (ऋ० १० : १०१ : १)—मित्रो, एक मन होकर चलो। उसके पुरुष र्थपूर्ण सिद्धान्त ये थे :—

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः (अथर्व—७ : ५२ : ८) यदि पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ मे है तो विजय बायें हाथ मे बनी बनाई। परन्तु उनका पुरुषार्थ धर्म—संलग्न रहता था। अकेला, कोरा, पुरुषार्थ नही, प्रत्युत ऋत—धर्म से संचालित पुरुषार्थ। यही आगे चलकर महाभारत में यतोधर्मस्ततो जय. हुआ।

अरिस्टास्याम तन्वा सुवीरा. (अथर्व—५ : ३ :) हम शरीर से निरोग रहे और उदात्त वीर बनें। अदीनास्याम शरद: शतम्—अदीन होकर सौ बरस जियें (यजुर्वेद-३६ : २४) कुर्वन्ने वेह कर्माणि जिजीवि-षेच्छतं समा: (यजु०—४० : २ संसार मे मनुष्य कर्म करता हुआ सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। परन्तु उस समय का जन घमण्डी नही था। वह प्रार्थना करता था—उतदेव अवहितं देवा उन्नयथा पुनः (ऋग्वेद १० : १३७ : १) देव, मुझ गिरे हुये को पुनः ऊपर उठाओ। और, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु (यजु—३४ : १) मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो। निर्भय बने रहने के लिये ऋग्वेद की शौनक संहिता मे तो बहुत ही सुन्दर और सीधे सूक्त हैं (शौनक सहिता २ : १५) इनका सार धौम्य ऋषि के मुह से कहलवाया गया है। धौम्य ऋषि के लिए प्रसिद्ध है कि वे अकल्याणी परम्पराओं का उल्लङ्घन कर डालते थे। ऋषि के ब्रह्मचर्याश्रम में शूद्र राजा की अनुमति से प्रवेश पा सकता था जैसा कि उपन्यास के कपिञ्जल ने कहा है। परन्तु जिस काल में ब्रह्म वेत्ता ब्राह्मण के कहने पर राजा को चलना पड़ता था उस काल के लिये वह बात उपयुक्त नही जान पड़ती है। मैंने धौम्य का उपयोग इसको चरितार्थ करने के लिए किया है। महाभारत के शान्ति पर्व (६३ वें अध्याय) में शूद्र के आश्रम प्रवेश के सम्बन्ध में राजा को अनुमति का जो आदेश है वह अथर्व की इस सूक्ति के पीछे की सामाजिक और राजनैतिक अवस्था का द्योतक है—आरोहण मक्रमणंजीवतो जीवतोऽयनम् (अथर्व. ५ : ३० :७)—ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीवन का लक्ष्य है। उस समय की टकसाल का सर्व

स्वीकृत और सर्वमान्य सिक्का पुरुषार्थ था—इच्छन्ति देवा सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति (ऋग्वेद ८ : २ : १८) देवगण पुरुषार्थी को चाहते हैं, सोये हुये को नही। शतहस्त समाहर सहस्र संकिर (अथर्व ३ : २४ : ५)—सैकड़ों हाथों से इकट्ठा करो और सहस्रों से बांट दो। जो श्रम करते थे उन्ही को समिति मे जाने और बोलने का अधिकार था—न नः स समितिं गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत्कृपिम (महाभारत उद्योग पर्व ३६–३१)—हमारी समिति में वह न आवे जो स्वयं खेती नही करता। मनुस्मृति (अध्याय ४ श्लोक ३०, १९२, १९७, १९८) में पाखण्डी द्विजो की विकट विडम्बना की गई है। यहाँ तक कहा गया है कि उन से कोई बात न करे, उन्हें कोई पानी पीने तक को न दे! इस प्रकरण को मैंने भारतरत्न डाक्टर भगवानदास की पुस्तिका 'शास्त्र-वाद बनाम बुद्धिवाद' से लिया है जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूं।

उस समय के प्रवुद्धजन चाहते थे कि हम सबको मित्र की आंख से देखें (यजु–३६ : १८) किसी की सम्पत्ति का लालच न करें (माकृधः कस्यस्विधनम्—यजुर्वेद ४० : १) ऋतस्य पन्था न तरन्ति दुष्कृतः (ऋ० ९ : ७३ : ६) दुष्कर्मी मनुष्य सत्यमार्ग को पार नही कर सकते। न ऋते श्रान्तस्य सख्या देवाः (ऋ—४ : ३३ : ११) देवगण तपस्वी को छोड़कर दूसरे के मित्र नही हो सकते। इसका आश्रय कपिञ्जल की तपस्या के सम्बन्ध मे लिया गया है। भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वप्नम् यजु०—३० : १९)—सजगता वैभव देती है, सोना और आलस्य मे पड़े रहना दरिद्रता को वुलाता है। विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नाहरम् (ऋ०—१ : ११४ : १) इस गाव के सब लोग स्वस्थ और निरोग रहें। इत्यादि सूक्तिया पुरुषार्थ और शुभ संकल्पो से पूर्ण हैं। इदं नम ऋषभ्यः पूर्वजेभ्य. पृथिकृद्भ्य.—(ऋ० १० : १४ : १५) पूर्वकाल के पूर्वज ऋषियों को नमस्कार है जिन्होने अज्ञान के अँधेरे वाले जङ्गल को पार करने के लिये नये नये मार्गों का निर्माण किया। विकास की धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये जब तक इन मार्गों का सृजन होता

रहा अज्ञान का अन्धकार उस युग के मानव को भटका न सका। जब कभी वह धारा रुद्ध हुई सत्पुरुषार्थ ने उस धारा को फिर से प्रवाहित किया।

उस अवरोध को दूर करने की पुनः पुनः आवश्यकता पडती है। ऊपर जिन सिद्धान्तों का सक्षेप मे वर्णन किया गया है वे सार्वभौम और सर्वकालीन हैं और सदा सर्वदा उपयोगी हैं। जिस युग मे ये सिद्धान्त सामाजिक जीवन के प्राण थे उस युग की स्फूर्ति, शक्ति, तरुणता और जीवन का क्या कहना है। प्रबुद्ध चेतना प्रबल व्यक्तित्व का सिर ऊँचा किये रहती थी। केवल शक्ति को पाशविक समझा जाता था। शक्ति और शील का समन्वय था। ऐसे युग के मानव जिस प्राजल–उल्लास और सच्ची लगन के साथ उषा के गीत गाते होगे उसकी अब तो कल्पना ही की जा सकती है (ऋग्वेद—उषो येते प्रयायेषु युजते मनोदानाय सूरयः। अत्राह तत्कण्व एषा कण्वतमोनाम गृणातिनृणाम इत्यादि प्रथम मण्डल के ४८ : ४; ४९ . २—४; ९२ : १, ४, ६; ११३ : ४, ८, ११, १६; और सातवें मण्डल के ८० : २ मन्त्र)। ये इतने सुन्दर हैं कि उस युग से आज तक के उषा गीतो मे कोई उनकी सीधी सच्ची सुन्दर और चमत्कारपूर्ण भावना की बराबरी नही कर सका। चेष्टा की है कि उस काल के वातावरण मे इनको प्रस्तुत किया जावे। आजकल भी भारत के प्रत्येक भाग मे लुनाई मिड़ाई (ये दोनो शब्द वैदिक संस्कृत से निकले हैं) के समय किसान गीत गाते हैं, परन्तु वह सीधी जीवट और आश्वस्त भावना आजकल के इन गीतो में नही पाई जाती है। इसका कारण है वर्तमान काल का किसान दीर्घकाल से पिसता चला आ रहा है।

प्रकृति से तो वह अनादि काल से ही लोहा लेता चला आया था, फिर अपने सहवासी मनुष्यों की भी मार खानी पड़ी। इसलिये वर्तमान के लोकगीतो में वह दम नही मिलती जो वैदिक काल के गीतों में पाई जाती है।

उस समय के समाज की आर्थिक दशा क्या रही होगी ? प्राचीन साहित्य से इसका पता लगता है। जन-संख्या कम थी, परन्तु उपलब्ध उर्वरा भूमि की जनसंख्या के अनुपात में बहुत नहीं थी। विशाल वन, खेती और जनता का संहार करने वाले वन्य पशु और कीट भी बहुत थे। जो कोई जङ्गल काटकर खेती करे भूमि उसी की। केवल 'वलि' या कर देना पड़ता था। उत्तरवैदिक काल में राजा का अपने पूरे रूप में विकास हो चुका था यद्यपि राजसत्ता अनियन्त्रित नहीं थी। सत्ता पर विद्वान ब्राह्मणों, समिति और सभा का अंकुश रहता था। सभा स्थानिक और छोटी होती थी। समिति जनपद के प्रतिनिधियों की सामूहिक शक्ति का संग्रह थी। तो भी राजा के पुत्र (टीन), लोहा, ताम्बा, पत्थर इत्यादि की खानो का जो कर मिलता था वह उसका निजी कोष हो चला था। राजा खेती भी करवाता था। एक निवर्तन भूमि लगभग बीस हाथ लम्बी और दस हाथ चौड़ी होती थी। जैसे जैसे उर्वरा भूमि का विस्तार बढ़ता गया राजा के निवर्तनों की सख्या बढ़ती चली गई। इन निवर्तनों में निराश्रित श्रमिकों से खेती करवाई जाती थी। किसी न किसी प्रकार— कभी साधारण गति से और कभी दण्डस्वरूप—राजा के निवर्तन बढते चले गये। अकालों पर अकाल जब जब पड़े कृषकों ने भूमि छोड़ी और राजा ने ले ली। इस प्रकार राजा एक बडा भूमि—स्वामी हो गया और उसकी सत्ता का वृत्त भी प्रशस्त हो गया। विष्टि, कोर्वी (वेगार) ली जाने लगी और श्रमिक की स्वतन्त्रता संकुचित होने लगी। व्याज की दर बढ़ी, इतनी कि साधारण जन के लिये असह्य हो गई। वहुत प्रयत्न के उपरान्त स्मृतिकारों ने उसकी सीमा वांध पाई—दुगने से अधिक कोई न ले सके। (रा० कु० मुकर्जी की पुस्तक Hindu Civilization पृ० २९९ जातक १ १४९—३, ३७० जा० १,३३९)

सूत, रथकार, कर्मार (लुहार), तन्तुवाय (बुनने वाले), नर्त्तक, गायक, तुन्नवाय (दर्जी) इत्यादि सब श्रेणियों या संघों में विभक्त और संगठित थे। किसी किसी का कहना है कि तुन्नवाय उस काल में नहीं थे,

क्योंकि सुई और सिलाई से तत्कालीन आर्यो का परिचय न था। मुझे यह धारणा मान्य नही है। कुर्तक (कुर्ता), जङ्घ (जांघिया) इत्यादि पहने जाते थे। तेज छुरे बनते थे और शूचिकायें (सुइयां) भी। दशार्ण (आजकल का बुन्देलखन्ड) की तलवार तो उत्तरवैदिक काल में ही विख्यात हो चुकी थी।

श्रमिकों को एक पण से लेकर छः पण तक नित्य 'वेतन'—पारिश्रमिक—दिया जाता था। स्त्रियां नृत्य करती थी, परन्तु इनकी सिखलाने वाली स्त्रियां ही होती थी और वे प्रायः पुरुषो के समक्ष नही नचती थी। नादी (बाँसुरी), मन्जीर, झाझ, मृदङ्ग, वीणा इत्यादि वाद्य थे और पूरे स्वरो मे गायन होता था। नर्त्तकी, गायक और अभिनेताओ को सम्मान प्राप्त था। वाल्मीकि के अयोध्याकांड मे इन्हे राष्ट्र का चमत्कार बढ़ाने वाला कहा गया है। नाटकशालाओ और रंगशालाओं को समाज प्रेक्षणी कहते थे। जुआ खेलने का दोष भी था, परन्तु इसे निंद्य और तिरस्कार के योग्य समझा जाता था। साठ वर्ष की आयु का पुरुष अपने को जवान कहता था, वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड मे बतलाया गया है। वाल्मीकि रामायण का संकलन चाहे जब हुआ हो उसकी कथा और धारणा सङ्कलन के बहुत पहले की है।

यज्ञ होते थे, परन्तु उनकी अति के वर्जन का भी यहां वहा संकेत पाया जाता है। महाभारत मे 'अग्नि के कुपच' का वर्णन आया है।

सड़को की धूल दबाने के लिये पानी का छिड़काव किया जाता था और रात मे प्रकाश के लिये दीप स्तम्भों की व्यवस्था भी थी।

पूग (क्लब) और भोजनालय थे। सेव, अनार, केले, नारङ्गी इत्यादि फल सुलभ थे।

आदि से अन्त तक जीवन के लिये सजीवता और सजावट की सीधी सादी और ताजी सामग्री थी। बनावट और तड़क-भड़क कम थी। मानव अपने जीवन के उल्लासमय निकट सम्पर्क मे संयम और अनुशासन के निर्देशन के कारण पूरे आनन्द का पात्र होने की समर्थता रखता था।

द्वेष, मत्सर, हिंसा और परिग्रह का तिरस्कार किया जाता था। इसलिये विश्वास के साथ सच्चे सुख का संग्रह करने मे उत्तर वैदिक काल के जन को किसी बड़ी कठिनाई का सामना नही करना पड़ता था।

बिना संयम और अनुशासन के जीवन की गाड़ी आगे नही बढ़ाई जा सकती। प्राचीन साहित्य मे स्थान स्थान पर इसका विवेचन और पोषण किया गया है। वर्तमान समाज की अनुशासन हीनता से जब प्राचीन काल के समाज की संयम शीलता की तुलना करते हैं तब आश्चर्य होता है कि क्या से क्या हो गया है! वेद नामक शिष्य के कन्धों पर धौम्य ऋषि ने बैलो का जुआं रखवाया—सम्भवत वेद का अहङ्कार या कोई ऐसा दोष दमित करने के लिये। महाभारत मे यह कथा दी गई है। गुरु से बढकर, कदाचित् वह शिष्य था जिसने इतने कड़े अनुशासन को चुपचाप सह लिया! परन्तु उस काल मे बड़े पुरुषों के बनाने की विधि थी, केवल टेढ़े तिरछे यन्त्रों के निर्माण की नही!!

उस काल की एक झांकी के प्रस्तुत करने का प्रयत्न इस पुस्तक में किया गया है। इस विषय के एक अङ्ग पर मैंने 'ललित विक्रम' नाम का नाटक भी लिखा है। परन्तु 'भुवन विक्रम' (उपन्यास) में उससे कही अधिक चरित्र और घटनायें इत्यादि हैं। उस काल के सलोनेपन, जीवट, संयम और सद्यता को हम आज के जीवन में उतार सकें तो क्या बात है।

वृन्दावनलाल वर्मा

भुवन विक्रम

कई सहस्र वर्ष बीत गये होगे—

[१]

शरद ऋतु के भोर का सूर्य क्षितिज से ऊपर चढ आया था। थोड़े से पक्षी इधर-उधर उड़ते हुये चहक रहे थे या भोजन के लिये तड़प रहे थे, कौन जाने।

अयोध्या नगरी के बाहर ऊँचे नीचे और समतल मैदान की झुलसी हुई सी छोटी-छोटी झाड़ियों मे और कोई चहल-पहल नही थी। झाड़ियो के सिरों को ढोरों ने नोच खाया था। शाखों में उमगती हुई घुडियां फूट रही थी, परन्तु उनमे होनहार लक्षण नही थे। इधर-उधर सूखी घास के चकत्तों के नीचे से छोटी-छोटी दूबा निकल पड़ने के लिये आतुर नही मालूम होती थी, दूबा की सीकें ऊपर मरी-मरी सी थीं, नीचे के प्राण अब तब कर रहे थे। पृथ्वी पर जहाँ तहाँ भूरी कर्कश धूल थी, एक घूमते-फिरते चक्करदार मार्ग पर कही कही ढेर की ढेर। चिड़ियाँ जो चहक रही थी, सरयू नदी की ओर उसकी छोटी-सी पतली धार और उथले छिछले डाबरों की छोटी-छोटी मछलियों और केंकड़ों के पकड़ने की धुन मे उड़ी चली जा रही थी। आपस में लड़ भी रही-थी।

लगातार पांच वर्षों से अकाल पर अकाल पड़ रहा था। पानी नही वरसा और थोड़ा वरसा भी तो जैसे तवे पर बूंद।

भोर की मन्द समीर अब भी वैसी ही गति से चल रही थी। रथ्या* की दो प्रतिकूल दिशाओं में धूल के दो बवण्डर उठे—आगे की ओर घने और पीछे की ओर पतले—जैसे दो पुच्छल तारे हों। आंधी नहीं चल रही थी, फिर भी वे पुञ्ज उठे और अपनी पूंछ की धूल को मुर्झाई हुई झाड़ी की अधसूखी डालों पर छोड़ने बिठलाने लगे। आगे के पुञ्ज झाड़ियों के सिरों पर मण्डला-मण्डला जा रहे थे। सूर्य की किरणें उनके रूखे रङ्ग को थोड़ी सी गहराई दे रही थी। एक सिरे के पुञ्ज से एक रथ और दूसरे सिरे के पुञ्ज से दूसरा रथ निकला। किरणों ने इन दोनो को दमका दिया। दोनों में भिन्न-भिन्न रङ्ग के घोड़े जुते हुये थे। मार्ग पर एक ऐसी मोड़ और झाड़ी थी कि एक रथ वाला दूसरे को नही देख सकता था।

मोड़ पर मार्ग इतना सकरा और झाड़ी बहुत बौनी होते हुये भी इतनी घनी थी कि जब थोड़ी देर में दोनो रथ एक दूसरे के सामने आ गये तब एक दूसरे को निकास न दे सके। रुक सकते थे - रुके भी नही। घोड़े से घोड़े जा टकराये। एक रथ के घोड़ों का फेन दूसरे रथ के घोड़ों के फेन से उलझ गया।

एक रथ पर एक युवती थी और दूसरे पर एक युवक। युवक की आयु पन्द्रह वर्ष के लगभग होगी। शरीर सुडौल और चेहरे का बनाव आकर्षक। देह से लगता था जैसे आयु कुछ अधिक हो, पर चेहरे से अधकचरापन झलकता था। युवती शरीर और चेहरे मोहरे—दोनों—से वय में बड़ी चढ़ी दिखती थी, होगी वह भी इसी आयु की। दोनों की भौंहें सिकुडी, पर युवती की बड़ी आंखों पर सिकुड़न गहरी, युवक की बड़ी बरौनियो के ऊपर पतली सी भौंहो के बीच मे कम। लगता था कि युवती सामने वाले रथ पर अपने घोड़ों को चढ़ाये देती है। युवक

*रथ्या—राज मार्ग

ने अपने घोड़ों की रास खींची, घोड़े फुफकारते हुये जरा-सा पीछे हटे। युवती ने भी अपने घोड़ों को रोका। युवक उतर पड़ा।

बोला,—'एक तरफ करलो ! हटो !!' स्वर तेज था, परन्तु उसमे खरखराहट नही थी—अभी गले के दाने अच्छी तरह नही उभरे थे।

कोड़ा हाथ में लिये युवती भी उतर पड़ी।

'कहां करलें ? जगह ही नही।' युवती का स्वर पैना था जैसे मोर का जो बरसात के बादलो को देखकर नही, दूसरी मोर को लड़ने के लिये चुनौती देती हुई चीख़ती है।

क्रोध के मारे युवक हांफने लगा। उसकी हांफ मे से निकला— 'जानती हो मैं कौन हूँ ?—अयोध्या का राजकुमार भुवनविक्रम···' अपना नाम लेते ही युवक का चेहरा फूल उठा, काली पुतलियों वाली बड़ी आँखें फैल गईं और भौहों की सिकुड़न कम हो गई।

'और मैं हूँ श्रीमान नील फणिश की पुत्री·· जिनका नाम यहाँ और समुद्रो के पार भी प्रसिद्ध है !' लड़की जरा भी नही सकुची दबकी। उसकी भूरी आंखें लाल हो गईं और भौंहें वैसी ही तनी हुईं बीच की सिकुडन उतनी ही गहरी। नाक का एक नथना जरा ऊपर खिच गया।

उसने—जिसने अपना नाम भुवनविक्रम बतलाया था—युवती को नीचे से ऊपर तक देखा। आर्य नारी की वेशभूषा से भिन्न। और न वह शील-संकोच। भुवनविक्रम की मुट्ठी जिसमे वह कोड़ा लिये था ढीली पड़ गई। उसने दांत भीचते हुये अपने घोड़े को पीछे हटाया।

संदर्भ को ध्यान में टिकाकर उसने कहा,—'हाँ हाँ और भी बहुत कुछ सुना है। तुम्हारा नाम हिमानी है। हिमानी स्त्री के लिये मार्ग छोड़ता हूं, नही तो·· ' अन्तिम शब्द उसके होठों में से कुछ धीरे निकले, पर हिमानी के कान मे पड़ गये। सुन्दर गोरे चेहरे के लाल पतले होठों को फैलाती हुई हिमानी अपने रथ पर चढ गई।

भुवन ने नही सुन पाया—'नहीं तो···नहीं तो···! क्या कर लेता नही तो···?' क्योंकि वह अपने घोड़ों को खींचखांच कर झाड़ी पर चढ़ रहा था।

जब मार्ग निर्बाध हो गया हिमानी ने अपना रथ हांका। उसके चेहरे पर विजय का अहङ्कार कुछ क्षण ही खेल पाया था कि उसे एक विचार ने कोंचा। जब उसके बराबर से थोड़ा सा आगे निकल गई रथ को रोक कर बोली,—'कहां जा रहे थे राजकुमार?' स्वर में मिठास का प्रयास था, परन्तु स्वभाव साथ नहीं दे पाया।

'कही भी···' भुवन का अप्रासंगिक उत्तर था। फिर तुरन्त उसके दर्प ने सम्भाला,—'लक्ष्यवेध के लिये···' वह अधिक नही कह सका। जैसे किसी ने गला दवा दिया हो।

'कभी मैं भी आकर देखूंगी,' मुस्कराने की चेष्टा करती हुई हिमानी चली गई। भुवन ने वह मुस्कान नही देख पाई, और न शब्द सुन पाये।

झाड़ी में से रथ को फिर मार्ग पर ले आया। घोड़ो की आँखें जल रही थी और मुंह से फेन टपक रहा था। भुवन के भड़भड़ाते हुये भाव 'हुँ!' शब्द के छोटे मे कलेवर मे बैठकर वह गये। भुवन ने इधर-उधर आँखें पसारी कि कोई और तो नही देख रहा है। घोड़े जो देख रहे थे कह ही क्या सकते थे। सोच-विचार में डूवता उतराता-सा वह दूसरी दिशा में अपना रथ हाँक ले गया।

[२]

सरयू नदी की धार पतली होने पर गहरी थी। अयोध्या-जनपद और उसके पडोसी जनपदों में पानी नही बरसा था, परन्तु हिमालय और उसकी तराई मे फिर भी थोड़ा बहुत बरसता रहा था। सरयू में नावें आती-जाती थीं जिन पर बड़े व्योपारियों का माल लदता-उतरता था। यहाँ से कपड़ा, मोरों के पंखे, मिर्च, मसाले, सुगन्ध, बढ़िया लोहे के हथियार, जब फसल अच्छी हो तब अन्न, तेल, भँजे हुये रस्से इत्यादि बाहर जाते थे—बाबुल (बावेरु) फणिश (फिनीलिया) मिस्र, अरब इत्यादि देशों को; और वहाँ से बढ़िया कम्बल, सोना चाँदी, मोती मूँगे इत्यादि यहाँ आते थे। बैलगाड़ियों, बैलों, गधों और खच्चरों के टांडो द्वारा भीतरी व्यवसाय चलता था। उत्तर भारत मे अयोध्या व्यापार का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। अयोध्या में आर्यवणिक और विदेशी पणि (फणिश) इस व्यापार को चलाते थे। इन लोगो के हाथ में जहाँ टीन और लोहे की खानें थी, इन धातुओ की खुदाई और बनाई-ढलाई का भी काम था। राजा को इनके करों से प्रचुर आय हो जाती थी। अयोध्या के ऐसे व्यापारियो में उस समय सबसे बड़ा, धनाढ्य और प्रभावशाली नील पणि था—हिमानी का पिता। अकालों के कारण इसका महत्व और बढ़ गया था

नील कन्जूस था, पर कँड़े वाला भी। भीतर-भीतर क्रूर और ऊपर ऊपर बड़ा शिष्ट। हँसने मुस्कराने वाला भी। लड़की को प्यार करता था, पर उससे भी बढ़कर अपने भविष्य को। हिमानी की माँ नही थी तो क्या, नील का वर्तमान तो उसके साथ था—और दूर के भविष्य की आशा भी। हिमानी ने वर्तमान मे अपने को ढाल लिया था और भविष्य को वर्तमान की चुनौती देने के स्वभाव वाली होती जा रही थी।

नील के पास नौकरो की भीड़ थी— इनमे से बहुत से दास।

केवल आर्य वातावरण मे दास प्रथा का पनपना कठिन था। वर्णाश्रम की प्रणाली में शूद्र तो थे, पर दास नही थे। अध्यापन और अध्ययन

यज्ञ होम, याजी और यजमान, क्षत्रिय और आयुधजीवी, वैश्य वणिक और पणि की अपेक्षा केवल श्रम और श्रमिक—शूद्र—का महत्व तो कम हो चला था, परन्तु उससे घृणा नही की जाती थी जैसे जैसे वणिक और पणि का ऋण-जाल फैला और रिनिया ने अपना रिन न चुका पाया कि उसे चुकावरे मे अपने ढोर, और, ढोर न हुए तो अपने तन को साहूकार के हवाले करना पड़ा। वह साहूकार का दास हो गया। ब्राह्मण तक इस प्रकार दास हो सकता था। दास और शूद्र की इन दिनों कोई साँचे की ढली, कडी कसी-गसी सी जाति नही थी।

नील के पास रिन चुकवारे में आये ऐसे बहुत से दास थे। इनमें से एक कपिञ्जल था। लगभग तीस वर्ष की आयु सुडौल देह, गेहुंआ रंग। कपिञ्जल पहले कृषक था—अपने घर की खेती करने वाला स्वतन्त्र स्वाभिमानी किसान। पहले ही अकाल में उसकी कई निवर्तन भूमि—(एक निवर्तन बीस हाथ लम्बी और दस हाथ चौड़ी) साहूकार के पास चली गई थी। उसे शूद्र हो जाना पड़ा—दूसरे किसान का श्रमजीवी नौकर। एक दो पण (एक दो आना) प्रतिदिन मजूरी। जब पेट न भरा तो नील से कर्जा लेना पड़ा। जितना बड़ा साहूकार हो तो उतना ही आँख मीचकर लम्बा कर्जा देने के लिये तैयार—रिनिया ने न दे पाया तो अन्त मे दास होकर ही रहेगा। कपिञ्जल को ऋण पर ऋण लेना पड़ा। जब चुका न सका तब उसे ऋण-भार से दबना पड़ा और इस प्रकार वह नील का दास हो गया। दास को केवल पेट के लिये मिलता था, इतना कि कुछ बचाकर भविष्य के किसी निकट वाले क्षण में उऋण हो सके।

उस दिन दोपहरी मे कपिञ्जल अपने सहवर्गियों के साथ सरयू घाट पर नील की लदी नाव से माल के गट्ठे उतार रहा था। उनके पसीने से गट्ठे तो भीग ही रहे थे घाट की धूल भी कंकड बन रही थी। हाफो से दोपहरी की गरम हवा भी गरम हो हो जा रही थी। जब कपिञ्जल और उसके साथियो ने सारा माल उतार लिया सुस्ताने के लिये एक तटवर्ती पेड़ की छाया मे आ बैठे। बातें करने लगे।

'जितना पसीना बहाते हैं उतने की तौल का भी ताम्बा नहीं मिलता। एक जून पेट भर लेते हैं तो दूसरी जून अधपेटे'' ', एक ने कहा।

'या बिलकुल कोरे जा लेटे धरती पर करवटें रगड़ने के लिये'' ' दूसरा बोला।

तीसरे ने भाग्य की बात उठाई,—'किसी-किसी को तो इतना भी नही मिल पाता। पाँच बरसों के अकाल ने पीठ तोड़ डाली है।'

'आगे न जाने क्या होने वाला है।'

'भगवान की इच्छा।'

'राजा के पास सब मिलकर चलो। आखिर राजा है काहे के लिये?' कपिञ्जल ने सुझाया,—'राजा से कहे कि मजूरी की दर बढ़वा दीजिये, इतने से काम नही चलता।'

दूसरे ने टोका,—'राजा हमारी-तुम्हारी सुनेगा या धन-सम्पदा वालों की, जिन्होंने अपनी मुट्ठी मे उसे कस रक्खा है?'

'और ऐसे ब्राह्मणो ने जो इधर धन-सम्पदा वालों की जय बोलते हैं, उधर राजा की नकेल तानते हैं?' एक और ने जोड़ा।

कपिञ्जल ने समाधान किया, 'ऐसे ब्राह्मण भी तो है जो धन-सम्पदा को घास के तिनको के समान समझते है और राजा को सही रास्ता सुझाने से नही चूकते।'

'ऐसे कम है', कई एक साथ बोले।

उसी समय उनके कान में रथ के आने की आहट पड़ी और घोड़ो की टापो की। मुह फेरा तो हिमानी दिखलाई पड़ी। रथ पर से उतरी और कोड़ा हाथ में लिये सीधी इन लोगो की तरफ आई।

दूर से जान पड़ा जैसे मुस्करा रही हो। मुस्करा तो रही थी। सोचा होगा कि दासो के साथ प्रभुता भरी मृदुलता से बात करूँगी,

परन्तु ज्यों-ज्यो निकट आई मुस्कान गालो के कम्पन की रेखाओं में विलीन होती चली गई। दास उठ खड़े हुये।

पास आकर कड़कड़ाई,—'क्या कर रहे हो ?'

दासों की आँखें सहसा कपिञ्जल की ओर फिरी।

कपिञ्जल ने उत्तर दिया,—'काम हो गया। थक गये तो थोड़ा सुस्ताने लगे।'

'नीच ! काहिल !! कामचोर कही के !!! और काम नही है क्या ?' हिमानी बरस पड़ी।

अन्य दास बगलें झांकने लगे। कपिञ्जल ने कहा, 'बतलाइये और काम क्या है ? रोटी खाने का भी समय हो गया है।' कपिञ्जल का धीरज नही हिला।

हिमानी की बडी आँखों के परे विस्तार को क्रोध के रङ्ग ने घेर लिया। शरीर थर्राया, परन्तु कपिञ्जल की धीरता अडिग रही। हिमानी ने उसकी आँखो के द्वार से हृदय के भीतर अपने आतङ्क को भेजना चाहा, पर वहा तो दरवाजा बन्द था, आतङ्क लौट पड़ा और जहा से चला था, वही कही जा समाया। हिमानी इधर-उधर देखती हुई बोली, 'कपिञ्जल, तूने ही इन सबको बिगाड़ रक्खा है ! वैसे ये भले है। कल से तू हमारे खेत पर काम करेगा। जा यहां से।'

वे सब रोटी खाने के लिये चले गये। कपिञ्जल अविपन्न धीमी गति से।

हिमानी ने घोड़ों की पीठ पर कोड़ा चटकाया और किसी निश्चय के साथ घर जा पहुंची।

[३]

अयोध्या के बाहर सरयू किनारे से थोड़ा हटकर रूखे-सूखे विषम मैदान में कुछ खेत थे जिनमें कुओ से काम चलाया जा रहा था। ऐसे एक खेत में कपिञ्जल हल चला रहा था। जुताई हो जाने पर बोहनी करनी थी।

सरयू की ओर इस खेत के पास एक छोटा-सा मैदान था। मैदान के एक सिरे पर हरे पेड़ों की झुरमुट थी जिसके पीछे दूर तक हरे पेड़ लगे चले गये थे। ये पेड़ बतलाते थे कि पार्श्व में कोई बड़ी नदी है, क्योंकि इस वृक्षावलि के उस हाथ पेड़ नही थे; बगुलों, सारसों और चकवों के झुण्ड यहाँ वहाँ उड़ रहे थे। वृक्षावलि के दूसरे हाथ की ओर वहाँ मुर्झाई हुई झाड़ी और आंखो के पानी को सुखाने वाली धूल।

उस छोटे से मैदान के सामने लगभग सौ हाथ की दूरी पर एक ऊँचा टीला था। टीले के पीछे फैले हुये वृक्ष-कुञ्ज। टीले के नीचे दो पतली लाठी के सहारे एक छोटा-सा रङ्गीन वृत्त बँधा टँगा था। यह था लक्ष्यवेध के लिये। टीले के सामने, दूसरी ओर, भुवन तूणीर कन्धे पर कसे और धनुष-बाण हाथ मे लिये लक्ष्य साध रहा था। पास ही उसका उपाध्याय-मेघ वेध की क्रिया बतला रहा था। अब तक भुवन कई तीर चला चुका था, यहाँ तक कि तरकस खाली होने को था, पर निशान पर एक भी न बैठा। मेघ चिढ़ रहा था।

मेघ उतरती अवस्था का दीर्घकाय सांवला पुरुष था। सिर पर जटाजूट, ठोढ़ी के लहराने वाली खिचड़ी रङ्ग दाढ़ी, कमर में सफेद सूती परधनी, गले मे रुद्राक्ष, पैरों में खड़ाऊँ, शरीर पर ऊनी उत्तरीय। आकृति से जान पड़ता था कि हठी, क्रोधी और हिंसक प्रकृति का है। आँखें गड्ढों में ऐसी धँसी हुई कि गड़ाकर देखे तो लगे कि मोम के हृदय को छेदकर पीठ के पार होकर ही दम लेंगी। पर असल में दृष्टि

उसकी निर्बल थी। उस प्रकार देखने का उसका अभ्यास स्वभाव में परिवर्तित हो गया था।

भुवन पीले कौषेय की धोती और सफेद रङ्ग की वंडी पहिने था। पांव मे जूते।

भुवन ने मेघ के चिड़चिड़ाये चेहरे को नही देखा। तरकस से अंतिम तीर निकालकर उसने डोरी पर चढ़ाया। उसी समय बगुलो और हंसों की खरी धौरी पातें एक दिशा में और दूसरी मे चकवों की कत्थई, सरयू-तट की ओर चहकती मडलाती दिखलाई पड़ी। उधर लक्ष्य इधर ये सुन्दर पक्षी! डोरी थोड़ी-सी खिचकर अंगूठे से छूट गई और तीर आधी दूर जाकर गिर गया। उसने नही देखा। मुंह से निकला, 'अहाहा! अहाहा!! हंसो और बगुलों की पातें अर्ध चन्द्राकार और चकवों की सीधी कितनी सलोनी हैं!!! कैसी लहरा रही हैं; कुछ देर पहले कही ध्यान-मग्न बैठे होगे ये सब विहङ्ग!'

मेघ का ध्यान दूसरी ओर चला गया था। पेड़ों की झुरमुट के पीछे हिमानी रथ पर आई और घोड़ों की रास को एक पेड़ से बांधने लगी। अब भुवन की बात पर ध्यान गया। चिड़चिड़ाहट बढ गई।

'क्या बक रहा है? लक्ष्य पर बाण पड़ा या नहीं?' मेघ चिल्लाया।

'नहीं तो। चूक गया; अबकी बार देखता हूं'—भुवन ने तूणीर पर हाथ डाला। उसमे एक भी बाण न था।

'अरे! इसमे तो एक भी नही बचा!' भुवन ने धीरे से विस्मय प्रकट किया और कपिञ्जल की ओर मुह करके चिल्लाया,—'अरे ओ! ओरे हलवाहे!! पल भर के लिये यहाँ तो आना।'

कपिञ्जल ने बैल रोक लिये और इस ओर बढ़ा।

'अब तेरे ध्यान को कौन-सा कुतूहल घसीटे लिये जा रहा है? अभागा कही का।' मेघ ने डांटा।

भुवन ढीठ हो गया था।

'वह कुतूहल नही है आचार्य, हलवाहा है। बाण उठा लाने के लिये बुलाया है', और भुवन के मुह से निकल गया,—'आपको तो दिखलाई कम पड़ने लगा है।'

'स्वयं क्यों नही उठा लाता दुष्ट ?' मेघ का रोष चढा।

'पहले कई बार उठा लाया—और, अब तो वह यहां आ ही रहा है।' भुवन ने समाधान की चेष्टा की। मेघ ने कपिञ्जल को कड़ी आखों देखा। वह नतमस्तक आ रहा था। पास पहुंचकर उसने थोड़ा सा सिर झुकाकर प्रणाम किया और वैसे ही अचल खड़ा हो गया।

कपिञ्जल ने पूछा, 'क्या आज्ञा ?'

न आर्य, न श्रीमन् ! या ऐसा कुछ न कह कर केवल क्या आज्ञा है ? एक राजकुमार का गुरु ! दूसरा कैसा भी हो अयोध्या के राजा का कुमार !! इधर यह शूद्र !!!

मेघ का गला घुट गया। बोला, 'शूद्र है न ? नाम ?'

'हूं तो, नाम कपिञ्जल है। मुझे क्यों बुलाया ? काम छोड़कर आया हूं।' फिर वैसे ही कहा।

मेघ न बोल सका।

भुवन को भी बुरा लगा, परन्तु वह काम पहले करवाना चाहता था। पीछे जो कुछ भी हो।

भुवन ने आज्ञा के स्वर में उत्तर दिया, 'वहां उस लक्ष्य-पट्टिका के आस पास मेरे तीर पड़े हैं। उन्हे उठा लाओ।'

कपिञ्जल टीले की तरफ चला गया। भुवन ने मेघ पर जो व्यङ्ग किया था उसका अब प्रायश्चित किया,—

'कपिञ्जल पहिचानता तो अवश्य होगा। बड़ा उद्धत जान पड़ता है। आपकी चरण वन्दना तक नही की !'

इसमें मेघ ने कोई प्रायश्चित नही पहिचाना,—

'सारा कारण तुम्हारा उजड्डपन और आलस्य है। स्वयं क्यों नहीं तीर उठाने गये ? उसे टेर लगाई ! असल में तुम्हारे पिता के शिथिल शासन के कारण ही दासों और शूद्रों ने इतना सिर उठा रक्खा है।'

इतने में हिमानी आ गई। भुवन जरा सा सिकुड़ा और इधर-उधर देख कपिञ्जल की ओर बढ़ गया। कपिञ्जल ने जल्दी जल्दी तीर बीन-कर भुवन को दे दिये। भुवन ने तरकस में रख लिये; एक हाथ में लिये रहा। जहां पहले खड़ा था वहा आकर उसने लक्ष्य पर तीर छोड़ा। फिर चूक गया। कपिञ्जल उसके पीछे खड़ा तमाशा देख रहा था। हिमानी हँस पडी।

'तीर कमान जरा मुझे दीजिये', हिमानी ने हाथ बढ़ा कर भुवन से कहा। स्वर पैना था, परन्तु कोमलता का प्रयास साथ लिये हुये। भुवन की त्योरी चञ्चल हुई। एक क्षण चुप रहा। नाही न कर सका। हिमानी ने लक्ष्य साध कर तीर छोड़ा और सफल हो गई। भुवन के चेहरे पर लाज की लाली दौड गई। हिमानी ने उसके हाथ में कमान दे दी।

मेघ ने कहा,—'यह लडकी है और तुम पुरुष ! परंतु बात यह है कि मैंने जितना सिखलाया उसे हिमानी ने गांठ में बाध लिया और एक तुम हो जो सदा इधर–उधर बिखेरते रहते हो ! मूर्ख जो ठहरे।'

भुवन ने बिना सोचे समझे तिनक कर कह डाला,—'आपने जैसा बतलाया वैसे ही तो करता हूँ।'

मेघ के होंठ सट गये। हिमानी अपने दूर बँधे घोड़ो की दिशा में देखने लगी।

कपिञ्जल ने तुरन्त भुवन के कान मे खुसफुस की,—'विदेशी पणि की छोकरी के सामने हारें। अबकी बार कसके, कसके—'

ध्यान के साथ साधा। भुवन का तीर लक्ष्य पर जा पड़ा।

भुवन के मन में कपिञ्जल के लिये कुछ अनुराग उत्पन्न हुआ।

हिमानी ने कपिञ्जल के वाक्य का कुछ अंश तो सुन ही लिया। मेघ को भी बुरा लगा।

'शूद्र ! तेरी यह अनधिकार चेष्टा।' मेघ का घुटा हुआ क्रोध कपिञ्जल पर बरसा।

हिमानी की आंख मे भी लाल डोरे गहरे हुये। कपिञ्जल ने अविचलित स्वर में कहा,—'मैंने क्या किया ?'

'दास होकर यह सब !' मेघ गरजा और हिमानी को आज्ञा दी,—'ले जाओ बेटी हिमानी इसको यहाँ से !'

उसी समय नील रथ दौड़ाता वहां आ पहुँचा। मेघ उसे दूर से नही पहिचान पाया। हिमानी ने बतलाया।

नील ने आते ही मेघ की चरणवन्दना की। उसके गले के मोतियों का हार भी मेघ के पैरो को छू गया। मेघ ने आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद के स्वर पर पूर्व स्थित क्रोध का दबाव था।

कपिञ्जल की ओर मुंह करके बोला, 'देख ले नीच, शिष्टाचार इसे कहते हैं।'

'क्या बात है ?' नील ने आश्चर्य प्रकट किया। मेघ ने सुनाया, कुछ हिमानी ने जोड़ा। शेष को भुवन ने अनबूझे बिगाड़ा,—'कपिञ्जल भला है।'

कपिञ्जल चुप था।

उन तीनो के मुंह से एक साथ 'हुं !' निकला—जैसे ऊंचे नीचे सप्तको के तीन विवादी स्थल एक साथ गूंज पड़े हो। भुवन को ऐसा ही लगा।

नील मझोला, उतरती अवस्था का दुबला काईयां था।

हाथ फटकार कर बोला, 'आचार्य जी, यह बड़ा ही कामचोर है। खेत को ऐराते ऐराते चरसा फाड़ डाला, रस्सियां तोड़ दी और अब खेत की जुताई छोड़कर यहां तमाशा देखने आ खड़ा हुआ है !'

भुवन ने सहसा पूछा, 'कितनी अवधि रह गई होगी इसकी दासता की ?'

'पूरे तीन बरस', नील ने तुरन्त उत्तर दिया।

कपिञ्जल ने प्रतिवाद में देर नही लगाई,—'झूठा !'

'नीच ! पाजी !!' अब नील का क्रोध उफनाया ।

'काम इतना करता हूं कि दम टूट टूट जाती है । चरसा पुराना था सो फट गया । रस्सियों का भी वही हाल । नया सामान लेने के लिये सुझाया तो कहते हैं अपनी खाल की रस्सी भांज ले—'

कपिञ्जल ने भुवन की ओर देखते हुये विनय के स्वर में कहा, परन्तु बातें तीखी थी । उल्टी पड़ी ।

नील ने नसो से लिपटे अपने दुवले हाथ से कपिञ्जल को पकड़ा । वह वच्चे की तरह झुक गया ।

'हमारे राज्य में यह सब नहीं चलेगा, नील पणि ।' भुवन को दया आई ।

क्षुब्ध रुंआसे स्वर मे नील बोला,—'कपिञ्जल को वह धकिया भी रहा था,—अ रे रे रे ! हम कितना कर राजा को देते हैं ! हम न हों तो राजा का ठाट-बाट कितने दिन चले ?'

मेघ ने व्यवस्था दी,—'ले जाओ इसे और दण्ड दो ।'

नील और हिमानी कपिञ्जल को धक्के देते हुये ले गये ।

भुवन ने अपनी भनभनाहट भीतर भीतर रोक ली । दो बार लक्ष्यवेध किया । फिर भीतर उठाकर मेघ के पास आ खड़ा हुआ ।

मेघ ने अपने क्षोभ को एक और रूप दिया—

'ये लोग हजारों कोस दूर अपने पणिश देश को छोड़कर यहां अतिथि होकर रोजगार के लिये आये हैं न कि कपिञ्जल सरीखे दासों को-अपनी लुटिया-डोरी तक देकर और सिर के वाल मुड़ाकर लौट जाने के लिये—'

भुवन ने आव देखा न ताव और बोला, 'हमारे जनपद को घोंटने के लिये गुरू जी···'

'इस शूद्र से तेरा क्या नाता है ?'

'कुछ भी नही, केवल धर्म का।' मेघ के लिये इतना ही बहुत हो गया। भुवन कह तो गया, पर मेघ की जलती आंखो और फड़कती देह से कुछ दूर हट गया।

'नीच! दुष्ट!! पापी!!!' मेघ कड़का और भुवन को पीटने के लिये इधर-उधर साधन ढूंढ़ने लगा।

नील और हिमानी चले गये थे। डण्डा पास था नही। मेघ भुवन पर झपटा। भुवन भागा। मेघ के हाथ जब कुछ नही लगा तब उसने मिट्टी के ढेले उठाये और फेके, परन्तु भुवन दायें-बायें होता हुआ छू हो गया। मेघ को हाफते हुये दांत पीसकर रह जाना पड़ा।

नदी की चिड़ियां फड़फड़ाकर उड़ रही थी। मेघ ने उन्हें नहीं देख पाया। सूर्यास्त होने का समय निकट था।

[४]

भुवन की अशिष्टता का आशिक प्रायश्चित कपिञ्जल की देह को करना पड़ा। हिमानी और मेघ कपिञ्जल से असन्तुष्ट थे ही अब उनको खासा कारण मिल गया।

रात में कपिञ्जल नील के एक भीतरी कमरे में बांधा गया। नील ने उसे बेतरह पिटवाया। हिमानी भी वहा थी। कपिञ्जल की सारी देह सूज गई, पर वह आह और कराह लेने के सिवाय चिल्ला नही रहा था। उसका बचाने वाला वहा था भी कौन? पिटते-पिटते अचेत हो गया। हिमानी को लगा कि कही मर न जाय। वैसे दासो के प्राण उनके स्वामी या राजा के हाथ में रहते थे—जब जो जितना प्रबलतर हो बैठे। हिमानी ने कपिञ्जल की मारपीट बन्द करवादी, क्योंकि फेन के साथ उसके मुंह से रक्त के छीटे भी आने लगे थे। नील ने उसे कमरे से बाहर कही खुले मे हटवा दिया। नील का व्यवसायी—सन्तुलन उसके साथ था—'इसके पीटने का समाचार सारे दासों में फैल जाना चाहिये जिसमें कोई भी कामचोरी—और, रिनचोरी न कर सके।'

हिमानी ने समर्थन किया,—'वैसे ही जान जायेंगे, परन्तु मैं और भी जोर के साथ बात को उनके चित्त पर बिठलाने का यत्न करूँगी।'

कपिञ्जल देर तक अचेत रहा। जब चेत मे आकर कराहा आँखें खोली तब उसके पास कोई नही। ऊपर तारे तटस्थता के साथ दमक रहे थे और नीचे शरद की ठण्ड बयार चल रही थी, उसमें सुगन्ध नही थी, थोड़ी थपथपाहट अवश्य थी। प्यास लगी तो कपिञ्जल को पानी कौन दे? शरीर की चोटें त्रास रही थी। उनकी पीड़ा ने उसे और भी सचेत किया। थोड़ी देर मे कही भीतर से उसने शक्ति बटोरी और घिसटते-घिसटते पानी ढूंढ़ा, पिया और फिर लेट गया। भोर होने पर क्या होगा? फिर वही नील और हिमानी। फिर—? सहवर्गी देख

देख कर चुपचाप रोयेंगे। दो चार उबल पड़े तो उनकी भी यही गति होगी। क्या राजा कुछ न करेगा ?

चौथे पहर कपिञ्जल उठा और उठते-बैठते अयोध्या के बाहर हो गया। वह झाड़ियों मे छिपता हुआ किसी ऐसे स्थान को जा रहा था जिसे वह नही जानता था—वहाँ कम से कम नील न होगा, हिमानी न होगी। भोर हो गया और सूर्य का उदय। इतने मे उसे घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई पड़ा। वह एक झाड़ी के पीछे सिमटकर बैठ गया।

टापो का शब्द और भी पास आया। देखा तो भुवन सवार है। चिन्ता कुछ कम हुई, फिर भी वह छिपा रहना चाहता था। भुवन ने उसे देख लिया। घोड़े को छोड़कर उसके पास आया।

'कौन ? एँ !'

'जी···' कपिञ्जल के सूखे गले से टूटा शब्द निकला।

भुवन ने निकट से उसका निरीक्षण किया। फटे कपड़ो में होकर चोटों की सूजन और नीले निशान झाँक रहे थे। कपिञ्जल हाँफ को रोक रहा था।

'यह दुर्गति तुम्हारी किसने की ?'

'जी···जी···नील पणि ने···मेघ के कहने से···मुझे जाने दीजिये। उसके गढ पीछे-पीछे आते होगे।'

'मैं तुम्हें घोड़े पर रख कर लिये चलता हूँ···वैद्य से उपचार कराऊँगा···' स्वर मे दुलार था।

नही नही·· मैं मार डाला जाऊँगा···' भुवन को हठ करने का अवसर नही मिला, क्योंकि उसका घोड़ा भटकता चला जा रहा था।

मैं तुम्हारी देखभाल करूँगा,' कहता हुआ भुवन घोड़े की ओर सरपट हुआ। घोड़े ने तेजी पकड़ी और भागा। कपिञ्जल वहाँ से अब और अधिक गति से काँखता कराहता चल पड़ा।

कही दूर जाकर भुवन ने घोड़े को पकड़ पाया। दिन चढ़ आया था। वह चक्कर काटता हुआ उसी स्थान पर फिर आया जहाँ कपिञ्जल मिला था। बहुत ढूँढा, पर न मिला। किशोर का उत्साह ठंडा पड़ गया, और लौट पड़ा।

[५]

अयोध्या राजभवन के सामने लम्बा चौड़ा मैदान था। यहां अयोध्या के अनेक महापथ, राजपथ आकर मिले थे। राजभवन के एक ओर राजा के गोदाम थे जिनमें अन्न, वस्त्र और शस्त्र इत्यादि के भंडार थे। दूसरी ओर अश्वशालायें थी और प्रहरियो के रहने के लिये घर। ये सब एक मञ्जिल के थे। राजभवन तीन मञ्जिलों का था। तीन मञ्जिलों से अधिक का भवन किसी का नहीं होता था। बहुत बड़े साहूकार का भवन, अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्र मे, तीन मञ्जिलों का होता था, वैसे साधारण तौर पर दो मंजिलों का। महाशालों (सामन्तों सरदारों) के भी भवन ऐसे ही बनते थे। पत्थर का उपयोग बहुत कम होता था। बड़े लोगों के भवनों और छोटों के घरों में पकी ईंट और लकड़ी, खपड़े और फूस काम में लाये जाते थे।

राजभवन के द्वार पर भीड़ इकट्ठी थी।

भीड़ में एक चिल्ला रहा था—'हमारा गोधन नष्ट होता चला जा रहा है।'

दूसरा—'उधर सरयू के उस पार गायों बैलों और बछड़ों के कंकाल पर कंकाल फैलते चले जा रहे है।'

'अकाल पर अकाल पड़ रहे हैं।'

'किसके पापों का फल है, खोज-बीन करो।'

रोमक अपने अमात्यों के साथ द्वार के बाहर आया। उसकी आयु चालीस के उस ओर होगी। देह से तगड़ा, चेहरे का सुरूप और रोबीला। रेशमी धोती, कुर्ता पहिने था और सिर पर लाल रङ्ग का रेशम का उष्णीश। कमर में म्यान पड़ी तलवार जो पीले रेशमी फेंटे से कसी लटक रही थी। जूते वे तीनो पहिने थे। अमात्यों का भी ठाठ अच्छा था। राजा के गले मे मोतियों की माला, भुजा पर सोने के भुजवन्ध और कलाहियों पर कड़े अमात्यों के गले में मूंगों का हार और हाथ पर चांदी

के ही भुजबन्ध और कड़े थे। रोमक भीतर से भीड़ की बातों को सुन रहा होगा या जानता होगा कि किस उद्देश्य से राजभवन के द्वार पर इकट्ठी है। बोला, 'घबराओ नहीं तुम्हारे भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध करता हूं।'

भीड़ ने अपनी बातें कुछ और प्रखरता के साथ दुहराईं। पानी न बरसने की शिकायत इन सबके ऊपर थी।

'भाइयो, पानी का बरसाना मेरे हाथ में तो है नहीं। जो कुछ हो सकता है कर रहा हूँ। तुम सबको मालूम है कि कितने यज्ञ करवा डाले हैं और करवा रहा हूँ।' राजा ने कहा।

भीड़ की चिल्लाहट कम हो गई, केवल मरमराहट सायँ सायँ सी करती रही।

'उन भाण्डारो के पास आ जाओ'।'—रोमक ने गोदामों की ओर संकेत करते हुये बतलाया,—'वहां अन्न और वस्त्र मिलेंगे।'

राजा आगे बढ गया। भीड़ पीछे हो ली। गोदामों से किसी को कुछ और किसी को कुछ दिया जाने लगा। वितरण के लियें अमात्यों के सिवाय अन्य अधिकारी भी थे।

रोमक जब एक गोदाम के कोने पर पहुँचा तो मार्ग में आते हुये उसने तीन व्यक्ति देखे। उनके वस्त्रो से उनकी दीन-हीन दशा चू रही थी। एक बुड्ढा था, साथ में उसके अधबूढी स्त्री और एक बहुत सुन्दर लड़की जिसकी आयु लगभग तेरह-चौदह होगी।

लोग इधर से उधर आ रहे थे। इनकी ओर कोई अधिक ध्यान नहीं दे रहा था। रोमक का ध्यान आकृष्ट हुआ। लड़की उन दोनों को उसी की ओर लिये आ रही थी। जब वे तीनों आ गये रोमक ने पूछा, 'कौन लोग हो?'

बूढ़े ने उत्तर दिया, 'क्षत्रिय, अब ऐसे हो गये हैं।' और वह कूल्हा। स्त्री उसके पीछे सिमट गई। लड़की उसकी फटी ओढ़नी को पकड़े हुये बड़ी बडी आंखों राजा को देखने लगी।

रोमक पसीज उठा—'ठहरो, तुम लोगों को अन्न और कपड़े दिये जायेंगे।'

बूढ़े की कराह दब गई। स्थिर स्वर में बोला, 'हम हो तो गये हैं ऐसे, परन्तु भीख नही लेंगे।'

रोमक का कुतूहल जागा—'फिर ?'

'हमको उधार अन्न और कपड़ा इतना मिल जाय कि नैमिषारण्य में जाकर कुछ समय काट लें। जब अच्छे दिन फिरेंगे तब अयोध्या लौट कर सारा उधार चुका देंगे। सुनते हैं नैमिषारण्य में अकाल नही है, पानी बरसता रहा है, करने को कुछ काम मिल जायगा।'

रोमक ने हामी भरदी और लड़की से बात करनी चाही—

'तुम भी वहाँ जाकर काम करोगी ?'

'हाँ, क्यों नही ? पढूंगी भी।'

'अवश्य अवश्य', रोमक ने पुलकित होकर प्रश्न किया, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'गौरी' लड़की ने कहा, 'आपको मेरे नाम से क्या ?'

'हाँ उसके नाम से क्या प्रयोजन ?' बूढ़े ने दुहराया।

रोमक हँसकर बोला, 'वैसे ही कहा बेटी। नैमिपारण्य में बड़े-बड़े ऋषि-मुनि रहते हैं। वहाँ जाकर पढना, खूब पढ़ना।'

गौरी ने आँखें नीची करली। लजाकर केवल 'हाँ' की।

'चलो माँ',—गौरी ने बूढ़े से कहा,—'अन्न वस्त्र उधार मिलेगा।'

रोमक उन तीनो को एक भाण्डार की तरफ ले गया। गौरी के वे दोनों माता-पिता थे। अन्न वस्त्र लेकर वे तीनों वहाँ से चले गये। रोमक दूसरे लोगों को बँटवाने लगा। फिर उसने अपने भण्डारो के कोठे गिनवाये। कुल पच्चीस थे। अभी तो शरद् ऋतु ही है, कही अगली साल भी पानी न बरसा तो ? यह भाण्डार कब तक भार सहेगा ? कहीं अपने ही भूखों मरने की नौबत न आ जाय।

'अन्न बांटना कुछ कम करदो', रोमक ने अमात्यों को सम्मति दी।

'प्रजा को बड़ा कष्ट होगा, असन्तोष बढ़ेगा।'

'एक दिन बिलकुल बन्द कर देना पड़ेगा; यदि फिर अकाल पड़ा तो क्या करेंगे?'

अमात्य चुप हो गये।

राजा ने विषयान्तर किया,—'यज्ञ कर रहे हैं। इन्द्र देव कृपा करेंगे।'

रोमक की ढुलमुल में अमात्यों को सम्बल मिला।

'अन्न का बांटना जारी रखना चाहिये, भले ही उसके घण्टे ऐसे कर दिये जावें, जब केवल बहुत अटक वाले ही आ सकें।'

इस अव्यवहारिक सुझाव के प्रति रोमक अपने विचार को अनुकूल करने वाला ही था कि प्रतिहारी ने समाचार दिया,—'उपाध्याय मेघ पधारे हैं। कुछ कहना चाहते हैं, इसी घड़ी बुलाया है।'

राजा का ध्यान भुवन की ओर गया। प्यारा इकलौता लाड़ दुलार का पला बेटा। कोई उत्पात किया होगा। उहँ बालक उपद्रव न करें तो क्या मेघ की आयु के लोग करेंगे? रोमक मेघ से अपने भवन मे मिला।

'भुवन इतना बिगड़ गया है, इतना दुश्शील कि कितना भी सिखलाऊँ ध्यान ही नही देता।'

'मां का लाडला है। गुरुकुल मे न भेज कर आपको सौप चुका हूँ। ढङ्ग से सिखलाने पर एक दिन ठिकाने लग जावेगा।'

'ढङ्ग से! हूँ' साप का विष दूर करने के लिये उसका दात उखाड़ना पडता है, मार्ग में अबाध गति से चलने के लिये पैर मे ठसे कांटे को निकालना पड़ता है और जैसे बिना मोह त्याग किये मुक्ति नही वैसे ही बिना ठोके पीटे वह नही सुधर सकता।'

अध्यात्म और भौतिकवाद की इस खिचड़ी को रोमक न पचा सका। तो भी उसने कुपच को प्रकट नही किया।

'आज ऐसी क्या बात हुई है ?' रोमक ने पूछा। किसी ने नहीं देखा कि पास के एक कमरे के किवाड़ के पीछे भुवन आ चिपका-था।

'आज क्या नित्य ही कुछ न कुछ होता रहता है। कहा तक सहूँ—क्या कहूं, कितनी बार कहूँ ? किसी ने कुसमय ही उसे अथर्ववेद का एक मन्त्र रटा दिया है—यदि पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ मे है तो जय बायें हाथ में बनी बनाई ! दाल-भात मे मूसलचन्द बन गया है।'

रोमक मुस्कराया,—मेघ के उपहास के लिये नही, वरन् अपने सन्तोष पर, यह मन्त्र मैंने ही तो भुवन को सिखलाया, और वह है भी बिलकुल ठीक।

विचार मग्नता की मुद्रा में बोला, 'हाँ ' आँ '' बिना अपने ध्यान और परिश्रम के देवताओ की मित्रता प्राप्त नही हो सकती'''

यह भी वेद के एक मन्त्र की बात थी। मेघ को बहुत अखरी।

रोमक ने अपनी बात पूरी की,—'उसके ध्यान को सुचारु रूप से नियोजित करते रहिये तो वह उस मन्त्र को सार्थक करके रहेगा।'

अर्थात् भुवन का कोई अपराध नही, दोष मेरा है—मेघ को गड़ गया।

'कभी बगुलो को ताकता है, कभी सरयू की लहरें गिनता है और हर किसी का अपमान करता रहता है। कल नीलपरिण का अपमान किया वह अलग। मुझसे ही बदल पड़ा ! कपिञ्जल शूद्र ने अशिष्ट बर्ताव किया तो उसकी पीठ ठोकी—उसे तेजवान बतलाया !!'

भुवन किवाड़ की आड से ही चिहुँका,—'मैंने कहा ही क्या ?'

'चुप दुष्ट ! डण्डा न हुआ मेरे हाथ मे नही तो उसी समय तेरी पीठ तोड़ देता।' मेघ आपे से बाहर हो गया। भुवन किवाड के पीछे खिसक गया।

रोमक ने कहा,—'जा यहा से।' पर उसके स्वर मे भर्त्सना की झंकार नही थी।

मेघ ने रोमक को चुनौती दी,—'इस छोकरे के भीतर बैठा राक्षस क्या अब भी दण्डनीय नहीं है ?'

रोमक के कुतूहल ने मेघ की बात को अनसुना कर दिया। उसने मेघ से प्रश्न किया, 'कपिञ्जल ने या उस शूद्र का जो कुछ भी नाम हो, क्या अशिष्टता की ? उसे क्या यों ही तेजवान कह दिया ?'

बेटे से बढकर बाप ! मेघ के आग सी लग गई। उसने क्रोध की ज्वाला रोमक पर दौड़ाई,—'इस छोकरे के बिगाड़ने में आपका ही हाथ है। आप ही उससे मेरा अपमान कराते हैं, आप ही उसे बहकाते रहते हैं।'

ज्वाला ने ज्वाला को उत्पन्न किया। रोमक बोला, यह लीजिये ! घर पर मैं उसे वेद मन्त्र सिखलाता हूं तो वह चौपट करना हो गया !! आप आचार्य हैं, आपको संयम से काम लेना चाहिये। तभी तो आपका शिष्य संयमी बनेगा।'

उल्टा चोर कोतवाल को डाटे ! मेरे अपमान का यह प्रतिशोध हुआ !! मेघ भभक पडा,—'तुमको अपने किये पर रोना पड़ेगा रोमक। तुम राज्य करने के योग्य ही नही हो। अकाल पर अकाल जो पड़ रहे हैं, इतने यज्ञो का जो कुछ भी फल नही मिल रहा है वह सब तुम्हारे और उस राक्षस छोकरे के पापों का फल है‥'

रोमक भी न माना,—'भुवन को छुटपन से ही सच बोलने की सीख दी गई है, पर आपका स्वभाव जब आपको नाक के आगे का देखने दे तब तो…'

मेघ बे लगाम हो गया,—'तुम मिटोगे, तुम्हारा सर्वनाश होगा। तुमको जब तक गद्दी पर से नही उतारा चैन नही लूंगा।' मेघ चला गया। रोमक सन्नाटे में आ गया। भुवन अपनी माता के पास पहले ही जा दौडा था।

उसकी माता का नाम रानी ममता था। अधेड़ अवस्था की सुन्दर गौरवशालिनी नारी। उस समय वीणा बजा रही थी। भुवन के इस

तरह आने पर उसने वीणा रख दी। भुवन ने कहा,—'माताजी! माताजी! क्या सच बोलना पाप है?'

'नहीं तो। क्या बात है?'

'आचार्य मेघ के सामने मैंने एक शूद्र को कह दिया कि वह भला है तो बरस पड़े और मारने को दौड़े। मेरे ऊपर ढेले फेंके पर मैं एक ऐसा कि आंधी की तरह बहा तो सब इधर-उधर बिखर गये! अब पिताजी पर खीझ पड़े हैं। शाप दे रहे है तो क्या ऐसे की शाप से कुछ हो जायगा?'

ममता ने थोड़ी देर मे बहुत कुछ समझ लिया और चिन्ता में पड़ गई।

[६]

नील की दासता से कपिञ्जल क्या भागा, सूखी घास के ढेरों में बत्ती-सी छुला गया। एक भागा, दो भागे, फिर तो सौ में नब्बे बेपता हो गये। अयोध्या का जनपद छोड़कर कोई पञ्चाल गया, कोई मिथिला, कोई कुन्तिभोज और कोई दशार्ण। एक समूह नैमिषारण्य की ओर गया। वहाँ लुटेरों, डाकुओं के अड्डे थे, ऋषियों के आश्रम और दूर-दूर बसे हुये गाँव। कोई उनमे जा मिले, किसी ने आश्रमों की आड़ पकड़ी। जिनसे बेट-बेगार (विष्टि) ली जाती थी उनमे से भी बहुत इधर-उधर चल निकले। 'बैठे से बेगार भली' वाली कहावत ने उन्हें पराभूत नही कर पाया था; दासता से मर जाना भला उनकी भीतरी उमङ्ग इस सिद्धान्त पर रीझ उठी। बड़े बड़े महाशालो तक के बेगारियों ने सिर उठाना आरम्भ कर दिया। चार-छः दिन के भीतर ही इस आँधी ने प्रचण्डता धारण कर ली। केवल राजा के बेगारी अभी कन्धे का जुआँ साधे थे, क्योंकि उसके बर्ताव मे कटुता नही थी।

नील के सभी दास भाग गये। थोड़े से वेतनभोगी नौकरों से काम चल नही सकता था इसलिये थोड़े ही समय में कारबार के ठप हो जाने की विभीषिका सामने आ गई। नील घबरा गया। हिमानी भी बेचैन हो गई। नील ने दासों का पता लगाने और लौटाने के लिये अपने मुनीम और पहरुये छोड़े। हिमानी ने कुछ पक्षी पाल रखे थे। वह उनके चुगाने, उनके साथ खेलने और दासों के नाम ले लेकर उन्हे गालियाँ देने में लग गई—अपने भीतर का ताप वह इस तरह बुझाने लगी।

दास न पकड़े जा सके और न लौटाये ज सके।

नील की कृपण बुद्धि ने उसके भीतर विश्वास विठलाया कि दास कपिञ्जल के वहकाने से भागे हैं। दासों के भाग पड़ने का सम्बन्ध उसके डण्डे और हिमानी के कोड़े के साथ कैसा और कितना है यह उसकी

समझ के बाहर की बात थी। सहायता के लिये राजा के पास दौड़ा गया।

रोमक के समीप उस समय एक अमात्य बैठा था और भुवन। वह भुवन को उस दिन से अपने निकट रखने लगा था जिस दिन मेघ अपदस्थता लेकर और शाप देकर चला आया था।

नील ने बहुत शिष्टाचार और इधर-उधर की थोड़ी-सी ही बात करके उसकी दुहाई दी,—'मैं जितना कर देता हूँ उतना कौशल राज्य भर में कोई और नही देता।'

रोमक को कुछ असंगत सी लगी। बोला, 'व्योपार और लेन-देन भी तुम्हारा सबसे बड़ा है। खानें भी तुम्हारे हाथ मे अधिक हैं—त्रपु (टीन), ताम्बे और लोहे की...'

'और सबसे ज्यादा कष्ट में भी मैं ही हूँ।' रोमक सवेरे से सांझ तक कष्ट की ही गाथायें सुनता रहता था। उसने दूसरी ओर मुंह फेर लिया।

भुवन से पूछने लगा,—'आज क्या सीख रहे हो?'

'यही कि शरीर को हृष्ट-पुष्ट और मन को वीर बनाओ।' भुवन ने उत्तर दिया और इसी भाव का एक वेदमन्त्र सुनाया।

नील ने देखा कि उसके आने का उद्देश्य फिसला।

'महाराज! महाराज...' उसने दीनता के साथ हाथ जोड़े और उस सम्बोधन के उपरान्त उसने जो कुछ कहा वह मुर्झाकर होठों पर रह गया, केवल बरबराहट सुनाई पड़ी।

अमात्य ने उसे पगडंडी सुझाई,—'थोड़े में अपनी बात कह डालिये।'

'थोड़े मे ही सब कहना चाहता हूँ, लेकिन विपद तो इतनी बड़ी है कि ओफ।...बात यह है कि मेरा दास कपिञ्जल शूद्र जो कामचोर था, दुष्ट, अक्खड, रिन-चोर...'

रोमक ने उसकी ओर मुंह फेरा—'थोड़े मे ही कहो न—'

नील पिटपिटाया,—'वह भाग गया। दूसरे दासों को भी बहका ले गया! खेतीवारी चौपट हो रही है।'

अमात्य रोमक की नीति से परिचित था। उसने व्यङ्ग किया,—'उन्हे पेट भर भोजन देते थे?'

'सबको देता था। वह दास कपिञ्जल तो दिन भर ही खाता रहता था······आलसी था····दो तीन चाँटे मार दिये तो अकड़ गया और भाग गया।'

भुवन ने तुरन्त बात काटी,—'ये दासों को बहुत मारते-पीटते हैं इसीलिये भाग गये—'

'नही तो', नील बोला।

भुवन ने अपनी बात पूरी की,—कपिञ्जल को ही इन्होंने इतना पीटा, इतना पीटा कि उसे अधमरा तो मैंने देखा है···शायद मर ही गया हो।'

अब रोमक ने ऊँचे स्वर मे प्रश्न किया, 'क्यों नीलपणि?'

'झूठ है महाराज', नील का भी स्वर चढ गया।

'मैंने अपनी आँखों उसकी दुर्दशा देखी है—पीठ सूजी हुई थी, घाव थे, लम्बे चौड़े नीले निशान, और, वह घिसट-घिसटकर चल रहा था।' भुवन ने ओज के साथ बतलाया।

रोमक को नील की कर राशि तो अच्छी लगती थी, पर उसके ढङ्ग नही भाते थे।

'मैं दास प्रथा को अच्छा नही समझता हूँ। हमारे यहाँ कहा है कि ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है···कपिञ्जल या किसी भी दास की पकड़-धकड मे मैं कोई सहायता न कर सकूगा।'

भुवन प्रसन्न हो गया। उसकी प्रसन्नता नील को बहुत अखरी। अपने कपड़े के भीतर कसी हुई मुट्ठियों को और भी कड़ा करके बोला, 'आगे मैं कर कैसे दूंगा? नही दे सकूंगा।'

इतना तो उन सबने सुन लिया, परन्तु जब वह कुड़कुडाते हुये चला गया—'मैं नही दूगा कर'—तब किसी ने नही सुन पाया।

राजा की समझ मे अब आया कि नील के साथ कुछ अधिक मीठा बर्ताव करना चाहिये था। अपने पछतावे को वह प्रकट नही कर सका। अकालों को सहज-सह्य बनाने वाले ये बड़े कर-दाता ही तो थे। कुछ वर्गों मे इसीलिये उनकी इतनी मान्यता थी।

भुवन से कहा, 'भीतर जाकर पढो। मैं अकेले मे कुछ बात करूँगा।'

भुवन तो चाहता था। भीतर चला गया और किसी बखेड़े के संकलन मे लग गया। रोमक के सामने वही समस्या, जो बारबार सामने आने के कारण पुरानी पड़ चली थी, फिर आ खड़ी हुई—अब क्या हो? उसे अपने अन्न भण्डार के बचाने की चिंता थी। स्वर्ण, रत्नादि अधिक नही बढेंगे तो कम भी न होगे। उसकी निजी भूमि पर जितने वेतन भोगी श्रमिक, और बेगारी, काम कर रहे थे उतने तो करते ही रहेंगे, यह भी विश्वास था।

'जिस गति से अन्न बाटा जा रहा है उससे कितने दिन और चलेगा?' रोमक ने वही प्रश्न फिर किया जिसे पहले कई बार कर चुका था।

'एक वर्ष तक तो अवश्य चलेगा', अमात्य ने उत्तर दिया और राजा के उतार-चढाव को परख कर एक क्षण पीछे बोला, 'कुआं खेती करने वालों से अन्न मिलेगा, हमारे उत्साही सार्थवाह बाहर से टाड़ो पर बहुत सा लाद लावेंगे। बहुत से व्यवसाइयो ने सहस्त्रो मन अन्न अपने आगारो में भरकर छिपा रक्खा है…'राजा की रुचि मे क्षीणता लक्ष कर के अमात्य चुप हो गया।

रोमक ने कोई मन्तव्य प्रकट नही किया। मेरे भी बहुत से अन्न भांडार हैं, उनसे मैं प्रजा की सहायता करता रहता हूं। किसी से कुछ भी नही छिपा है। पर दूसरों के छिपे अन्नागार? उनका क्या हो;

इस विषय पर उसने निश्चय के साथ कुछ नही सोचा। बात भीतर के किसी कोने में जाकर बैठ गई।

केवल एक प्रश्न मुंह से निकला,—'नील के पास भी अस्त्र होगा?'

'बहुत।'

प्रसङ्ग और आगे नही बढा।

[७]

नील का भवन बडा था—दो खण्ड का। भवन के भीतर विस्तृत आंगन, दालानें और कमरे। कमरों के वीच मे लम्बी सकरी गैलें थीं। आंगन से जरा हटकर दो दालानो के कोने पर एक कमरा था जिसमें पणियों के देवता वाल की मूर्ति थी। इसका पूजन हिमानी और नील किया करते थे। वह आर्यो के किसी भी देवता का प्रतिविम्व नही था। रूप-सरूप मे केवल इन्द्र की कल्पना के वृत्त में 'वाल' को थोड़ा-वहुत विठला सकते थे। इस कमरे का सम्वन्ध भीतर के कक्षों से एक भीतरी द्वार से था।

हिमानी फूल चढाने के उपरान्त अपने देवता से प्रार्थना करने लगी,—'जो हम से द्वेष करें उन्हे जला डालिये, हमारे शत्रुओ को मार दीजिये; जो हमे नुकसान पहुँचाना चाहे उनका तुरन्त सत्यानाश कर डालिये। हमको इस तरह की शक्ति दीजिये कि हम अपना पसारा दुनियाँ भर मे कर सकें। हे महास्वामी, मुझे ओज और तेज दो।' इतना तो उसने स्फुट स्वर में कहा। अकेली ही थी वहां। फिर उसने मन में जपा,—'वड़े वड़े पुरुषो को नीचा दिखलाने की समर्थता दो मुझे।'

पूजन से निवृत्त होकर जब वह दूसरे कमरे मे गई तब उसने दीर्घबाहु को बैठे, जमुहाई लेते, पाया।

दीर्घबाहु पचीस-छब्बीस साल का युवा होगा। रंग गेहुँआ, चेहरे पर चेचक के छोटे-छोटे चिन्ह, आंखें वड़ी जिनकी पुतलियों मे श्यामता कम और पानी कुछ अधिक जान पड़ता था। काया गठी हुई और लम्बी। चारतले वाले जूते चौखट के पास उतार आया था। धोती पर कमरबन्ध बाधे था। तन पर जरतारी का रंग-विरंगा कंचुक पहने था। सिर के लम्वे काले वाल लाल कौषेय के साफे के नीचे गर्दन पर छहरा रहे थे। पाँच-सात पेचों का तिरछा ऊँचा मूँगिया रँग का मुड़ा सा जमुहाई लेने के समय लगता था जैसे अब खिसका, पर

कसकर बंधा हुआ था। अयोध्या जनपद मे इसके पास एक लाख निवर्तन-भूमि हो गई थी। इसके थोड़े से भाग में कुयें थे जिसमे अब भी खेती हो जाती थी। बाकी पानी न बरसने के कारण पड़ी हुई थी। उसकी आकृति पर चिन्ता की कोई रेखा न थी।

हिमानी के आते ही दीर्घबाहु सतर्क हो गया। चौकी पर बैठा था। बैठा रहा। हिमानी अपना केशजूट लाल रेशम के फीते से बांधे थी जिसमें फूल खोसे हुये थे। उन फूलों पर आँखें फिराते हुये दीर्घबाहु ने कहा, 'पूंजन से निवट आईं ?'

'जी हां।'

'मैं बड़ी देर से यहां बैठा हूँ।'

'कहिये।'

अब दीर्घबाहु को खड़ा होना पड़ा। हिमानी के स्वर और आचार में कोई आवाहन न था।

'बात तो वैसे कुछ बहुत बडी नही है। रात मे राजा ने जुये के लिये बुलाया तो जाना पड़ा—निमन्त्रण अस्वीकार कर नही सकता था। दस सहस्र निवर्तन भूमि हार गया। उसका कोई विषाद नही, क्योकि लाभ और हानि का जोड़ा है। पर राजा मेरी हार पर जैसा आड़ा तिरछा हँसा वह भीतर भीतर बहुत छिद गया है।'

हिमानी ने उसे बैठने के लिये कहा। वह स्वयं भी एक चौकी पर बैठ गई।

अब हिमानी ने वार्तालाप मे रुचि दिखलाई,—'आप सरीखे महाशाल और सामन्त ही तो राजा को इतना सिर चढ़ाये हुये हैं। क्या फिर जुआ खेलने जायेंगे उसके घर ?'

'नही तो। नियम यह है कि अब जब मैं निमन्त्रण दूं तो राजा को खेलने के लिए मेरे घर आना पड़ेगा। कहिये तो बुलाऊँ ? बदला लेना चाहता हूं।'

हिमानी दीर्घबाहु की बुद्धि की गहराई को जानती थी। बोली, 'आप फिर हार गये तो क्या बदला चुक जायगा ?'

'फिर क्या करूँ ?'

'आपने सुना या नही कि रोमक ने आचार्य मेघ का कैसा अपमान किया और उस छोकरे भुवन ने भी ?'

'सुना तो है।'

'फिर ?'

'फिर ! राज्य की जो दुर्दशा हो रही है, उसकी जिम्मेदारी किस पर है ?'

दीर्घबाहु की आँखो पर शून्य-सा छा गया।

उस शून्य मे हिमानी ने अपनी बात बिठलाई,—'रोमक की है ज़िम्मेदारी, रोमक की। ऐसा निकम्मा राजा कही भी होगा !'

दीर्घबाहु हिमानी के आदेश या निर्देश की प्रतीक्षा मे था। हिमानी ने कहा, 'रोमक को गद्दी पर से उतारने का उपाय करो—बस।'

दीर्घबाहु हिमानी के केशपुष्पो को निरखने लगा। हिमानी ने उस पर से अपनी आँख नही हटाई।

कहती गई,—'आचार्य मेघ अपने साथ हैं। उनका बहुत व्यापक प्रभाव है। मन्त्र और जादू-टोना भी उनके बराबर कोई नही जानता। राजा को शाप देकर आये है। मिटाकर रहेगे। हम सबको उनका साथ देना चाहिये।'

दीर्घबाहु ने हामी भरने मे देर नही लगाई,— मुझसे जो कुछ भी करने के लिये कहा जायगा आनाकानी नही करूँगा। आपके कहने से अपना सिर तक दे दूंगा। खिलाड़ी जो ठहरा।'

हिमानी के होठो पर मन्द मुस्कान आई। दीर्घबाहु को लगा जैसे हिमानी के केश-सुमन उसके व्यक्तित्व पर मुस्करा रहे हो।

'आप सौगन्ध खा सकेंगे ? क्योकि पुरुषो का कुछ ठीक नही क्या कहे और क्या करें',—हिमानी की मुस्कान और भी विकसित हुई।

'अवश्य, अवश्य', दीर्घबाहु ने दृढ़ता के साथ आश्वासन दिया।

'किस देवता की ?'

'जिसकी आप कहे। मैं तो आपके कहने में जीवन भर चलने के लिये तैयार हूं।'

हिमानी उठ खड़ी हुई। दीर्घबाहु की ओर पीठ करके जटाजूट के फीते को सँभालने लगी जिसके फूल ढीले नही पड़े थे। दृष्टि उसकी खिड़की में होकर आने वाली किरणों पर थी। भौंहें सिकुड़ गई थीं। चेहरे पर ग्लानि थी। होठों पर व्यङ्ग की मरोड। कुछ क्षणों में ही उसने अपने भाव को बदला और दीर्घबाहु के सामने हो गई। होठों पर मृदुल मुस्कान आ गई थी।

बोली, 'बात तो आपने बहुत बड़ी कह डाली। उसका निभाव बहुत कठिन है।'

'आपके कहने से यदि इसी समय अपनी गर्दन काट कर न फेक दूं तो रही ?'

हिमानी हँस पडी। उसके मोती जैसे दाँतों मे आगे के दो कुछ टेढे थे, परन्तु वे भी दीर्घबाहु को अत्यन्त सुन्दर जान पड़े।

'अरे नही। यह नही। वही करना है जो मैंने अभी अभी बतलाया।'

'कोई कसर नही लगाऊँगा। इसी घड़ी से करने के लिये उद्यत हूं।'

'मुझे विश्वास है। राजा को गद्दी से उतारने के बाद जैसे ही अवसर हाथ लगा अपने जहाज से फणिश देश ले चलूंगी। बाबुल भी घुमाऊँगी। बड़े बड़े भवन, मीनारें, किले और कोट हैं वहां। ऐसे ऐसे नर-नारी और ठाट-बाट देखने को मिलेंगे कि हां·· ····'

दीर्घबाहु की आँखों का पानी गहरा हुआ। बड़ी उमङ्ग के साथ बोला, 'आपको देख लिया तो मानो सारी दुनियां देख ली और पा ली!' दीर्घबाहु खड़ा हो गया। पर उसके निकट नही बढा। हिमानी ने थोड़ा-सा मुंह फेरा।

'अब एक बात कहे बिना नही रहा जाता',—दीर्घबाहु कहते कहते अकचकाया। आँखें नीची पड़ गईं जैसे उसकी रत्नजटित सोने की चौड़ी करधोनी को देख रही हों जो वह अपने घाघरे पर वसे हुये थी। हिमानी ने कन्धों पर अपनी वारीक ओढ़नी सँभाली, आँखे तिरछी कीं और प्रोत्साहन दिया—'कहिये।'

'आप मेरी जीवन-संगिनी हो जावें……' दीर्घवाहु ने गला साफ किया।

'जी ?…मतलब ?' जैसे हिमानी मतलब न समझी हो।

'मतलब यह कि मैं आपको वहुत समय से चाहता हूँ, परन्तु प्रकट करने का सौभाग्य अब मिला।'

'हूँ…'

दीर्घवाहु उसकी ओर वढ़ने को ही था कि वह तुरन्त मुड़ी।

न होठों पर मुस्कान थी और न आँखो मे कोई रसीलापन। बोली, 'हमारे फणिश देश मे और वावुल मे भी जहाँ से हमारे पुरखे फणिश देश को गये व्याह का जो रिवाज है वह यहाँ से नही मिलता। हमारे यहाँ की नारी वँधुआ होकर नहीं रहती—काम पहले करती और कराती है, प्रेम पीछे।'

उसके रंगढंग को देखकर दीर्घबाहु सिकुड़ा।

'जी…जी…वह सब ठीक ही होगा।'

हिमानी फिर मुस्कराई। आँखो पर रंग आया। पीठ फेर ली। दीर्घबाहु के कानों में पड़ा—उसे लगा जैसे वीणा के ऊँचे स्वरों की झनकार हुई हो—'पहले कुछ काम करके दिखलाइये ' फिर ऐसी-वैसी कुछ बातें ' अभी-अभी आप मेरे कहने पर सिर देने को तैयार थे।' दीर्घबाहु ने नही देखा कि हिमानी के चेहरे पर कितनी अवहेलना खेल रही है।

'सो तो अब भी कहता हूं और कहूंगा। आप जब चाहें तब परीक्षा ले लें', दीर्घबाहु ने जोर देकर कहा।

हिमानी ने उसकी ओर मुंह फेरा। गले के मणिमाणिकों का हार डोल गया मानो दीर्घबाहु के भीतर की हलचल को थपथपा रहा हो। हिमानी के चेहरे की सारी रेखायें स्थिर थीं।

'जब तक काम की सफलता पूरी तरह अपनी मुट्ठी मे न आ जाय तब तक प्रेम की रत्ती भर भी बात मत करिये। प्रेम को बाधक मत बनने दीजिये। उसे साधक की भाँति अचल और स्तब्ध रहने दीजिये··· मेरा स्वभाव यही चाहता है। आप मानेंगे न ?

'अवश्य, अवश्य।' दीर्घबाहु अपने चार तल्ले वाले जूतों की तरफ देखने लगा मानों उन्हे पहिनकर कहीं बाहर जाना चाहता हो और खुले में गहरी साँस भरना चाहता हो। हिमानी ने आधे निमेष के लिये उसको ऐसा देखा जैसे सिंहनी औंधे पड़े हुये अपने शिकार को पड़ताल रही हो।

'बैठिये,' हिमानी के स्वर में कोमल आग्रह था। वे दोनों अपनी-अपनी चौकियो पर बैठ गये।

'क्या सोच रहे हैं ?' हिमानी ने पूछा।

'कुछ नही·· यो ही···कठिनाइयाँ तो उस काम में सामने आयेंगी, परन्तु मैं रुकूंगा नही, सबको सीधा करूँगा·· आपके निकट रहने का अवसर मिलता रहेगा ?'

'क्यो नही ? फिर जब जैसा काम पड़े।'

'मान लिया। अभी क्या करना है ?'

'राजा की लाखो निवर्तन भूमि को बेजोत करना है।'

'कैसे ?'

'ऐसे—हमारे दास भागे, आपके बेगारी भाग रहे है। राजा को बेट लेने का जो अधिकार है पहले उसे समाप्त करो। उसका जैसे ही यह सहारा टूटा कि गद्दी से उतारने का काम उङ्गलियों का खेल रह जावेगा। वह काम हम लोग मिलकर करें, ब्राह्मणों, पुरोहितो और उनके यजमानों मे गद्दी से उतारने का काम आचार्य मेघ और उनके साथी करेंगे।'

'आप जो कुछ कहेंगी सब करूँगा। बतलाती भर जाइये, कभी नहीं चूकूंगा। ओफ, आप कितने दूर का सोचती हैं और इस आयु में!'

हिमानी हँस पड़ी। दीर्घबाहु के मन मे लहर फिर उमड़ी, और—वही कुण्ठित हो गई।

हिमानी के कान में बाहर से एक आहट आई। वह नही चौंकी।

'पिताजी आ गये हैं। आचार्य मेघ के घर गये थे। मैं आती हूँ थोड़ी देर में। आप बैठिये।' वह उठ खड़ी हुई।

दीर्घबाहु थोड़ा-सा सकपकाया—

'कैसे मालूम हुआ?' दीर्घबाहु ने कुछ नही सुना था।

'मेरे कान बहुत तेज हैं,' हिमानी ने विजय की मुस्कान के साथ बतलाया और चली गई।

दीर्घबाहु अपनी नुकीली मूछों को उमेठने लगा। कभी सोचता था हिमानी मुझे चाहती है, कभी सोचता था बरफ की चट्टान जैसी ठण्डी है—निर्णय कुछ भी नही कर पाता था। अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि तकुये की तरह सीधी सच्ची और नुकीली है और—मेरी जन्म-सङ्गिनी अवश्य किसी दिन होगा।

थोडी देर मे अकेला नील उस कमरे मे आया। सिर पर एक रंगीन रूमाल बांधे था, तन पर कमर के नीचे तक का वेलबूटेदार कंचुक, जिसके घेरे में छोटे-छोटे फुंदने लटक रहे थे, जो कोई भी देखे कल्पना करले कि किसी बड़े श्रेणी का है। पैरों मे सुत्थन और चप्पल। उसने चप्पल नहीं उतारे।

आते ही हर्ष के स्वर में बोला, 'मुझे भी पसन्द है।'

दीर्घबाहु ने भकुये की तरह मुंह उठाकर प्रश्न सूचक मुद्रा अपनाई। नील अपने भीतरी भाव के अनुकूल सिर हिला रहा था।

नील ने स्पष्टीकरण किया,—'मुझे हिमानी के साथ तुम्हारा व्याह करना अच्छा लगेगा, पर है यह कि जब उसकी इच्छा हो तब। उसने जो शर्त लगाई है वह मुझे भी रुची है।'

दीर्घबाहु का संकोच दूर हो गया। चेहरा खिल गया। दृढ़ स्वर में बोला, जैसे सिर पर लदे किसी भारी कर्तव्य का पालन कर डाला हो,—'मैंने सब मान लिया है।'

नील ने उसे उत्साहित किया,—'आचार्य मेघ से जब तुम्हारे सहयोग की चर्चा चली तो उन्होंने तुम्हारी सराहना की थी।'

दीर्घबाहु ने हँसकर अपने पराक्रमों का सार संक्षेप में सुनाया,—'मैंने इस थोड़ी सी आयु मे अनेक बाघ, तेंदुये, रीछ, बराह और न जाने क्या क्या मारे हैं।'

नील ने साथ दिया,—'तुम्हारे छुटपन का एक हाल तो मैं कभी नही भूला। तुम्हारे भवन में भोज होने को था। स्त्रियाँ घी का कढ़ाव चढ़ाये पुये सेंक रही थीं कि तुमने एक पत्थर कढाई में फेक दिया। कई स्त्रियो पर घी के बड़े बड़े छींटे जा पड़े और उन्हें फलक पड़ आये।'

दीर्घबाहु की प्रसन्नता ने अधिक हँसी पकड़ी। नील गम्भीर हुआ।

'अब दूसरे काम करने हैं। पहला तो यह है कि जैसे बने तैसे कपिञ्जल को पकड़ना है। वह नैमिषारण्य की तरफ गया है। उसके साथ और भी अनेक दास भागकर गये हैं। इनके पकड़ने के लिये मेरे सिपाहियों के साथ तुम्हारे भी जावें। तुम्हारे भी बहुत से भगेडू बेगारी वही कही होगे। उन्हे भी घेरा और पकड़ कर लाया जावे।'

दीर्घबाहु सहमत हो गया।

[८]

जहाँ से नैमिषारण्य की सीमा का आरम्भ होता था वहीं से छोटी-छोटी नदिया नाले और झाड़ी झंकाड़ की बढनी भी दिखाई पड़ती थी। सीमा के निकट वाली नदियो के डावरों में थोडा थोड़ा जल था फिर ज्यों ज्यो झाड़ी वन की वड़ी वृक्षावलि मे समाई पानी अधिक, और हरियाली तो बसेरा सा डाले जान पड़ती थी।

नैमिषारण्य की एक ऐसी ही कुञ्ज के पेड़ की छाया में दिन के तीसरे पहर थका-मांदा कपिञ्जल फटे पुराने कपड़ों की एक पोटली लिये लाठी टेकता-टेकता आ बैठा। मन के साहस और शरीर की क्लान्ति के द्वन्द की रेखायें चेहरे पर थी।

बैठा ही था कि जिस पगडण्डी से वह इस स्थान पर आया था वृक्षों के पीछे से उसने किसी के बढते आने का शब्द सुना। उसने तुरन्त अपने को समेटा और ओट लेने को ही था कि एक बूढ़े के साथ एक बुढिया और लड़की को आते देखा। कपिञ्जल स्थिर हो गया। जब वे निकट आ गये तब फिर वृक्ष से टिक गया। तीनो वहीं आकर खड़े हो गये। उनमे से एक गौरी थी, दोनों उसके माता पिता। तीनो धूल और पसीने की रेखाओं में सने थे।

गौरी के मुर्झाये हुये चेहरे पर हर्ष की एक क्षीण आभा आई। आगे बढ़कर उसने कपिञ्जल को निरखा-परखा और बोली, 'मैंने तुम्हें अयोध्या मे देखा है..... '

'मैं अयोध्या का रहने वाला नही हूँ',—कपिञ्जल के बैठे हुये गले से निकला।

गौरी के पिता ने अपनी निर्बल आंखों से जांचने की चेष्टा की, परन्तु न पहिचान सका।

गौरी की माँ ने चीन्ह लिया; नील के भवन से कुछ दूर रहते हुये भी उसने कपिञ्जल को अयोध्या में कई बार देखा था। मार्ग मे सुनती आई थी कि नील इत्यादि के दास भाग खड़े हुये है और उनकी पकड़-धकड़ के लिये सिपाही छूटे हैं। मार्ग मे साथ के लिये अपने ही नगर के व्यक्ति को पाकर उसको अच्छा लगा। वह सिपाहियो से नही डरती थी। पर यह भी नही चाहती थी कि कपिञ्जल किसी सङ्कट मे पड़े। उसने गौरी पर आँखें तरेरी, परन्तु गौरी नही समझी।

गौरी ने कहा, 'नही नील पणि के एक दास से सूरत बिलकुल मिलती जुलती है......'

गौरी की माँ की थकी देह में स्फूर्ति उमड़ी। 'सूरतें तो संसार मे बहुतेरों की मिल जाती हैं तो इससे क्या', गौरी की माँ ने टोका।

'नही माँ, मैं जानती हूं' गौरी ने हठ किया।

गौरी की माँ ने गौरी की ओर मुह किये हुये कपिञ्जल को सान्त्वना दी,—'चुप रह? बड़ी जानकार बनी फिरती है। चलो भैया, हम सब एक दूसरे की सहायता करते चलेंगे। आश्रमो के पास वाले किसी गाँव में कोई काम मिल जायगा। बहुत थक गये होंगे, तुम्हारा कुछ बोझ मैं लेलूं?'

कपिञ्जल को ऐसा भाव और ऐसे शब्द न जाने कितने समय बाद सुनने को मिले थे।

उसकी थकावट दब गई और पुरुषार्थ मुखरित हो पड़ा,—'नही माँ जी, मैं आपका बोझ लूगा न कि आप मेरा, वैसे मेरे पास है ही क्या?' कपिञ्जल ने इधर-उधर आहट ली।

गौरी की माँ ने कहा, 'डाकू लुटेरे यहाँ कोई नही मालूम होते। अपने पास है भी कुछ नही।'

उसकी बात कपिञ्जल ने समझ ली। वे सब वहां से चल दिये।

धीरे धीरे चलकर, गाँव-गाँव बसेरा लेते हुये ये लोग दो तीन दिन मे आश्रमों के पास जा पहुंचे। उस दिन दोपहर हो गया। गौरी को

इस बीच में मालूम हो गया था कि कपिञ्जल कोई विपद ग्रस्त दुखिया है, पर ठीक ठीक नही जान सकी थी।

थोड़े से विश्राम के लिये एक कुञ्ज के नीचे बैठे ही थे कि कुछ दूरी के वृक्षो की सघनता के पीछे बहुत से लोगो की भारी पदचाप सुनाई पड़ीं। कपिञ्जल चौंका और गौरी की माँ भी। गौरी की माँ संकेत पाकर गमनोद्यत। कपिञ्जल वहाँ से तुरन्त चल दिया और कछ क्षण में विलीन हो गया। गौरी कुछ पूछना चाहती थी तो उसकी माँ ने उँगली से वर्जित कर दिया।

थोड़ी देर मे पाँच छः हथियार बन्द सिपाहियों का एक दल उनके पास आ धमका।

एक ने पूछा, 'एक मनुष्य यहाँ देखा ?'

गौरी के पिता के मुह से निकला—'ऐं?'

गौरी की माँ और गौरी के मुंह से एक साथ,—'कैसा ?'

'कौनसा ?'

'कपिञ्जल नाम का शूद्र दास, अयोध्या का ?' सिपाही ने बतलाया।

गौरी की माँ ने नाही की,—'मनुष्य तो बहुत देखे हैं, पर नाम किसी का नही जानते...'

'कहाँ देखे हैं ?'

'बहुत देर पीछे।'

गौरी ने मिलाया,—'और न यह जानते हैं कि कौन कहाँ का है। हम तीनो अवश्य अयोध्या के रहने वाले हैं, पर हममे से दास कोई नही है।'

'वैसे चवड़ चवड़ करने पर लगी है! माँ ने डांटा।'

सिपाही आपस मे कहते हुये चले गये 'चलो आगे, यहीं कही होगा इन मूर्खो से पता नही लगेगा।'

इनके चले जाने पर वे तीनों एक दूसरी पगडण्डी पर चले गये। फिर उन्हे कपिञ्जल नही मिला क्योंकि चक्कर काटता हुआ भटक गया था।

कुछ दूर चलकर गौरी और उसके माता पिता वन के एक ऐसे भाग में पहुंचे जहां उन्हें कुछ स्त्रियां दिखलाई पड़ी। देह पर रङ्ग-बिरङ्गी कंचुकिया और मोटी रङ्गीन धोतिया पहने हुये फलमूल इकट्ठे कर रही थी। हँसती जाती थी, बातें करती जाती थी। इन तीनों को अपने पास आते देखकर जरा चौकन्ना हुई। परिचय पूछने पर उन्हें उन तीनों की व्यथा और विपत्ति का हाल मालूम हुआ। उन्होंने तुरन्त अपनी टोकनियो में से इनके खाने के लिये फल बढ़ाये।

गौरी के पिता ने कहा,—'तुम्हारा कुछ काम किये विना यों ही ग्रहण नही करेंगे।'

एक लड़की उनमें कुछ अधिक बातूनी थी।

बोली, 'तो थोड़े से फलमूल बिनवादो, फिर हमारे घर चलकर विश्राम करना।' अन्य स्त्रिया चुप रहीं।

उन तीनो ने स्वीकार किया। फलमूल के संग्रह पर जुट पड़े। परंतु उन स्त्रियो ने उन्हे यह परिश्रम अधिक समय तक नही करने दिया।

एक ने उस लड़की से कहा,—'वहुत हो गया अम्बिका। ये सब दूर से आये हैं। बूढ़े बाबा बहुत थके हुये हैं। इन्हे अपने घर ठौर दो।'

'फिर कुछ काम ?' बूढ़े ने विनय की।

अम्बिका ने उत्तर दिया,—'काम भी मिल जायगा। ये इनका क्या नाम है बाबा ?'

इनका नाम गौरी हैं, मेरी पुत्री है। बडी भोली है।'

'और मेरा नाम अम्बिका है। ठीक रहा। सौ गायें कोई साल भर चरावे तो दो गायें मजूरी में मिलती हैं और दोनो जून दूध पीने को। करोगी गौरी ? मैं भी गायें चराती हूँ, और गायें चराने के समय गीत भी गाती हूं।'

'सब बखान करदे इसी घड़ी।' एक स्त्री ने हँसकर कहा, 'अब लेजा इन्हें अपने साथ, भूखे प्यासे होगे विचारे। देखो तो इनका शरीर कैसा हो गया है! और यह गौरी, जैसे कुम्हला रही हो।'

गौरी प्रतिवाद के लिये हँसी। उन स्त्रियों को गौरी बहुत भली लगी।

उस स्त्री ने बूढ़े और बुढ़िया को काम बतलाया,—'तुम्हारे योग्य भी काम मिल जायगा। ऊन बाटना, रुई का धुनना कातना, कंडों का थापना, ईंधन का इकट्ठा करना और न जाने कितने काम हैं। जितना बने उतना करते रहना। अन्न और कपड़े मजूरी मे मिलेंगे। एक घर भी रहने को मिल जायगा।'

वे तीनो प्रसन्न हो गये। धन्यवाद देते हुये अम्बिका के साथ गाँव चले गये।

[९]

कपिञ्जल कभी इस दिशा में तो सिपाही उस दिशा में इस तरह उस वन खण्ड मे उन्हे चक्कर काटते हुये काफ़ी देर लग गई। कपिञ्जल को गांव का मार्ग नही मालूम था, परन्तु सुना था कि यही कही आसपास है। ऋषियो के आश्रम भी दूर नही थे, कपिञ्जल नही जानता था। उन स्त्रियो का कण्ठ स्वर सुनकर उन्ही की दिशा मे बढा।

स्त्रियां फल मूल संग्रह कर रही थी और एक गीत भी गाती जाती थी जिसका भावार्थ यह है—

'हम नाना प्रकार के सत्कर्म करते हुये सौ वरस जीवित रहें; हमारा वल पराक्रम और ज्ञान बढ़े, फलफूल और गो धन से भरी पृथ्वी सदा हरियाती रहे और मुस्कराती हुई शरद ऋतु सौ वरस तक हमारी आँखों के सामने वार वार आती रहे; हमारे देखने और सुनने की शक्ति सौ वरस तक ज्यो की त्यो सशक्त बनी रहे; स्वजन और धन धान्य सदा भरे पूरे रहें; और हम अदीन होकर कल्याणकारी सङ्कल्पों को सदा मन में बसाये रहे।'

कपिञ्जल एक पेड़ की आड़ मे ठिठक गया। कुछ समय के लिये अपनी दीन हीन स्थिति को भूल कर दङ्ग रह गया—यहां की ये स्त्रियां उन गीतों को गाती हैं जिनको वहा के पुरुष दूसरो से वचा-वचाकर न जानें कितनी जटिल रीतियो के साथ गाते हैं! गाने का ढङ्ग अवश्य इनका उस श्रेणी का नही है, परन्तु सिधाई का निरालापन कितना है!!

कपिञ्जल और आगे नही सोच सका। एक स्त्री फल-फूल का संग्रह करती हुई उसके पार्श्व मे आ गई। देखते ही तन कर सीधी खड़ी हो गई।

कर्कश स्वर मे वोली, 'तुम कौन?' वह डरी नही।

कपिञ्जल थरथरा गया। उसे आड़ छोड़ना पड़ी। अन्य स्त्रियाँ सतर्क होकर आत्मरक्षा और आक्रमण के लिये सिमट आईं।

'मैं विपद का मारा एक साधारण दीन जन हूँ। यहा किसी आश्रम की छाया और शरण मिल जाय तो प्राण बच जायेंगे।' कपिञ्जल का गला कांप रहा था।

'इस लम्बे चौड़े वन मे ऋषियो के आश्रम है, गाव हैं और इधर उधर भगेड़ू चोर लुटेरों के भी अड्डे हैं। हम किसी से नही डरतीं। 'ठीक-ठीक बतलाओ तुम कौन हो ?'

'ठीक-ठीक मेरी पीठ के घाव बतला देंगे।'

कपिञ्जल ने अपने फटे कपड़े को थोड़ा-सा और उघाड़ा। स्त्रियों ने देख लिया, पिघलने लगी।

'किसने मारा तुमको ?'

कपिञ्जल ने थोड़े मे अपनी दासता का इतिहास और वर्तमान दुर्गति का कारण बतला कर कहा, 'तीन दिन से अधपेटा हूँ बहिनो। किसी ऋषि का आश्रम निकट हो तो बतला दो, चला जाऊँ।'

'आश्रम कुछ दूर है। हमारा गाव वह रहा।'

'नही बहिन। उस साहूकार के गण मेरे पकड़ने के लिये आये हैं। गांव से बाध ले जायेंगे, आश्रम में रक्षा हो जायगी।'

एक स्त्री ने हाथ का संकेत करके बतलाया, 'धौम्य-ऋषि वहाँ हैं। सबसे निकट।'

कपिञ्जल चलने लगा तो कुछ स्त्रियों ने उसे खाने के लिये फलमूल बढ़ाये। भूख बहुत खरी थी ही उसने ले लिये और खाने बैठ गया। खाते-खाते उसने जानना चाहा कि किसके घर क्या होता है ? उन्होने बतलाया कि सब आर्य स्त्रियाँ है—किसी के घर दर्जी का काम होता है, किसी के घर लुहारी का, और किसी के यहा बुनकरी का, धुनाई का, बढ़ई का; खेती और पशु पालन तो सभी के यहाँ।'

कपिञ्जल काफी खा चुका होगा जब उसे एक दिशा में कई लोगों की आहट मिली। तुरन्त काँप कर खड़ा हो गया।

बोला, 'वे आ रहे हैं।'

एक ने धीरज दिलाया, 'मत डरो, हम उस दिशा में जाती हैं।'

दूसरी ने ढाढ़स दिया, 'उस पुरानी सीख को न भूलना—उठो! जागो!! और बडो के पास जाकर सीखो!!! चले जाओ वही कही।'

वे सब उस दिशा मे चली गईं जिससे आहट आ रही थी। कपिञ्जल दूसरी दिशा मे चला गया।

स्त्रिया थोड़ी ही दूर गई होगी कि उन्हे पाँच छ. सशस्त्र सिपाही मिले।

एक सिपाही ने पूछा, 'तुम लोगो ने हट्टाकट्टा सा सांवला दास देखा है?'

एक बोली, 'दास! और हट्टाकट्टा सा!! यहा कोई आस-दास नही। चोर लुटेरे दूर उस दिशा मे कही होगे।'

'कितनी दूर?'

'हम क्या नापने गईं? होगा कोई पाव योजन, आधा योजन।'

'या एक योजन·· कौन जानें।'

उन सबो के स्वर मे तीखापन था।

'और गाँव?'

'वह रहा पास।'

जब सिपाही चले गये स्त्रियों के नेत्रो और होठो से विजय की मुस्कानें झर पड़ी।

[१०]

नमिषारण्य के एक दूसरे खुले भाग में फलदार पेड़ों की कुञ्जें थीं और ऋषियों के आश्रम। फूल से छाई हुई हवादार कुटियां जिनमे आंधी, मेह-बूंद और धूप से बचने का भी प्रबन्ध था। बीच बीच में शाक भाजी के छोटे छोटे खेत थे। इनसे हट कर आश्रमों की छोटी-बड़ी गोशालायें भी थी।

धौम्य ऋषि का आश्रम इन वन खण्ड के किनारे था। इससे थोड़ी सी ही दूरी पर अरण्य की सघनता का प्रारम्भ हो गया था।

सन्ध्या हो चली थी। अस्ताचलगामी सूर्य की कोमल किरणों पर आश्रमों के हवन के धुआ का पुञ्ज ओढ़नी-सी उढ़ा रहा था। वृक्षों की लम्बी छाया हरी सुनहली दूबा पर मन्थर पवन के झोंको के साथ मन्द-मन्द थिरक रही थी। कही कही से आने वाला ऋचाओं का गान चिड़ियों की चहक के साथ गूंथकर उस छाया को स्फूर्ति सी दे रहा था।

धौम्य संध्या कार्य से निबट कर एक वृक्ष के नीचे पड़ी हुई छोटी-सी पीढ़ी पर जा बैठे। उनके अन्य शिष्य तो इधर-उधर के कार्यों में व्यस्त थे, तीन उनके पास आ बैठे; आरुणि, वेद और कल्पक—ये तीन मुख्य थे।

धौम्य की अवस्था कितनी होगी कोई नही कह सकता था। कम से कम एक सहस्र के समझे जाते थे। सिर, दाढ़ी के बाल भूरे थे, परन्तु आंखों का तेज और देह की लहरें एवं चमक बतलाती कि नौजवान हैं। कोपीन पहिने थे। कटि में मुञ्ज। काठ के पीढ़े के नीचे खड़ाऊँ रक्खी थीं। उनकी आयु को चाहे कोई भी न जानता हो, परन्तु स्वभाव विख्यात था।

नित्य की भाति वे जो प्रवचन संध्या के समय किया करते थे इस समय भी किया—

'अब तुम प्रातःकाल किये संकल्पों को सोचो, फिर कृत्यों का स्मरण करो— कितना सोचा था, कितना कर पाया ?'

तीनों शिष्यों के सिर के बाल लम्बे थे। तीनों स्वस्थ थे। आरुणि अधिक पुष्टकाय। नारङ्गी रङ्ग के कोपीन उनके स्वास्थ्य और चेहरों की अनुपातमयी रेखाओं को शरद् सन्ध्या की अरुणिमा में दीप्ति दे रहे थे।

ऋषि की आख सन्ध्या के क्षितिज पर थी। वेद पहले वोला, 'गुरुदेव, मैंने जितने सकल्प किये थे, उनमे से एकाध ही पूरा होने से बचा होगा।' वेद प्रकृति का अधीर था, परछिद्रान्वेषण करने मे चुस्त, अपने दोष देखने में सुस्त, दूसरों की छोटी छोटी सी बातो पर हँसने वाला, पर उसकी भूल पर कोई हँस दे या उसके हठ मे कोई आड़े आ जावे तो उसकी हिंसा जाग पडती थी। वैसे बहुत कुशाग्र बुद्धि और अध्यवसायी।

धौम्य ने आरुणि से प्रश्न किया।

आरुणि ने उत्तर दिया, 'पूरे प्रकार से एक संकल्प को भी कृत कार्य नहीं कर पाया।'

आरुणि मितभाषी था। जितना करता था उससे कम बतलाता था। धुन का पक्का, ऊपर से रूखा, भीतर बहुत उदार प्रकृति का।

ज़रा सा झिझक कर बोला, 'गांव की मङ्गल बीथि का जो मार्ग बना है उसको आज भी भलीभाँति स्वच्छ नही कर पाया।'

'गांव के पशु वीथि मे वार बार गोबर जो कर देते है ! इधर गांव वालो मे कर्त्तव्यशीलता मानो है ही नही।' वेद ने हँसी को दबाकर टिप्पणी की -

धौम्य अपने होनहार शिष्यों को वोलने की स्वतंत्रता दिये हुये थे। जब उसका दुरुपयोग देखते थे तव अनुशासन में चूकते न थे।

'हूं। तुमने कल्पक ?' धौम्य ने तीसरे से पूछा। यह भी कुशाग्रबुद्धि और अध्ययनशील था, परन्तु आरुणि के धीर व्यक्तित्व और वेद की मनमौजी बातो के वीच उसका मन डांवा डोल हो जाया करता था,

कभी इधर, कभी उधर। कल्पक ने बतलाया,—'थोड़ासा सोचा था, वह कर सब लिया—गांव से भिक्षा ले आया और वेद पाठ करता रहा।'

'कल से एक महीने तक वन में फल संग्रह करने जाया करो।' धौम्य ने आदेश किया।

आरुणि ने पहले स्वस्ति की,—'जो आज्ञा गुरुदेव।'

'नही, तुम नही, वेद जाया करेगा।'

'मैं अकेला या मेरे साथ कल्पक भी ?'

'नही अकेले ही।'

वेद को चिन्ता लगी। संध्या का सूर्य अपनी किरणें समेट चुका था। अँधेरा सिमट उठा था।

उसी समय कपिञ्जल निकटवर्ती कुंज के एक वृक्ष के पीछे आकर खड़ा हो गया। उसने मन ही मन धौम्य को आदर समर्पित किया।

उस घने जङ्गल मे बाघ, सुअर, और कभी कभी हाथी भी सामने आ पड़ते हैं,—वेद की हँसी चली गई थी।

धौम्य ने समझाया,—'तुममे संकल्प की दृढ़ता नही है। उसकी साधना इसी प्रकार होगी। दृढ़ संकल्प की साधना कामधेनु गाय है। नि:स्वार्थ भाव ही उसे दोह पाता है। डरो कभी मत। मनको हीन और क्षीण कभी मत होने दो। वायु और अन्तरिक्ष किसी से डरते हैं ? मौत, सत्य और शौर्य किसी से भय खाते हैं ? भूत और भविष्य किसी से भयभीत होते हैं ? फिर तुम्ही क्यो किसी से डरो ?'

वेद स्पन्दित हुआ। उसने धौम्य की बात को गांठ में बांधा। भाव प्रवण था, फिर आगे जितना निभा सके। धौम्य जानते थे।

कपिञ्जल के भी कानों मे धौम्य की बात पड़ी, और उसके हृदय में जाकर बैठ गई। उसी समय उसने अपने पीछे आहट पाई और मुड़कर देखा तो नील के सशस्त्र सिपाही उसी पर टूट पड़ने के लिये आ रहे हैं!

कपिञ्जल दौड़कर धौम्य के सामने आया और उनके चरणो में गिर पड़ा।

'आपकी शरण में आया हूँ ऋषिवर, अभयदान दीजिये।'

शिष्य चकित हुये। सिपाही आकर थोड़ी दूर पर ठिठक गये।

धौम्य ने अभय मुद्रा का हाथ उठाया—

बोले, 'डरो मत। कौन हो?'

'अयोध्या का एक दीन दरिद्र शूद्र, दास।'

'सुखी रहो।' धौम्य ने सिपाहियों से पूछा 'तुम कौन'

उन्होंने परिचय दिया,—'अयोध्या के प्रसिद्ध श्रेष्ठी नीलपणि के सिपाही हैं हम लोग। यह उनका दास…'

परिचय पूरा नही हो पाया था कि आरुणि उठ खड़ा हुआ। इसके पहले ही वेद लपक कर उन लोगो के पास जा पहुंचा था।

'आश्रम मे कैसे घुस आये जी?' उसने चुनौती दी।

धौम्य ने नही रोका।

एक सिपाही ने कुछ धृष्टता के साथ उत्तर दिया, 'यह हमारे स्वामी का दास है। रिन चुकाया नहीं, यहाँ भाग निकला है। दूसरे दासों को भी बहका भड़का ले आया है।'

कपिञ्जल गिड़गिड़ाया,—'मुझे बेभाव, मारा पीटा है।'

'यह भागता नही तो और क्या करता?' धौम्य ने सधे हुये स्वर में कहा।

अब आरुणि अपनी बलिष्ठ बांह को तान कर बोला, 'यह महर्षि धौम्य का आश्रम है। जाओ यहाँ से।'

'लौट जाओ। यहाँ से तो इस दुखी शरणागत को तुम्हारा राजा रोमक भी पकड़ा कर नही ले जा सकता।'

'हठो!' उन तीनों शिष्यो ने मुक्के तान कर लौट पड़ने की दिशा पकड़ने वालों को दिखलाई।

नील के अनुचरो के हाथ पैर ढीले पड़ गये और हथियारों की ठसक मोथरी हो गई। वे सब चले गये।

'तुम भूखे होगे ?' धौम्य ने पुचकार के स्वर मे कपिञ्जल से प्रश्न किया।

कपिञ्जल का गला भर आया था—

'मैं भूखा नही हूं। वन में फल मूल मिल गये थे। कुछ साथ लाया हूं। मुझे अपनी सेवा मे लेने की दया करें तो मैं अमर हो जाऊँगा।'

धौम्य ने बारीकी के साथ कपिञ्जल को परखा।

'अर्थात्—मेरे शिष्य बनना चाहते हो ?' वेद और कल्पक ने अपनी ग्लानि युक्त मुस्कान को धौम्य से छिपाने की चेष्टा की। धौम्य से वह नही छिपी।

'मैं शूद्र हूँ महर्षि, अपात्र और असमर्थ—'

'परन्तु मैं तुम्हारे भीतर कुछ और देख रहा हूँ जो विरलों मे ही दिखलाई पड़ता है।'

अब वेद और कल्पक सिकुड़े।

कपिञ्जल हिचकिचाया,—'देव, बिना राजा की आज्ञा के'' या''' अर्थात् अनुमति के'' इस आश्रम मे कैसे मैं—'

धौम्य जरा सा हँसे। अब आरुणि मुस्कराया, जैसे किसी लम्बे तड़ङ्गे आम पर मौर आ गया हो।

धौम्य से कहा,—'तो तुम शास्त्र की भी एकाध बात जानते हो। मैं शास्त्र की अनुपयुक्त या अनुचित बातो को नही मानता। श्रुति की एक बात सब के लिये सदा लागू है—ऊपर उठना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है। मैं तुमको अपना शिष्य बनाऊँगा।'

कपिञ्जल की कृतज्ञता का पार न रहा। उसे लगा जैसे यकायक बहुत ऊँचे उठ गया हो।

धौम्य ने उसकी ऊँचाई को साधा—

'तुमको योग सिखलाऊँगा। योगी बनोगे, पढना लिखना सीखोगे—सब कुछ सीखोगे।'

'धन्य गुरुदेव !' उन तीनों शिष्यो के मुंह से निकला—आरुणि का स्वर अधिक गम्भीर था, वेद और कल्पक का अपेक्षाकृत निर्बल।

सन्ध्या हो चुकी थी। अन्धेरे की चादरों पर चादरें पूर्व दिशा की ओर से इकट्ठी होती चली आ रही थीं।

धौम्य बोले, 'अब सब कुटी में चलो और रात्रि की गोद पकड़ो। वह शान्ति देती है, सुलाती है, व्यथा हरती है। सूर्य की रश्मियां प्रकृति के अञ्चल में जो सामर्थ्य छोड़ जाती हैं उसे रात्रि निद्रा के शून्य में पक्षपात रहित होकर बांट देती है। अपने फल उठा लो कपिञ्जल, भोर खा लेना।'

कपिञ्जल की पोटली खुल गई थी और उसमें से नारङ्गी, सेव और केले बिखर गये थे।

कपिञ्जल ने उन्हे बीनते हुये बहुत नम्र स्वर में निवेदन किया, 'कुछ फल गुरुदेव ग्रहण कर लें .....'

धौम्य हँस पड़े। वेद की भ्रकुटी तन गई। धौम्य ने कपिञ्जल की पीठ पर हाथ फेरते हुये कहा,—'आश्रम-प्रवेश-संस्कार के उपलक्ष में एक केला लूगा। दे दो।'

[११]

कपिञ्जल को एक कुटी में स्वच्छ स्थान मिल गया और वस्त्र भी। दूसरे दिन स्नान के उपरान्त कपिञ्जल को गेरुवे रङ्ग की कोपीन दी गई। धौम्य ने उसे योग की कुछ क्रियायें सिखलाईं और अन्त मे बोले, 'तुमको जो कुछ बतलाया है उसका लगातार अभ्यास करो। यह न भूलना कि ध्यान धारी निडर ही पराक्रमी होता है। एक दिन आयगा जब तुम्हें अपने भीतर चमत्कार दिखलाई पड़ेगा। विद्या आती है नम्रता से, प्रश्न पर प्रश्न, खोज पर खोज करने और दूसरों की सेवा करते रहने से।'

कपिञ्जल ने गुरु के पैरों में अपना माथा रक्खा और उसी समय से निर्दिष्ट कार्य में जुट गया। अब उसके मन में न नील का डर था न किसी और का।

नील के भवन और व्यवसाय संस्थान में जो चहल-पहल रहती थी उसका चौथा अंश भी न रहा। बहुत सा सामान इधर उधर बिखरा पड़ा था। उठाने धरने वालों की कमी के कारण झखसी मार रहा था। कुंआं खेती का भविष्य भी अन्धकार में जा पहुंचा था। खेती में कहीं हल पड़े थे, कही बैल भटक रहे थे। जिन खेतो में गेहूँ और जवा की फसल चार चार छ. छः अंगुल ऊपर निकल आई थी वहां क्षेत्र स्वामियों के ही बैल चरे जा रहे थे। देखने भालने वाला कोई नही। किसी कुयें पर सूखा चरसा पड़ा था जिसके आँसू तक सूख गये थे!

राजा और सामन्तों की खेती भी सङ्कट में पड़ने वाली थी।

राजा के कुयें से पानी दिये हुये एक खेत में दो महीदार काम करते करते कह रहे थे—

'बेगार करते करते मरे ही तो जाते हैं।'

'भुगतो जब तक निकल चलने के लिये कोई और मार्ग नही मिला है।'

राजा अपने सिद्धान्त दूसरों के प्रति बर्तने पर तो उतारू हो जाता था, परन्तु निज के काम में उनका व्यवहार करने की लगन उसमें न थी।

नील और मेघ के वर्ग से सतर्क रहने लगा था, फिर भी अपने व्यवहार की त्रुटियों की ओर उदासीन था।

नील के भवन के सामने चौड़ी सड़क के पार उसकी पशुशाला थी जिसमे उसकी गायें, भैसें, खच्चर और घोड़े बँधते थे। पशुशाला बड़ी थी। एक भाग को एक लम्बा चौड़ा कमरा घेरे हुये था जिसमें घास भरी रहती थी। पशुओं के सामने चारा डालने के लिये कोई नहीं! जो थोड़े से नौकर रह गये थे वे क्या क्या करते? एक दिन दर्प में आकर बाप-बेटी आत्मनिर्भरता के आकस्मिक मद में पड़ गये और पिल पड़े उस कमरे में से घास निकाल कर पशुओं के सामने डालने पर! अरे रे रे! यह क्या?' यह क्या?' कुछ नौकर दौड़ पड़े। ये दोनों पसीने में डूबे हुये और घास के छोटे-छोटे तिनकों से लिपटे हुये थे। इस दर्प का प्रभाव बहुत ही क्षरण स्थायी रहा। उन्हें शीघ्र अवगत हो गया कि ऐसे काम नही चलेगा।

'कुछ वेतनभोगी नौकर रखने पड़ेंगे', नील ने हिमानी से कहा।

हिमानी को सारी परिस्थिति काँटे सी चुभ रही थी।

'रखना ही पड़ेंगे। राजा की ढिलाई और अयोग्यता के कारण यह भोगमान भुगतनी पड़ रही है। अपना कारबार जव भी सुधरे उसके तो हर एक काम मे आग लगानी पड़ेगी। देखूगी।'

'हां देखूंगा', नील ने धीमे और अधिक निश्चय के स्वर मे समर्थन किया।

कन्जूस तो थे ही, प्रतिहिंसा की भावना ने उन दोनो को और भी संकीर्ण बना दिया।

उसी दिन जब घास के तिनको और पसीने को पोछ-पाछकर दूर किया ही था कि पड़ोस की एक दरिद्र स्त्री आई।

नील को उसके आते ही लगा जैसे कांटों से लदी आंधी आ गई हो। हिमानी से पूछा, 'यह कौन घुसी आ रही है यहा ?'

'होगी कोई, मैं नहीं पहिचानती', हिमानी ने कहा और रुखाई के साथ उस स्त्री से बोली, 'क्या बात है ?'

स्त्री ने रुआंसे स्वर में उत्तर दिया, मेरा पति घर में बीमार पड़ा है। दवा के लिये दाम नही। भीख मांगती नही। कुछ उधार दे दो।'

'हुं ! उधार दे दो !! राजा से लो जिसका यह कर्तव्य है। हमारे पास देने के लिये कुछ नही।' नील ने अपनी घृणा व्यक्त की।

'जाओ यहा से',—हिमानी कुढी। वह नील से किस बात में कम थी ?

'धरे रहो अपनी निधि और निरख-निरख कर जुड़ाते रहो लालच भरी छाती को',—स्त्री चिड़चिड़ाती हुई चली गई।

'है कैसी ये ! चिथड़े तो पहिने है। पर घमण्ड कितना ! ओफ !! पापा, क्या दिन आये हैं !!!'

'रोमक के राज्य मे जो कुछ भी न हो थोड़ा है', नील ने उस दरिद्र स्त्री के आहत स्वाभिमान को भी राजा के मत्थे मढा।

उस दिन सन्ध्या समय नैमिषारण्य से उसके वे अनुचर लौटे। नील को सारा समाचार सुनाया। नील जानता था कि नैमिषारण्य के ऋषियों पर किसी का बस नही। वह और उसके सजातीय ऋषियों मुनियों से अपने को दूर रखते थे। उनके लिये मन में कोई श्रद्धा नहीं थी। नील ने मेघ से कहा। शायद कुछ कर सके, क्योंकि वह मेघ की शक्ति को नापतौल से कही अधिक मानता था।

मेघ ने धौम्य के लिये केवल इतना कहा, 'बड़ा उल्टा मनुष्य है, बहुत आयु का हो जाने के कारण सनकी हो गया है।' फिर तान रोमक पर आकर टूटी,—'इसका अड्डा मिटाया कि सब कुछ सीधा हो जायगा।' वे दोनों साधनों और उपायों पर बात करते रहे।

[१२]

जनपद की आर्थिक अवस्था बराबर बिगड़ती चली जा रही थी। राजा पशु-बलि के विरुद्ध था। अन्न, घी और चन्दन ही होमता था। उसने ऐसे यज्ञ पर यज्ञ किये, परन्तु कुछ न हुआ। अग्निदेव को कुपच-सा हो गया!

आर्यों का एक सम्प्रदाय इस प्रकार के यज्ञों के भी विरुद्ध था, उसने व्यङ्ग कसे। अनेक जन की श्रद्धा यज्ञों पर से हटने लगी। रोमक को इसकी चिन्ता न थी। उसे चिन्ता थी जनता में बढ़ते हुये असन्तोष की।

इस असन्तोष को दूर करने के लिये रोमक ने कुछ यत्न किये, परन्तु उनके करने में तारतम्य न था और न विवेक से काम लिया गया। सौ कुयें खुदवाने का सङ्कल्पकिया; संकल्प ने निश्चय का रूप पचास पर और प्रण का पचीस पर पकड़ा! पन्द्रह खुद गये, दस अधखुदे पड़े रह गये!। तालाबों से कुल्याओं के खुदवाने बनवाने की भी यही गति हुई। रोमक ने उत्साह मे आकर निजी कोष खोला—टीन, ताबा, लोहा, पत्थर इत्यादि की खानों से जो कर आता था वह राजा का निजी धन समझा जाने लगा था। मजूरो को अच्छी मजूरी मिली। असन्तोष मे कमी आई, परन्तु फिर उसने अपना हाथ सिकोड़ना आरम्भ जो किया तो असन्तोष दुगुना हो गया। इस काम को पकडा, उसे छोड़ा इस नीति मे उसे मित-व्ययता दिखलाई पड़ती थी, परन्तु यह धारा उसे बहुत घाटे की पड़ी।

श्रमिकों की मजूरी कम करदी। उन्होने काम आधा कर दिया, राजा ने कोप का प्रदर्शन किया तो उसके शत्रुओं की संख्या बढ़ने लगी।

हाट बाजार का हाल बुरा हो गया। बहुत सी दूकानें तो वैसे ही बन्द हो गई थी; जो किसी बेबसी के कारण खुलती भी थी वे बन्द होने के दिन गिन रही थी। लोगो की क्रय शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी।

दूकानदार, ग्राहकों को पुकारता—'बहुत सस्ता कर दिया है' तो वे अनसुनी कर देते। सामान के देखने तक की इच्छा उनके मन में नही जागती थी। पण्यशालायें भिनकती रहती थी।

अयोध्या नगर के महापथों तक का हाल बहुत बुरा हो गया था। राजा ने बरसो से नही सुधरवाये थे। सडकों के जल छिड़काव और रात में स्तम्भ दीपो के प्रकाश की व्यवस्था युगो से राजा के कर्तव्य मे मानी जाने लगी थी। यह सब बन्द हो गया। भोजगृहों और जुआघरों से जब लोग अन्धेरी रात मे घर लौटते थे और सड़क के गड्ढों मे गिरकर धूल समेटने लगते थे तब खुलकर राजा को गाली देते थे—

'मर गये! मर गये!! सत्यानाश हो जाय इस राजा का!!'

राजा के मूंह पर भी खरी-खोटी कहने का साहस साधारण जन के मन में बढ़ गया।

रोमक राजभवन मे पड़ा नही रहता था और न वह विलासी था। वह तत्कालीन वातावरण की उपज और अपनी प्रकृति का खिलौना था।

मजदूर काम चाहे कुछ कम करे, पर मजूरी कम ले, खेलता नाचता रहे चाहे पेट को खाली रक्खे—मजदूरों के साथ उसका इस प्रकार का बर्ताव था।

एक दिन एक तालाब-खुदाई के काम पर गया। मजदूर ठिकाने से हाथ-पैर नही चला रहे थे। तो भी रोमक ने उनकी पीठ ठोकी,—'खूब कर रहे हो। तैयार होने पर इस ताल का नाम भुवन सागर रक्खूंगा। ठीक है न?'

कुछ ने हामी का सिर हिलाया, कुछ एक-दूसरे की तरफ देखने लगे।

'यह काम हो ले तो फिर नहरें खुदवाऊंगा। किसी के लिये भी काम की कमी नही रहेगी।'

मजदूरों का उत्साह नही जागा।

'मजूरी भले कुछ कम मिले, क्योकि भाई मेरे पास अन्न और धन की बहुत कमी हो गई है, परन्तु काम तो तुम्हें मिलता रहेगा।'

'जो कुछ मिल जाता है उसी मे तो हमारा पेट नही भरता।'

'तो मैं क्या करूँ? यह सब तुम्ही लोगो के लिये तो कर रहा हूँ। तुम्हारे यहां अपनी अपनी कुआ खेती तो होती है। परोपकार का भी थोड़ा-सा ध्यान रक्खो।'

'पहले वेगार मे आपके दस निवर्तन जोतते थे तो अब हमें दस से तीस जोतने पड़ते हैं! पहले लगान में उपज का सोलहवा भाग लिया जाता था फिर दसवां हुआ, उसके बाद छठवा और अब चौथाई लिया जाने लगा है! उधर अकालों की विपत्ति, इधर वढ़े लगान का बोझ!!'

पहले थोड़े से लोग वातचीत मे भाग ले रहे थे, फिर इनकी संख्या बढ़ गई। चायँ चायँ होने लगी। रोमक ने सोचा किसी ने बहकाया है। पूछा तो रौरा मच गया।

एक ने गला फाड़ कर कहा,—'हमारे पेट ने।'

डांट फटकार व्यर्थ थी, इसलिये रोमक ने फ़ुसलाया—

'अरे भाई यह सब तो होता ही रहेगा, चलता ही रहना है—चलो तुम सबको आज से सभा-प्रेक्षिणी मे और खुले मे नर्तकियों के नाच, नटों के नाटक और खिलाड़ियों के खेल दिखलाऊँगा।'

भोले भाले श्रमिक राजा को ही अपनी विपत्तियो का एक मात्र कारण नही समझते थे,—भाग्य या दुर्भाग्य का भी तो लम्बा हाथ है। असन्तोष की धारा आमोद-प्रमोद की लहर में पलट गई।

सभा-प्रेक्षिणी—आमोद प्रमोद के लिये सार्वजनिक भवन—कुछ दिनों खचाखच भरा। फिर वह लहर ठंडी पड़ गई। मध्यम श्रेणी और ऊँची श्रेणी के विचारको मे एक धारणा बनने लगी—रोमक मानव-चरित्र के ध्वन्स करने की धुन में है!

समाज मे जुये का रिवाज था ही, अब उसकी व्यापकता मे घनत्व भी आ गया। जुये के लिये कोई बराबरी वाला न्योता भर दे दे फिर इनकार करने का किसमे साहस? जो इनकार कर दे वह घोर कायर! और उस युग मे कायर से बढ़कर तो कोई और गाली कदाचित ही रही हो।

परन्तु बालको के लिये यह नियम लागू नही था। चिन्तकों ने प्रथा की निन्दा भी की, फिर उन दिनों उसका बहुत प्रभाव नही पड़ा।

दीर्घबाहु ने किसी के सुझाव पर या अपनी ही समझ की उपज से एक दिन भुवन को जुआ खेलने के लिये निमन्त्रित किया। आवारा सा हो रहा था, माता-पिता से छिपा कर उसके घर जुआ खेलने पहुँच गया और ताव मे आकर दाव पर अपना कण्ठा, वलय इत्यादि सब हार गया।

तब दीर्घबाहु ने प्रस्ताव किया, 'अबकी बार वह भूमि लगा दो दाँव पर राजकुमार, जो तुम्हारे पिता जी ने मुझसे जीत ली थी।'

भुवन क्षुब्ध होकर खड़ा हो गया। बोला, 'वह मेरे पिताजी की है। उसे दाँव पर नही लगा सकता।'

'तो अपनी देह को लगा दो। भागते कहां हो?'

'चुप!'

'चुप बे! छोकरा कहीं का!!'

भुवन ने जूते पहिनते पहिनते चोट पर चोट की,—'एक दिन जूतों से सिर गंजा कर दूगा तेरा', और भाग गया। वह पकड़ा नहीं जा सका।

दीर्घबाहु के बिना जूते के ही जूते से पड़ गये—उसके मन में विष की गाँठ बँध गई। रोमक के प्रति असन्तोष को गहरा करने मे उसने भी अपने को समर्पित कर दिया।

बढते हुये असन्तोष को हलका करने के लिये रानी ममता अपने ढंग पर कुछ और कर रही थी। रोमक ने अन्न का बाटना बहुत कम कर दिया था, ममता ने फिर बढाया और काम को अपने हाथ में लेकर सन्तुलन और विवेक से नित्य अन्न वितरण करने लगी। दे चाहे थोड़ा थोड़ा, परन्तु निराश किसी को नही लोटने देती थी। रोमक उसके काम मे बाधा नहीं डालता था। उसने अपने अन्नागार को अक्षुण्ण बनाये

रखने का एक उपाय ढूंढ निकाला। वह कुछ चुने हुए लोगों के गुप्त भांडारो को पकड़ पकड कर अपने में मिलाने लगा—दीन दुखियों को बांट देने के लिये किया हमने यह !

एक दिन नील परिण की भी घिराई हुई, परन्तु वह प्रबलतर बैठा, इसलिये राज कर्मचारी को चुपचाप लौट आना पड़ा। इसने नील और उसके वर्ग वालों के लिये चुनौती का काम किया। राजा ने तै किया कि फिर किसी दिन देखूगा इसे।

अन्नागार के सामने नित्य की तरह एक दिन ममता एक बडी भीड़ को अन्न बांट रही थी। भुवन घोड़े पर सवार आया। दालान के एक मोटे खम्बे से घोड़े की वाघ कर ममता के पास जा बैठा। हाथ मे चाबुक लिये था। उसे कभी इधर नचाता, कभी उधर। जिस दिन वह दीर्घवाहु से हारा उसी दिन से ममता की आंख उस पर कुछ कड़ी रहने लगी थी, परन्तु स्नेह के हाथ मे अनुशासन की लगाम बहुत दिनों एक-सी कड़ी नही रह सकी। तो भी उसने भुवन को शांत रहने के लिये तरेरा।

भीड में अधीरता की भड़भड़ाहट थी। ममता ने समझाया, 'घबराओ मत, धीरज धरो। ये दिन भी नही रहेगे। धीरज ही मनुष्य का सच्चा साथी होता है।'

भीड़ के पिछले भाग मे एक अध-वहरा खडा था और उसके निकट दो दाढी मूंछ वाले युवक। एक गोरा एक सांवला।

गोरे युवक ने अधवहरे के कान मे कहा, 'कह दो कि धीरज से भूख तो मिटती नही।' अधबहरे ने दुहरा दिया।

भीड़ के वहुत से लोगों को अच्छा लगा।

अन्न वंटने के साथ ही असन्तोष की लहर में कुछ प्रचण्डता आई।

ममता ने संभालने का प्रयत्न किया,—'कुल्याओ और कुओं के खुदवाने की योजना की जा रही है। खेतो पर वंधियां डलवाई जा रही हैं। एक बार पानी वरसा नही कि फिर वरसों आकाशी पानी के लिये न झींकना पड़ेगा, न हाथ जोड़ने पड़ेंगे।'

उस गोरे युवक ने फिर बहरे के कान में डाला, 'कह दो—तब तक क्या खावें ? किसे खावें ?'

'महाराज के अन्न भाडर से अन्न मिलेगा। कुछ अपनी खेती भी करते जाओ।'

उसने फिर कान में फूंका, 'महाराज बेगार कराते हैं सो वह बन्द होनी चाहिये' और बहरे ने दुहरा दिया।

सांवले युवक ने उसके दूसरे कान में फूंका, 'चाहे मर जावें हम बेगार नही करेंगे।' इसको न केवल उसने दुहराया बल्कि कुछ और कण्ठों से भी खरखराहट के साथ निकला।

भुवन का ध्यान उन दोनों युवकों की ओर गया। ममता पहले से ही देख रही थी, पर तरह दे रही थी।

अबकी बार शोर बढ़ा। गोरे युवक ने बहरे के कान में कुछ भी न कह कर, अपने को जरा सा छिपाते हुये ऊँचे स्वर में कहा, 'राजा अन्यायी है, बड़ा अधर्मी है।'

वह पुकार उस शोर में नही डूबी, ऊपर उतरा पड़ी। ममता थोड़ी सी विचलित हुई क्यों कि कुछ के गलो से यह वाक्य भी दुहराया गया था।

भुवन तपाक से उठा और भीड़ को चीरता हुआ दौड़कर उन दोनों युवको के ऊपर झपटा। भीड तो सन्नाटे में आ गई, पर वे दोनों युवक वहां से दो भिन्न दिशाओं में भागे। भुवन गोरे युवक के पीछे पड़ गया।

ममता चिल्लाई,—'क्या करता है भुवन ?' परन्तु उसने नही सुन पाया।

गोरा युवक बस्ती में न धँसकर गांव के बाहर भागा और तब तक भागता चला गया जब तक कि भुवन उस पर आकर नही टूट पड़ा।

भुवन ने उसकी पीठ पर चाबुक फटकारे। वह तिलमिला गया, चीखा और उचटा खाकर गिर पड़ा।

युवक चिल्लाया,—'बचाओ दीर्घबाहु !' भुवन सन्नाटे में आ गया। जब हांफते हांफते उसने गोरे युवक को सामने पहुंच कर देखा तो उसके चेहरे पर से दाढ़ी और मूंछ एक ओर खिसक गई थी—वह हिमानी थी ! आधी चित्त पड़ी हुई हाँफ रही थी और कराह रही थी। भुवन डर के मारे तुरन्त तेजी के साथ लौट पडा। क्षमा प्रार्थना का साहस नहीं हुआ।

न मालूम कितनी देर बाद हिमानी अपने घर पहुंच पाई। नील ने जब सुना तब उसके क्रोध का ठिकाना न रहा। पर उस समय कर क्या सकता था। उसने प्रतिशोध की भावना को अपने हृदय के एक बड़े कोने मे बसा लिया। चाहे जो कुछ भी करना पड़े रोमक और भुवन से बदला चुकाया जावेगा—नील और हिमानी के स्वर भिन्न भिन्न थे, परन्तु निश्चय किसी का किसी से कम न था। मेघ को बात नही बतलाई गई—कौन अपनी जांघ उघाड़े। परन्तु उसे पूरे सहयोग का दृढ़ आश्वासन दिया गया। और अधिक उत्तेजित भी किया गया।

रोमक और ममता को चाबुक मारने की घटना की कभी कोई सूचना नही मिली। भुवन के मन में रह रह कर उठता था,—'इसे न पीटकर दूसरे को, जो निस्सन्देह दीर्घबाहु था, ठोक पाता तो अच्छा रहता।'

[१३]

नगर मे भी किसी को यह बात नही मालूम हुई। केवल एक दीर्घबाहु जानता था सो वह मन ही मन बहुत कुसमुसाया हुआ था। वह एक दिशा मे भागा था और हिमानी दूसरी में। कुछ कर पाता या नहीं और कैसे कर पाता यह सोच सोच कर मन को समझा रहा था। हिमानी को उस पर भी क्षोभ था, परन्तु प्रकट नही कर रही थी। उसके अन्तर की आग भुवन को झुलसाने के लिये जल रही थी।

हिमानी का एक मात्र विनोद कुछ पले हुये मुर्गे मुर्गियों को खिलाना और उन पर अपना प्यार पुचकार बरसाना था। उसने एक का नाम भुवन रक्खा, दूसरे का रोमक और तीसरे का दीर्घबाहु।

दाँत भींच कर भुवन नामधारी से कहती, 'मरजा, जलजा, नीच कमीने!' जिसका नाम रोमक रक्खा था उससे कहती,—'तेरी छाती पर दाल पकाऊँ!'

'मूर्ख; मिट्टी के ढेले, काठ के मेंढक!' यह सम्बोधन था दीर्घबाहु नाम वाले के लिये। था पुचकार के साथ।

'भुवन' और 'रोमक' को जोर के साथ उठाया हुआ चाँटा जब धीरे से मार देती थी और वे टाँयं टाँयं करते हुये फड़फड़ा जाते थे तब उसे मुर्गों पर दया आ जाती थी और आँखों में दुबला सा आँसू। परन्तु वह आँसू भीतर का भीतर लौट जाता था और उसके भीतर की ज्वाला पर घी का काम कर देता था। यह सब होता अकेले मे था।

कुछ तो अपने आप और कुछ मेघ वर्ग के प्रयत्नो से अयोध्या नगर में रोमक के विरुद्ध वातावरण में कही सनसनी और कही उष्णता बढ़ी। रोमक से अधिकतर वे ही लोग मिलते थे जो उसके अनुकूल थे और मेघ वर्ग से वे जो उसके विरोधी थे। एक पक्ष दूसरे पक्ष को निर्बल समझता था। मेघ और उसके सहयोगियो को जल्दी पड़ रही थी रोमक को राज्यच्युत कर देने की, उधर रोमक और उसके पक्षपाती

सोचते थे कि थोड़े से बुदबुदे इधर उधर उठे हैं जो समय पाकर वहीं के वहीं समा जायेंगे।

नगर सभा थी और उसका सभापति पुरोहित सोम था। सभा में सभी 'श्रेणियों' के लोगो को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था—तन्तुवाय (बुनकर) तुन्नवाय(दर्जी) कर्मकार, तक्ष (बढ़ई और पत्थर काटने छीलने का काम करने वाले) रथकार, सूत, कर्मार (लुहार) सभी को।

पुरोहित सोम उदार वृत्ति का विवेकी वेदज्ञ ब्राह्मण था। सब की सुनने वाला और बहुमत का आदर करने वाला।

मेघ वर्ग के आग्रह पर एक दिन सभा भवन में नगर सभा के प्रतिनिधि सदस्यों का अधिवेशन किया गया, सभा भवन लकड़ी के मोटे मोटे ऊँचे खम्भो और पायों का था। दीवारें पकी हुई ईंटों की। ऊपर से लकड़ी के बड़े बड़े बँडेरो पर बाँस के ठठरों की छवनर। सबसे ऊपर फूल और खपड़े, द्वारों पर हरे हरे पत्तों के बन्दनवारे लटकाये गये थे—जसा कि ऐसे अवसरो पर किया जाता था।

लम्बे-चौड़े भवन के सिरे पर एक मञ्च था जिस पर रुई भरे गद्दे और लोढ रक्खे हुये थे। इसके दोनों पार्श्वों पर अपेक्षाकृत नीचे पीठों और पटों की पंक्तियाँ थी। इनके बीच मे मोटा सूती छानन। यह साधारण सदस्यो के बैठने के लिये था। पीठ और पट गण्यमानों के लिये, मञ्च सभापति और राजा के लिये। अधिवेशन में रोमक नही आया। उसके आमात्य आये और उनके पीछे आ बैठा भुवन विक्रम। गण्यमानों में मेघ, दीर्घबाहु, नील इत्यादि अपने अपने स्थानो पर बैठे थे। मञ्च के बिलकुल निकट आचार्य और वेदपाठी ब्राह्मण।

श्रेष्ठी, अमात्य, महाशाल (सामन्त) हाथों में सोने के मोटे कड़े, वलय, गले मे मुक्ता हार; कमर में चौड़ी करधौनियाँ पहिने थे। कोई बण्डियाँ पहिने थे, कोई कुर्ते; कोई चादर ओढ़े थे। थे सब रङ्ग-विरंगे साधारण सदस्यो मे कोई हिरन की खाल के, कोई बकरी की खाल के

और कोई कोई तेंदुये की खाल की बण्डियाँ पहिन कर आये थे। ये आच्छादन उनकी दरिद्रता के द्योतक नही थे, प्रत्युत उनके दर्प के। कृत्याधिकरण (काररवाई) का आरम्भ प्रार्थना और नृत्यगान से होता था, परन्तु वातावरण नृत्यगान के उपयुक्त नही समझा गया। इसलिये सोम ने केवल प्रार्थना की—

'"जहाँ सर्वत्र वनस्पति और वृक्ष तने खड़े है उस विश्वधारिका पृथ्वी का हम गुण गावें, जिसकी चार दिशायें हैं, जहाँ कृषि की जाती है, जो अनेक प्रकार से प्राणियों की रक्षा करती है। वह मातृभूमि हमें गौओ और अन्न से संयुक्त करे। मातृभूमि, तेरे जो प्रदेश है वे, रोग, क्षय और भय से रहित हों, हम दीर्घायु हों, हम सदा सजग रहें, तेरे लिये अपने प्राण और सब कुछ बलिदान करने को प्रस्तुत रहे" अब हम इन्द्र की स्तुति करें—'

इस पर मतभेद उठ खडा हुआ। किसी ने कहा वरुण की स्तुति करो, किसी ने अग्नि और वायु की स्तुति का आग्रह किया। कृत्याधिकरण तो दूर रहा, यह झमेला पहले खडा हो गया।

सोम ने सम्हाला—

'परमात्मा एक है। न दूसरा, न तीसरा, न चौथा। उसी के अनेक नाम हैं। आत्मा दर्पण है। उसी मे अपनी अपनी श्रद्धा के अनुसार परमात्मा को देखकर आज का काम आरम्भ करो।'

कुछ क्षण के लिये सबने अपना अपना सिर नीचा कर लिया, मन ही मन कुछ सुमिरा और मेघ ने अपनी बात कही—'राजा अन्न धन का संग्रह किये जा रहा है, कर्मकारों को मजूरी कम देता है, अपने निवर्तन बढा दिये, दूसरों के छीन लिये, कर चौगुना कर दिया है, और जितने भी काम करता है सब अधूरे छोड़ देता है। साधारण जन को अश्लील आमोद-प्रमोद देकर फुसलाता है और गिराता चला जा रहा है। विद्वान और ब्रह्मचारी जो जनपद के सच्चे स्तम्भ हैं उनका कोई आदर नही, उल्टे उनका अपमान करता रहता है।

शिल्प श्रेणियो के लोगों ने राजा की सराहना की और मेघ की बात को मान्यता नही दी। मेघ उत्तेजित हुआ। बोला, 'सभापति सोम ने प्रार्थना में जो कहा था कि जहा बनस्पति और वृक्ष तने खड़े है, जहाँ कृषि की जाती है वह कहां है ? चारों दिशाओ मे वृक्षो के ठूँठ खड़े हैं! किसके पापों का फल है ? हम दीर्घायु हों! हम सजग रहे!! कैसे ? मैं पूछता हूँ, कैसे ? भाइयो, तुम्हारा पुरुषार्थ कहा गया ?......'

भुवन ने तुरन्त टोका,—'मेरे दायें हाथ मे पुरुषार्थ है तो बायें में जय बनी बनाई!'

'चुप मूर्ख! अवसर कुअवसर समझे बिना चाहे जो कुछ बक बैठता है', मेघ चिल्लाया,— सब लोग सुनो, मैं बाल-ब्रह्मचारी, मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण करने वाला ब्राह्मण हूँ, मेरी मानो। राजा को तत्काल गद्दी से उतारो, नहीं तो अकाल पर अकाल पड़ते चले जावेंगे। फिर मातृभूमि के लिये प्राण देने और सब कुछ बलिदान करने का क्या अर्थ रह जावेगा ?'

नील ने समर्थन किया,—'दास भाग भाग कर बीहड़ स्थानों में जा छिपे है। और वहाँ से लूटमार करने लगे हैं, डाके डालने लगे हैं। इनसे जनता की रक्षा कोई नही कर रहा है।'

अमात्यो ने राजा की ओर से सफाई दी और एक ने प्रतिवाद किया —'आचार्य मेघ कृषि नही करते। इनको सभा मे बोलने का अधिकार नही है।'

मेघ किड़किड़ाया,—'एक भी सच्चा तपस्वी विद्वान जो वेद वेदान्त का मर्म जानता हो उसके मत को मानना चाहिये, न कि दस सहस्र की संख्या तक के अज्ञानियो के मत को।'

इस पर सोम ने समझाया—'शांत होकर सोचिये, समझिये और बोलिये। विरोध सहन करने की शक्ति संस्कृति और सभ्यता की कसौटी है।'

मेघ बोला, 'मैं निर्भीक मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण हूं। आप राजा के पुरोहित हैं. इसीलिए—'

सोम ने टोका,—'सभा का अपमान मत करिये।'

मेघ न माना, 'आप रोमक के पुरोहित न होते तो आप भी कहते कि राजा नीच और पापी है। मनु महाराज कहते हैं कि जनपद के दुःख राजा के पापों के फल होते हैं।'

भुवन फिर खड़ा हो गया,—'मनु महाराज ने कुपथ गामी ब्राह्मणों के लिए कहा है—'

भुवन ने बात पूरी नहीं कर पाई कि मेघ ने अपने क्रोध को जलता हुआ रूप दिया।

'रे दुष्ट पिचाश! तेरे ही कारण तेरे पिता का नाश होगा। मेरा शाप झूठा नही पड़ेगा—'

भुवन को कुछ सभासदों की उकसाहट मिली—

'क्या कहा मनु महाराज ने?'

भुवन ने अपनी बात पूरी कर डाली,—'पाखण्डी, बुरे कर्म वाले, बिल्ली और बगुले के ऐसे व्रत का रूप धरे हुये अहंकारी क्रोधी ब्राह्मणों का मुंह न देखे, उन्हें पीने के लिए पानी तक न दे।'

सोम ने शिष्टता के साथ वर्जित किया,—'बैठ जाओ राजकुमार।'

भुवन अमात्य के पीछे सिकुड़ कर बैठ गया। मेघ आपे से बिलकुल बाहर हो गया। उसके पक्षपातियो ने बाहें चढ़ा ली।

सोम के उस शिष्टाचार पर मेघ ने तीर सा छोड़ा,—

'यह छोकरा नही बोल रहा है, इसका बाप बोल रहा है, इसके बाप का यह पुरोहित बोल रहा है! क्या तुम सब मेरे इस अपमान को सहलोगे?'

सभासदों में विवाद बढ़ा, सभा भवन कांपने-सा लगा।

सोम ने सान्त्वना का प्रयास किया,—

'आज की बैठक में राजा नही आये हैं। आरोपों का उत्तर देने का उन्हें अधिकार श्रुति ने दिया है। नगरसभा विचार भर कर सकती है। जनपद समिति उस विचार पर अन्तिम निर्णय करेगी...'

शान्ति नहीं हुई, रौरा मचा।

दीर्घबाहु ने बहुत सोच विचार कर कहा, 'जनपद समिति की बैठक में देखना हम क्या क्या करते हैं!'

मेघ ने घोषणा की,—'मैं जनपद की एक एक अंगुल भूमि की यात्रा करूँगा। जनता को जगाऊँगा। शीघ्र जनपद समिति की बैठक होगी और रोमक को अपने मुंह की खानी पड़ेगी।'

मेघ-वर्ग ने भांप लिया कि सभा भवन में उसका बहुमत नहीं है, तब फिर कुछ और हो। कुछ तो भड़काने के कारण और कुछ अपने ही आवेश की प्रेरणा से दोनो पक्ष वालो के कुछ उतावले हाथापाही पर आ गये। मेघ और नील इत्यादि सभी भवन छोडकर चले गये। सोम को सभा अशान्ति में विसर्जित करनी पड़ी।

भुवन ने अपने को अपनी आयु से अधिक बड़ा अवगत किया और रोमक एवं उसके वर्ग ने सोचा कि असन्तोष की आँधी का एक छोटा सा झोंका आया और थोड़े से बकवादियो की सासो के साथ बह गया है।

मेघ के वर्ग ने समझ लिया कि अपनी शक्ति की तौल भ्रम के बांट बखरो से की थी, जनपद समिति को रोमक के विरुद्ध जगाने उठाने के लिये बहुत कुछ करना पड़ेगा—शायद सिर का पसीना एड़ी पर चुआना पड़े।

[१४]

मेघ के मन की नीचे से नीची तली के पोखरे में न मालूम कपिञ्जल क्यों उसे घृणा का एक वड़ा कीट दिखलाई पड़ता था, फिर भुवन और रोमक वहां आ जुटते थे और वह विस्तृत हो जाता था। नील और हिमानी के लिये तो वह कारणों का कारण था ही। रोमक को जहाँ गद्दी से उतारा कि फिर अपने वर्ग का शासन स्थापित होने में देर ही कितनी लगेगी? दीर्घबाहु के मन में उमगता था—रोमक के स्थान पर क्या मैं राजा नही वन पाऊँगा? इस वान्छा को मन मे रखकर वह मेघ और नील के कहने पर चलने के लिये कमर कसे था।

अयोध्या नगर मे जो कुछ हो रहा था उसके समाचार कम बढ़ रूप में वाहर भी पहुँचते रहते थे। गाँव में अधिक और नैमिषारण्य के आश्रमों में कम, अलग अलग चिन्तन और भिन्न-भिन्न विचार की धारायें प्रमुख थी। वहां विचार विनिमय तो होता ही रहता था, जब कभी टक्करें भी होती थी तो उनमें हाथ पैर किसी के नही टूटते थे। सहिष्णुता का एक विस्तृत वातावरण युगो पहले वन गया था। उसमें पेड़ो पहाड़ों के पूजकों और जादू टोनो वालों से लेकर एक ईश्वरवादी और नास्तिकों तक के लिये स्थान था। राजनैतिक प्रसङ्गों पर भी बात चलती थी, परन्तु आध्यात्मिक विषयों पर वहुत अधिक। राजा को गद्दी से उतारे जाने की चर्चा असाधारण नही थी। आश्रमो मे उसे सुन लिया और विना कुतूहल के छोड़ दिया। अपने सामने के काम ही क्या कम हैं जो ऐसी वातों पर सिर खपी करें?

धौम्य के आश्रम में कपिञ्जल ने शिष्य होते ही अपना तन मन गुरू की सीख पर ऐसा लगाया, इतना जमाया कि उसके साथी चकित हो गये। गुरु ने उसे योगाभ्यास सिखलाया और उसने तल्लीनता की हद कर दी।

अयोध्या के समाचार छोटे मोटे रूप मे आश्रमो तक आये और कानों को छूकर चले गये।

कपञ्जिल को गुरु ने आश्रम के निकट वाले वनखण्ड में जाकर अभ्यास और ध्यान करने की स्वतन्त्रता दे दी, इसलिये भी वह अपने संसार के बाहर वाले समाचारों से बिलकुल वंचित रहने लगा।

वन के उस भाग में कभी-कभी गौरी और अम्बिका अपने पशु चराने और फल संग्रह के लिये आया करती थी। पहले दिन जब इन दोनों ने कपिञ्जल को उस एकान्त स्थान में ध्यानमग्न देखा तब गौरी उसे पहिचानने के लिये अधिक निकट गई और आँखें गड़ाकर देखने लगी।

अम्बिका ने उसके पास आकर धीरे से पूछा,—'क्या इन्हें पहिचानती हो ?'

'यों ही, थोड़ा-सा। अयोध्या के हैं', इतना कहकर गौरी यकायक रुक गई। उसकी गायें इधर-उधर भटकने को थी। बोली, 'उन्हें देखलूं। कहीं खो न जावें।' और वह तुरन्त चली गई।

अम्बिका अपने ढोरो को इकट्ठा करने के लिये दूसरी दिशा मे चली गई। वहां उसे अचानक वेद मिल गया। वाचाल तो था ही और हलके फुलके मन का भी। अम्बिका को जानता था, उसने वैसे ही पूछा, 'कहाँ जा रही हो अम्बिका ?'

'काम पर' और कपिञ्जल की दिशा मे संकेत करके उसने अपने कुतूहल का समाधान चाहा,—'ये कौन हैं ?,

वेद ने विना कटुता की भावना के कहा, 'अयोध्या का एक भगेड्डू शूद्र दास जिसे गुरु महाराज ने शिष्य बना लिया तो अब योग साधने पर डट गया है।'

'तभी, हमारे गाँव मे अयोध्या से एक लड़की आई है वह इन्हें पहिचानते हैं।'

'इसकी कोई सम्वन्धी होगी···।'

'होगी क्या करना है।' अम्बिका चली गई। जब अम्बिका को गौरी मिली उसने बात चलाई—'तुमने बतलाया नहीं वह कौन है ?'

'मैं नहीं जानती।'

'बतलाते बतलाते यकायक क्यों रुक गई थीं ?'

'गायें जो भटक रही थीं।'

'या मन ?'

'हिश ?'

'मैं सब पता लगा आयी हूँ। शूद्र है। तुम्हारा कौन है ?'

'न कोई।'

'न बतलाओ। एक दिन जब बात खुल पड़ेगी तब क्या करोगी ?

'क्या बकती हो ? किसने क्या कहा है ?

गौरी के क्षोभ को देखकर अम्बिका सहम गई और उसे शांत करने पर जुट पड़ी। गौरी को शान्त होने में बहुत देर नही लगी।

[१५]

धौम्य ने वेद को आज्ञा दे रक्खी थी कि जिस दिन कपिञ्जल अपने लिये फलमूल इकट्ठे न कर पावे उस दिन वह अपने संग्रह मे से गिन कर थोड़े से उसे दे दिया करे। उस दिन जब वेद दोपहर के समय कपिञ्जल के पास होकर निकला तब उसने देखा कि कोरा बैठा है तो बात करने के लिये बैठ गया। थका हुआ था और बातें करने की इच्छा मन में चुलबुलाया ही करती थी। जब बैठे बैठे उकता गया तब बोला, 'हमतो भाई कपिञ्जल जमुहाते जमुहाते आधे रह गये। खोलो भी इन बगुला समाधि को और बात करो।'

वेद के ढङ्ग मे आत्मदम्भ था और कपिञ्जल के प्रति अवज्ञा। पर कपिञ्जल नही हिला।

तब वेद ने चोट की,—'अरे वह लड़की······क्या नाम है जी उसका जो अयोध्या से कुछ महीने पहले आई है···तुम्हारी···? कपिञ्जल का ध्यान उचट गया और आँखें खोली। उसके मुख पर आत्म संयम की छाप थी।

विनय के स्वर में बोला, 'मुझे छोड़ दो वेद भाई।'

'अजी वह जब तुम्हे अकेला छोड़े तब तो।'

'कौन ?' कपिञ्जल के स्वर मे कम्प तक न था।

'अच्छा जी ! अब बनते हो !! पर मुझे क्या करना है। ब्रह्मचारी जो ठहरा। ऐसा न हो कि किसी दिन तुम्हारा वह सब उघड़ पड़े तो यह सारा योगाभ्यास गड़बड़ मे पड़ जाय और······'

कपिञ्जल की आँखें तरल हो आईं और उसने हाथ जोडकर कहा,—गले में उसके कम्प भी था,—'मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं मुझे अकेला छोड़ दो।'

अब वेद द्रवित हुआ,—'अच्छा, अच्छा, मैं निर्दय नही हूं। तुम्हारे लिये थोड़े से फल छोड़े जाता हूं।'

कपिञ्जल की 'ना' पर भी उसने गिन कर फल रख दिये और कहता चला गया,—'बुरा न मानना। फल रक्खे जाता हूँ। मैं दिया दान नही लौटाता।'

कपिञ्जल कुछ क्षण अस्थिर रहा, फिर बिना कुछ खाये पिये ध्यान-मग्न हो गया।

चौथा पहर लगा था कि गायें चराते-चराते गौरी वहां आई। अञ्चल में कुछ फल लिये थी। कपिञ्जल अब भी ध्यानमग्न था। गौरी ने जरा-सा सिर झुकाकर प्रणाम किया और थोड़े से फल उसके पास रखकर चली गई। एक घड़ी पीछे कपिञ्जल ने आंखें खोली। फूलों को अपने पास देखकर सोचने लगा। आसपास दृष्टि फेरी तो यहा वहा गायों का टपका गोबर पड़ा पाया। उसने फल उठाये, माथे से छुलाये और अपने एक छोटे से पटके में बांध लिये। उसने नहीं देखा कि थोड़ी दूर आड़ से धौम्य यह सब देख रहे थे। जब सन्ध्या के पहले आश्रम में उन फलो को लेकर पहुंचा तब धौम्य आश्रम मे थे।

सन्ध्या के उपरान्त धौम्य अपने दो शिष्यों—वेद और कपिञ्जल—के साथ अकेले रह गये तब उन्होने वेद से प्रश्न किया, 'कपिञ्जल कितने समय मे पढ़ना-लिखना सीख लेगा?'

वेद उत्तर नही दे पाया कि कपिञ्जल बोला, 'मुझे तो गुरुदेव वही बहुत भा रहा है जो आपने बतलाया और कर रहा हूँ।'

वेद ने तुरन्त कहा, 'व्याकरण की पहली सीढी तो बहुत दूर, कही दो चार महीने में अक्षर पहिचानने योग्य हो पावें।'

धौम्य मुस्कराये और वेद हँसा। कपिञ्जल ने मुह फेर लिया। धौम्य ने कपिञ्जल की पीठ पर हाथ फेरा।

'तुमने अभी तक कुछ नही खाया। पटके मे जो फल बांध लाये हो उन्हे खालो। कल से अपने लिये फलो का संग्रह स्वयं कर लिया करो। तुम्हें वेद या कोई भी फल देने नही जायगा।' धौम्य के स्वर मे स्नेह था। कपिञ्जल को अच्छा लगा। वेद ने सोचा छुट्टी मिली।

दूसरे दिन प्रातःकाल के उपरान्त ही कपिञ्जल जङ्गल मे दूर फल इकट्ठे करने के लिये निकल गया। फलों को ढूंढते-ढूंढते जैसे ही वह एक वृक्षकुंज मे पहुंचा कि बड़े पेड़ो के नीचे छोटे बड़े पौधों की झाड़ी में निकट ही उसे एक बाघ दिखलाई पड़ा। कपिञ्जल एक क्षण के लिये सन्नाटे मे आ गया फिर उसने तुरन्त अपने को सम्भाला। हाथ में उसके एक छोटा-सा डण्डा था, पर बाघ के पञ्जो और दाढो के सामने उसका डण्डा कर ही क्या सकता था? कपिञ्जल ने बाघ की आँखों से अपनी आखे मिलाईं—और मिलाये रहा। पहले बाघ पिछली टांगों के बल सधा, होठ लटकाये और पञ्जो से बाहर लम्बे नुकीले नख निकाले। जान पड़ता था कि एक छोटी सी छलांग भर कर कपिञ्जल का कचूमर किये देता है। कपिञ्जल अडिग था। उसने बाघ की आंखो के सिवाय उसका और कुछ नही देखा। वह बाघ की जलती आंखों के पीछे जो कुछ अपनी आँखों में देख रहा था उसमें भय या आतङ्क की कोई बात नहीं थी। बाघ की पिछली टांगों की बैठक ढीली पड़ गई और लटके हुये होठ सिमट गये और उसकी आँखें नीची पड़ गईं। वह तुरन्त मुड़ा और धीरे-धीरे गुर्राता हुआ दूसरी दिशा में चला गया कपिञ्जल फल संग्रह करके अपने टीले पर आ पहुंचा। जब उसने ध्यान लगाने का प्रयास किया तो बाघ बार-बार मुदी आंखो के भीतर आने लगा। कपिञ्जल ने कुछ कठिनाई से उसको अपने ध्यान से दूर कर पाया।

जब उसने सहज साधारण ढङ्ग से अपने साथियों को बाघ के मिलने की बात सुनाई तब वेद ने फबती कसी,—'सौ डग की दूरी से देखते ही महाशय जी सिर पर पैर रखकर लौट पड़े होगे न कि बाघ वहाँ से चुपचाप चल दिया होगा?'

कपिञ्जल केवल मुस्कराकर रह गया।

धौम्य के पास भी बात पहुंची। उनके कान मे शिष्यों की सभी मुख्य घटनायें पड़ जाती थी, और वे देखते तो बहुत सूक्ष्म दृष्टि से थे ही।

'कपिञ्जल,' एक दिन धौम्य ने उसे अपने साथ जंगल में दूर ले जाकर कहा, 'वह स्थान आ गया।'

कपिञ्जल हाथ जोड़कर नतमस्तक खड़ा हो गया।

धौम्य ने बतलाया,—'वह जहां गोमती उन वृक्ष-समूहो में होकर बहती आती है तुम्हारा स्थान रहेगा। यह अरण्यानी है। किसी को नही मारना चाहती। साधारणजन के लिये बाघों और चोरो का भय भले ही हो पर तुम निर्भय हो, निश्शंक होकर रहना। देह को पालने वाले फलमूल यहाँ प्रचुर मात्रा में है।'

कपिञ्जल ने गुरु के चरणों में अपना माथा टेक दिया।

धौम्य ने उसे उठा लिया। बोले,—'मैंने तुम्हारी परीक्षा ले ली। योग का अभ्यास पहले पूरा करलो फिर कुछ और बतलाऊँगा।'

'गुरुदेव के आशीर्वाद से कुछ पा जाऊँगा, वैसे तो मैं अत्यन्त तुच्छ हूं।'

'अपने को तुच्छ मत समझो, नम्र अवश्य बने रहो। सदा स्मरण किया करो - देव, मुझे नीचे पड़े हुये को पुनः ऊपर उठाओ और मेरे भीतर वाले को तेजस्वी करो मुझे ज्योति दो।'

कपिञ्जल ने दुहराया।

धौम्य ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुये कहा, 'योग के दो मार्ग हैं एक अन्धकार का, दूसरा प्रकाश का। वाछाओं वाला अन्धकार का है। इस पर चलकर मनुष्य अभीष्टों की प्राप्ति भर कर सकता है, परन्तु अन्त में गड्ढे में जा गिरता है। प्रकाश वाला मार्ग निरन्तर आगे बढ़ाता है। जो कुछ इससे पाओगे वह मेरे आश्रम मे नही मिल सकता था', और वे चले गये।

कपिञ्जल को थोडी देर लगा जैसे उसका रखवाला चला गया हो। अनमना हुआ ही था कि उसे उन क्षणो की याद आ गई जब उसका बाघ से साक्षात्कार हुआ था। आत्मबल की प्रेरणा से पुलकित हो गया और वही एक टेकड़ी पर अपना स्थान बनाने की धुन मे लग गया।

[१६]

विचार विवेक, तप, अध्ययन और वर्चस्व जितना आश्रमो में बढ़ रहा था उसका थोड़ा सा ही अंश नगरो और गाँव में बस रहा था। राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तनों और संघर्षों का प्रभाव जितना नगरो और गाँवों पर पड़ता था उसकी बहुत थोड़ी सी आँच आश्रमों तक पहुँचती थी। आश्रम अध्यात्म के केन्द्र बन चले थे और ये क्रान्तियों के। दोनों केन्द्र एक दूसरे से अलग अलग पड़ने लगे। आश्रमों के प्रति श्रद्धा का आतङ्क अवश्य बाहरी क्षेत्रों पर छाया रहता था, यद्यपि आश्रम वाले इधर बहुधा विक्षेप नही डालते थे।

गांवो और नगरों में प्रकृति के अगम्य और अबोध रूप का भय साधारण जन के सामने सदा खड़ा रहता था। इसका उपचार पूजन, बलिदान, जादूटोने इत्यादि से किया जाता था। आश्रम के ऋषियों की वैज्ञानिक जानकारी या आध्यात्मिक ऊँचाई इनकी बुद्धि की पहुँच के बाहर हो गई थी।

जादूटोने से दृष्ट और अदृष्ट व्याधियों को दूर करने की धारणा और आस्था घर कर गई थी। पूर्व काल का मानव प्रकृति के अङ्ग अङ्ग को प्यार करते करते उस पर मुग्ध हो जाता था और निर्भीकता उसकी चिरसङ्गिनी बन गई थी। इस काल के मानव को निर्भीकता ने बिलकुल तो नही छोड़ दिया था, परन्तु आश्रम और आश्रम से बाहर वाले क्षेत्र मे जो अन्तर आ गया था वही उस काल के निर्भीक और इस काल के जादू विश्वास साधारण मानव के अन्तर का नाप और द्योतक था।

मेघ को अपनी मन्त्र विद्या में जैसा और जितना भरोसा रहा हो उसमें अपने व्यापक प्रभाव का आत्म विश्वास था। उसकी शक्ति को अहंकार सदा पालता-पोषता रहता था। षड़यन्त्र रचना की प्रतिभा उसमें थी ही।

जैसा कि वह सभा के अधिवेशन में घोषित कर आया था, उसने नैमिषारण्य को छोड़कर, अयोध्या जनपद के चप्पे-चप्पे का भ्रमण आरम्भ कर दिया।

बीमारियाँ तो होती ही रहती हैं, ऋतु-विपर्यय के कारण और भी बढ़ गईं। मेघ ने गाँव गाँव जाकर अपने मन्त्रों का प्रयोग किया। कुछ अच्छे हो गये—वैसे भी होते। मेघ के मन्त्रो ने निरोग किया! कुछ मर गये—तो अपने दुर्भाग्य से। मेघ किसी से कुछ नहीं लेता था। स्वल्पभोजी, सो खाने-पीने पर उसको इतना संयम कि जहाँ देखा कि बिलकुल कोरे रहने से अधिक लाभ मे रहेंगे तो बिलकुल लम्बी तान जाता। बदले मे और कुछ नही चाहिये, साधारणजन का केवल वचन—सौगन्ध के साथ वचन—कि रोमक को गद्दी से गिराकर रहेंगे।

भ्रमण करते करते एक ऐसे गाव में पहुँचा जो नैमिषारण्य के निकट था। गाँव के निवासी अधिकतर जङ्गली जाति के थे। सीधे, श्रद्धालु और भूतप्रेतो तथा मन्त्र फूँकने वाले साधुओं में विश्वास करने वाले। गाँव में उनके नेवते और सयाने भी थे। पर कहां मेघ का आत्म-विश्वास पूर्ण घोर दम्भ और कहां इन विचारों की सीधी फूँकाफाकी!

एक सयाना मेघ से डर गया पर उसके अन्तर्निहित स्वाभिमान ने एक चोट करवा डाली—बोला, महाराज आचारीजी, थोड़ी दूर उस जङ्गल मे एक योगी रहते हैं जिनको लोग सबसे ज्यादा मानते हैं।'

'कौन?'

'हमी लोगों सरीखे कोई शूद्र हैं। बड़े भारी योगी हैं। कुछ महीने ही हुये हैं उन्हें प्रकट हुये। बहुत लोग दर्शन करने जाते हैं, पर वे बात-चीत तक नही करते किसी से। दर्शन करना चाहें तो आप भी करलें।'

'शूद्र और योगी!! रोमक का राज्य जो ठहरा। क्या नाम है? नाम जानते हो उसका?'

'महात्मा कपिञ्जल।'

'महात्मा कपिञ्जल ! कपिञ्जल महात्मा !!'

मेघ के कलेजे में बर्छी सी छिद गई। पर वह बिना आह भरे रह गया। उसने दूसरे ढङ्ग से इस गांव के लोगों को रोमक के विरुद्ध उभाड़ने का प्रयास किया।

उसी दिन वहां भुवन अपने कुछ शिकारी मित्रो के साथ आया। थोड़े से सिपाही थे। नैमिषारण्य के उस भाग मे जङ्गली जानवरों की सूचना मिली थी। उसे जानवरों पर तीर चलाने का व्यसन लग गया था।

जङ्गल के जानवर राजा के माने जाने लगे थे और उनका शिकार करने में हांके की सहायता निकटवर्ती ग्रामीणों को करनी पड़ती थी। हांका करना उन ग्रामीणों के लिये राजा की बेटबेगार थी। बदले में अन्न वस्त्र कुछ नही मिलता था। जानवर मर गया तो उसमे से कुछ मिल जाता था।

भुवन के आते ही मेघ एक घर में रह गया। घर में जो लोग थे उनसे कहा,'मैं बेगार लेने वाले राजा या राजकुमार का मुंह नहीं देखता।'

उन्हें यह भाव अच्छा लगा। मेघ को उन्होंने अपने मित्र के रूप में देखा। मेघ प्रकट नही होना चाहता था, इसलिये उसने गाँवं वालों को वेगार करने से नही रोका। वे लोग हांके मे गये। गये थोड़ी किनर मिनर करके।

[१७]

नगरों के आस-पास वसन्त ऋतु अपना डेरा समेट कर जङ्गल में बसेरे के लिये चली आई थी। पेड़ों के आधे पीले पत्तो के बीच-बीच फूल अब भी थे जो टपक-टपककर नीचे से गुञ्जान पौधों की अध पीली पत्तियो में उलझ जाते थे। कहीं-कही छोटे-छोटे खुले मैदानों में दूबा के चकत्ते थे और उनमे छिपी लुकी सी शंखाहूली की छोटी-छोटी रेंगती हुई सी डालियां। उन डालियो पर दूबा की छाया में कटोरीदार सफेद फूल झाँक रहे थे। पवन मे थोड़ी-सी उष्णता थी।

दूर से भुवन को दृश्य बड़ा सुहावना लगा, परन्तु जैसे-जैसे वह अपने दल के साथ जङ्गल मे घुसा सुनसान में उसका जी उकताने लगा। हांके वाले बेमन होकर कुछ पीछे चल रहे थे।

भुवन ने अपने एक साथी से कहा, 'ये गांव वाले बहुत ढीठ हो गये हैं।'

'जङ्गल के सारे जानवर मार कर खा गये हैं ये लोग। भटक चाहे जितना लें, हाथ कुछ नही पड़ता दीखता है।'

भुवन ठहर गया और उसके साथी भी। उसने हांकेवालों को हाथ झुलाकर बुलाया तो वे धीरे-धीरे ही आये। भुवन को क्रोध आ गया—'जी चाहता है कि एकाध का सिर छेद डालू। पग बढ़ाते आओ रे अभागे!'

हांके वालों ने सुन लिया—उन लोगो के कान ज्यादा तेज थे,—और उनका मुखिया आगे आकर बोला, 'आ तो रहे थे। आप जूते पहनें हैं, हम नंगे पैर है। काटे लग जायें तो क्या करें?'

'गँवार नीच!!'

'एं! क्या कहा? हम किसी की भी बात नही सहते।' हांकेवालों की आँखें लाल हो गईं।

भुवन ने अपना धनुष-वाण सँभाला। उसकी छोटी-सी देह के भीतर बैठा हुआ अगधा पराक्रम बौखला गया।

हाके वाले इस तरह दबना नही जानते थे। एक छाती फुलाकर चुनौती दी,—'देखूं तो कैसे—आओ—'

परन्तु बात आगे नही बढने पाई। भुवन के कुछ समझदार साथी बीच मे पड़ गये और अन्य हाके वाले भी।

भुवन ने धनुष-वाण नीचे कर लिया और फूली हुई सासों को साधने लगा।

एक हांके वाले ने हँसी को उकसाया—'हांके मे सुअर, बाघ, रीछ कुछ न कुछ अवश्य मिलेगा। न मिले तो दाँव पर मैं अपना तीर कमान हार दूगा।' क्षोभ पर पर्दा डालने के लिये भुवन हँस पडा।

इसके उपरान्त उन लोगो ने शिकारियो को जहाँ तहाँ छिपाकर बिठला दिया और वे हाके के लिये दूर चले गये।

उसी जंगल मे थोड़ी दूरी पर वेद और कल्पक उसी समय आ गये। उस स्थान पर कई पगडण्डिया थी। दोनो उल्लास मे थे।

वेद बोला, 'इन पगडण्डियों को देखकर पुरानी कविता की याद आ जाती है। हे अरण्यानी, तुम देखते देखते आँख की ओझल हो जाती हो! तुम क्यो नही गाँव में जाने का मार्ग पकड़ती? इस बड़े विपिन मे अकेली रहते क्या तुम्हे डर नही लगता? इस गहन अरण्य मे कोई जन्तु बैल की भाति बोलता है तो कोई चीची करके मानो उसका उत्तर देता है!—जैसे वीणा के घट घट मे बोलकर वनदेवी का यश गाते हो हों!!'

कुल्लक का भी मन सुरसुराया,—'इन वन के किसी छोर पर गायें चरती हैं, रंभाती है और कही लता गुल्म आदि के निवेश से दिखलाई पड़ते हैं।'

'जब प्रात.काल के समय स्त्रियाँ ऊषा की स्तुति गान करती हैं तब लगता है जैसे ऊषा हम सब के लिये दोनों हाथो ओज बांटती चली आ रही हो और अपनी दानशीलता पर मुस्कान का कुंकुम लगा रही हो।'

'कपिञ्जल उस टीले पर तपस्या कर रहा होगा जो यहाँ से अब थोडी ही दूर रह गया है। गुरुदेव उसे यहाँ तक पहुंचाने आये थे', कल्पक ने कविता की बात को वहीं छोड़कर दोपहरी में जो सामने था उसकी चर्चा की।

वेद अपने हल्केपन पर उतर आया—

'बड़े मनीषियों की गतिमति कुछ विलक्षण होती है। उन्होंने कपिञ्जल मे जो कुछ भी देखा हो तो मुझे ऐसा कुछ नही दिखलाई पड़ा। गुरुदेव के आशीर्वाद से आगे कुछ पा जावे तो कह नही सकता। अभी तो निरक्षर ही है।'

इस समय इनको दूर से हाके का शब्द सुनाई पड़ा। वे दोनों खड़े होकर सुनने लगे।

कल्पक बोला, 'यह क्या ? कोई आखेट कर रहे हैं। इस वन में भी आखेट !'

वेद ने सुझाया, 'पेड पर चढ जावें। नीचे खड़े रहना ठीक नही है। वही से चढ़े चढे देखेंगे। काम इसके उपरान्त।'

वे दोनों पास के एक बड़े वृक्ष पर ऊँचे चढ गये। हाँके का हो-हल्ला बढ़ता चला आया : झाडियों में छिपे हुये शिकारियों ने अपने अपने तीर-कमान संभाले।

एक बड़ा सुअर भुवन के सामने आया। भुवन ने उस पर तीर छोड़ा। सुअर को लगा और उसने हुङ्कार लगाई। थमा और गिरा। भुवन ने सोचा कि दो-एक क्षण में ही मर जायगा। झाड़ी में से निकल कर उसके समीप गया। सुअर चट से खड़ा हुआ और उस पर झपटा। भुवन ने किनारा काट कर दौड़ लगाई और दौड़ता चला गया। सुअर में दम थी। उसने भुवन का पीछा किया और तब रुका जब उसने भुवन को एक झाड़ी में पटक दिया। भुवन चिल्लाने लगा—'दौड़ना, बचाना !' सुअर के लिये झाड़ी की बाधा पड़ गई थी नही तो वह उसे दो—चार सपाटों में ही ढेर कर देता। सुअर अपने प्रयत्न में कभी झाड़ी को तोड़ता

कभी भुवन को घायल करता। भुवन की पुकार को सुनकर कपिञ्जल अपने टीले पर से दौड़ आया। उसके हल्ले पर थका हुआ घायल सुअर दूसरी दिशा में भाग गया।

जब कपिञ्जल ने भुवन को बचाया तब वह अचेत हो चुका था। कपिञ्जल ने उसे झाड़ी से बाहर निकाला और अपनी कमर की धोती फाड़कर उसका उपचार करने लगा। थोडी देर मे हांके वाले आ गये। पानी का प्रबन्ध हो गया। भुवन के घाव पोछे और धोये–बांधे गये। जब उसने पानी के लिये मुह बाया तब कपिञ्जल ने पिलाया।

हांके वाले कपिञ्जल को जानते थे। उनके मन में उसके प्रति बहुत आदर था। अब और बढा।

कपिञ्जल ने भवन को पहिचान लिया। हांके वाले तो उसे जानते ही थे।

कपिञ्जल ने कहा, 'इसको अयोध्या पहुँचाने का प्रबन्ध करो।'

भुवन के साथी भी आ गये। वे कपिञ्जल को नही जानते थे। उन्होने भुवन को आराम के साथ अयोध्या ले जाने का वचन दिया।

उसी समय वहां वेद और कल्पक आ गये।

वेद ऊँचे स्वर में बोला, 'तुम्हारे पास आ रहे थे कि—' कपिञ्जल ने उंगली से वर्जित किया। वेद और कल्पक अपने स्वभाव के विपरीत चुप हो गये। वे भुवन को निरखने–परखने लगे।

कपिञ्जल ने हांके वालों के मुखिया से कान में कहा 'यह प्रकट न होने पावे कि राजकुमार को मैंने बचया।' मुखिया ने वचन दिया। वे सब भुवन को उठाकर चले गये।

कपिञ्जल ने वेद और कल्पक से पूछा, 'यहां कैसे निकल पड़े भाई?'

वेद ने बतलाया, 'गुरुदेव ने तुम्हारी कुशल और प्रगति के समाचार के लिये भेजा है।'

'गुरुचरणों की कृपा-से सब ठीक चल रहा है।'

'सो तो देख ही रहे हैं । तगड़े भी हो । फलमूल खूब मिल जाते होंगे ।'

'हां भाई ।'

'तुम्ही ने उस युवक की रक्षा की, नही तो निस्सन्देह मारा जाता । सुग्रर वड़ा था । हम एक पेड़ पर चढ़े सव कुछ देख रहे थे । तुम तो हम लोगों से ग्रागे वढ गये !'

'नही तो, वेद भाई । गुरुदेव की वतलाई हुई वातों में से एकाध ही तो गाँठ में बाँध पाई,—मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो; बस ।'

'गुरुदेव को तुम्हारी ग्राज की करनी वतलाऊँगा ।'

'नही भाई । मैंने किया ही क्या है ? कुछ मत कहना ।'

'गुरुदेव से कुछ निवेदन करना है ?'

'मेरी ग्रोर से उनके चरणों में बार-बार साष्टांग प्रणाम ।'

'कह तो दूँगा, परन्तु स्वयं वैसी क्रिया करने में तो मेरी देह चूर-चूर हो जावेगी, शायद घिस-घिसाकर तिनके जैसा रह जाऊँ !'

वेद ग्रौर कल्पक हँस पड़े ।

कपिञ्जल उन्हे ग्रपने टीले पर ले गया । कुछ फल खाने को दिये ग्रौर ठण्डा जल पीने के लिये । उन्हें ग्राश्रम को लौटना था जो दूर था । इसलिये ग्रविलम्ब चल पड़े । चलने के समय कपिञ्जल ने फिर निवारण किया; 'ग्राज जो कुछ तुच्छ सेवा मुझसे वन पड़ी है नही चाहता कि वह किसी पर प्रकट की जावे ।' उन दोनों ने वचन दिया ।

भुवन के साथी जव उसे गांव से ले गये तव मेघ ने गाँव वालों से कहा,—'ग्रागे कभी राजा या राजकुमार की वेगार मत करना । इनमें से कोई भी राज्य करने के योग्य नही है । मेरे ग्राशीर्वाद ने तुम्हें वचा लिया, नही तो वह दुष्ट भुवन तुम में से कई को मार डालता ग्रौर उसके साथी गाव मे न जानें कौन-कौन से ग्रत्याचार करते ।'

हांके वालों को भुवन की धमकी और धनुष की डोरी पर बाण का चढ़ाना नही भूला था। उसे बचाया तो उन्ही के एक सहवर्गी ने। मानो स्वयं उन्ही लोगों ने बचाया हो।

मेघ के मन में उठा कि मेरी शाप का आरम्भ हो गया है, गहरी चोटें खाई हैं, सम्भव है घर पहुँचते पहुँचते मर जाय।

उसने गाँव वालो को अपनी शाप की कुछ कहानी बतलाई और शाप का जो परिणाम हुआ वह तो उसी दिन की बात थी। उस गाँव के लोगो के मन में एक स्थान कपिञ्जल के लिये था तो दूसरा मेघ के लिये भी बना।

[१७ [

भुवन के घाव कुछ दिनों में पुर गये और वह चङ्गा हो गया। माता-पिता की एक चिन्ता दूर हुई तो और अनेकों ने आ घेरा। भुवन ने शिकार में उस दिन जो एक हाके वाले पर तीर चढाया था, उसका रूप पंख का परेवा बन गया। कुछ लोगों ने अपवाद फैलाया कि भुवन ने जङ्गली जाति के कई मनुष्यो को मार डाला ! मेघ उसके विरुद्ध जो आग भड़काता फिरता था वह फैली और उसके फैलने में अकालों और रोमक के कुप्रबन्धों के साथ इस घटना के कई रूपों ने भी अपना काम किया।

जनपद में समिति की बैठक के बुलाये जाने और राजा के विरुद्ध कुछ करने की चर्चा बढ़ने लगी।

मेघ वर्ग के ब्राह्मणों, महाशालों, और कहीं कही के मुखियों ने निश्चय किया कि तीन महीने के भीतर बैठक बुलाई जावे परन्तु बहुत से गांव उदासीन और कई राजा के पक्षपाती भी। मेघ वर्ग नगर सभा की तरह अबकी वार मुँह की नही खाना चाहता था इसलिये बैठक की अवधि छः महीने की कर दी। राजा के उथले पुथले विश्वास में बैठ गया कि अबकी बार भी कुछ नही हो सकेगा, समिति के अधिवेशन में स्वयं जाऊँगा और अपने व्यक्तित्व तथा उत्तरों से सहज ही विरोध का विध्वन्स कर लूँगा। उसे चिन्ता भुवन के भविष्य की अधिक थी।

भुवन आखेट के लिये फिर जाने लगा। जब न जा पाता तब राज-भवन के आँगन में, कभी उद्यान में तो कभी अपने कमरे मे ही मिट्टी के नाहर सुअर बना बनाकर लक्ष्यवेध करने लगा। नौकरों से हांके की नकल करवाता और जब वे हँस पड़ते या दूसरे कार्यों में लग जाते तब उन पर हाथ भी उठा देता।

रोमक ने एक दिन पुरोहित सोम को बुलाया, 'पुरोहित जी, मेरे ऊपर आपके बहुत से उपकार हैं। भुवन को आप अपनी देखरेख में ले

लीजिये। अपढ़ कुपढ सा बना रहा तो इसको राजगद्दी नही मिलेगी, क्योकि शास्त्र की आज्ञा है' रोमक ने निवेदन किया।

'हाँ महाराज, शास्त्र की आज्ञा तो यही है।'

'तो बस कल से ही भुवन विक्रम की बागडोर अपने हाथ में ले लीजिये।'

'आखेट के लिये कही बाहर गया होगा ?'

'नही तो—कभी कभी हो जाता है · राजभवन में या उद्यान में, या···'

'कही न कही उपद्रव कर रहा होगा। जुआ भी खेला करता है। दाँव पर कभी पाँच थप्पड़ और कभी दस तक लगा देता है—पीटने और पिटने का उसे व्यसन सा हो गया है···'

'आपके शासन मे सुधर जावेगा।'

सोम ने स्पष्ट कहा,—'महाराज, अब वह मेरे बस का नही रहा। हा छुटपन से मेरे हाथ मे आ गया होता अथवा उसे किसी गुरुकुल मे भेज देते तो सम्भव है वह कुछ हो जाता। परन्तु अब तो मेरे बूते के बाहर की बात है।'

रोमक मन ही मन खिसिया गया। ऐसे सुन्दर, होनहार बालक की इतनी निर्मम निन्दा ! परन्तु मन मारकर रह गया। सोम ने समिति की होने वाली बैठक की बात चलाई तो उसने टाल दी। सोम के चले जाने पर रोमक के कानो मे उसके वे शब्द बार-बार ठोकर देने लगे—जुआ भी खेला करता है · पर इसका तो व्यापक रिवाज है स्मृति मे कही-कही निषेध भी है, ऐसे तो बहुत से निषेध हैं जो परम्परा के कान नही उमेठ पाते और वह दाँव पर थप्पड़ें लगाता है, जब हार जाता है तब पिटता भी है ! राजकुमार होकर चाहे जिसके हाथ से पिट जावे !! ओफ !!!

रोमक के तिलमिली सी छूट गई। वह भुवन की ढूढ़ खोज न करके सीधा अन्त.पुर गया।

उसके चेहरे पर चिन्ता की छाप देखकर रानी ममता ने उद्‌बोधन किया,—'समिति का अधिवेशन अभी दूर है। आपको उसमे विजय प्राप्त होगी।'

'देवी मेरी चिन्ता का कारण वह विषय नही है। कारण भुवन है।'

'क्या उसने कोई उपद्रव किया ?'

'सो तो बालक है, कुछ न कुछ करता ही रहता। है क्या—क्या बतलाऊँ···' रोमक ने कुछ क्षण चुप रहकर भुवन के कुछ उपद्रव सुनाये।

माँ ने ऊपर ऊपर भय भीति प्रर्दाशत की, भीतर भीतर उसे न कोई डर लगा और न आश्चर्य हुआ।

रोमक ने कहा,—'यहाँ कोई बड़ा विद्वान या उपाध्याय दिखलाई नही पड़ता जो उसे ठीक ठिकाने पर ला सके। सोचता हूं किसी ऋषि के आश्रम मे दो चार वर्ष के लिये भेज दूं, परन्तु ऐसा कोई ध्यान में नही आ रहा है जो उसे अपने गुरुकुल मे ले ले, क्योंकि अब सोलह वर्ष का हो गया है।'

'देव, एक ऋषि हैं ऐसे—'

'कौन हैं ? कहा हैं ?'

'अपने नैमिषारण्य मे—धौम्य ऋषि।'

रोमक का उत्साह धीमा पड़ गया। भुवन के उपद्रव दूर चले गये और उसकी कोमल देह का चित्र सामने आ खड़ा हुआ। बोला, 'हैं तो वे सभी शास्त्रों और विद्याओं के पारङ्गत, परन्तु है कठोर। उनका अनुशासन कैसे सह पायगा यह कोमल किशोर ?'

ममता का क्षत्राणी हृदय मुह पर आ गया—

'देव ! क्षत्रिय होकर ऐसी बात करते है ! आप इसी आयु मे क्या क्या नही सहन करते रहे होगे ? विद्या और शक्ति को सरस्वती फूलों की सेजगाड़ी पर बिठालाकर नही भेजती। उनका वाहन तो नियम-संयम और आज्ञा पालन है। उन्हे तो वही ग्रहण कर पाता है जो गुरू के शासन मे रह कर भीतर के सोये ओज को दृढता के साथ जगाता रहे······'

एक क्षण के लिये ममता की उमङ्ग की धारा रुकी। उसके स्वर में कम्प आ गया था।

उसने सधकर अपनी बात पूरी की,—'महर्षि धौम्य समाज को निर्बल बनाने वाली परम्पराओं की कसनों के तोड़ने मे एक हैं।'

रोमक निर्णय पर पहुंच गया—

'उसे मैं आजकल में ही धौम्य के आश्रम में भेज आऊँगा। फिर देखूंगा इस समिति के कुचक्र को एकचित्त होकर। खेद यही है कि बहुत प्यार-दुलार के कारण छुटपन में ही इसे गुरुकुल मे न भेज सका।'

दूसरे ही दिन भुवन को नैमिषारण्य ले जाने का निश्चय किया गया।

वहाँ जाने के लिये तैयार उसे ममता करेगी—रोमक ने अपने सिर पर भार नही लिया। उसे अन्न-संग्रह की समस्या पर अमात्यों से अविलम्ब बात करनी थी। बच्चा आश्रम मे बरसो रहने की बात सुनकर रो पड़ा तो कौन सहे ?

ममता ने अवसर निकाल कर भुवन से बात की— और बात करते ही गला भर आया।

'वत्स—'

'अरी माँ, यह क्या ?'

'तुम अभी कोमल हो, परन्तु—'

'मेरी भुजाओ को टटोलो माँ। लोहे के समान हो गई हैं। तुम्हारे चरणों की कृपा से एक दिन सिंह को पछाड़ूंगा !'

माँ की आँख मे आँसू आ गया, होठ पर हँसी बिखर गई।

'ओहो, बड़ा सहसबाहु हो गया है न !'

'तो आप मुझे कोमल न कहा करें। पिताजी को भी निषेध करदें। मैं अब घुटनों के बल तो फिरता नहीं हूँ। हूँऊँ·· ये आँसू क्यों ? मुझसे ऐसा क्या हो गया है, माँ ?'

माँ ने अपने गले को ठीक किया, आँसू पोंछे।

'अच्छा सुन। मुझे नैमिषारण्य में धौम्य ऋषि के आश्रम मे शिक्षा प्राप्ति के लिये जाना पड़ेगा।'

'अरे बस! इतनी सी बात!! अयोध्या को टींटी चीची से जंगल बहुत बढ़िया।'

अयोध्या की टीटीं-चीची! जहाँ उसकी माँ भी रहती है!! जिसने उसके धूल भरे अङ्गों से अपनी गोद मैली की!!!

परन्तु इकलौते प्यारे बेटे की यह बात भी उसकी तोतली वाणी का ही दूसरा रूप लगी माता को।

भुवन ने एक 'परन्तु' की,—'पिता जी से पूछना पड़ेगा।,

मा ने बतलाया,—'उनसे बात हो चुकी है। तुम्हें कल प्रस्थान करना है। महाराज पहुँचाने स्वयं जायेंगे।'

'अरे! मुझसे अभी तक कुछ नही कहा!!'

'आज अभी थोड़ी देर पहले ही तो निश्चय हुआ है', बड़े प्यार के साथ ममता ने कहा,— मैं तुम्हें ब्रह्मचारी का साज सजाऊँगी कमर मे मुञ्ज बाँधूगी ' 'और आगे कुछ न कह सकी। हिलकियों रोने लगी।

भुवन उससे लिपट गया।

'मां तुम रोओगी तो मैं नही जाऊँगा, चाहे कुछ हो जाय यही अयोध्या मे रहूँगा।'

'नही',—'ममता ने अपने को सम्भाला, 'आश्रम जीवन कठोर होता है। उसकी याद आ गई थी। मैं भी छात्रीशाला मे रही हूँ न।'

भुवन ने अपना बड़प्पन प्रकट किया,—'शिकार के जीवन से भी कठोर होगा आश्रम का जीवन? भूखो-प्यासो रह सकता हूँ। मार खा सकता हूँ। कांटे छिदते चले जावें तो परवाह नही करता। मैं अपना धनुष-बाण भी साथ ले जाऊँगा। जंगली जानवरो से आश्रम वालो की रक्षा किया करूँगा।'

ममता को हँसी आ गई—

'पागल, वहां के अस्त्र-शस्त्र संयम और सत्य के आचरण हैं। संयमी और सच्चे आचरण वाला ही अजेय होता है। पर हां, धनुष-वाण भी तू ले जा सकेगा। महर्षि धौम्य इस विद्या के भी पारङ्गत हैं। सिद्ध पुरुष हैं।'

वे चित्र भुवन की आँखों के सामने नही आये। आया केवल किसी जटा-जूटधारी दिग्गज की असीम महानता का धुधला अस्पष्ट आकार।

ममता ने उसकी पीठ पर बार-बार हाथ फेरकर कहा, 'आश्रम से बहुत बड़े, बहुत अच्छे बनकर आना, भला। इन्द्र, अग्नि, वरुण—परमात्मा—तुम्हे सूपो भर-भर सुख दें।

'सूपों भर-भर सुख को रक्खूगा कहाँ माँ?' भुवन खिलखिला पड़ा। माँ का परिताप घुल गया।

'चल हट। जनपद की जनता को बाँटते रहना। इश्वाकु के वंश की रीति जो चली आई है। जैसा तेरा नाम है वैसा ही बनना।'

भुवन गम्भीर हो गया—

'परमात्मा, मुझे अपनी माता के आशीर्वाद का पात्र बनाइये।'

माँ ने स्वस्ति की और कहा, 'जब तुम जङ्गल से चोट खाकर लौटे, मैंने तुम्हारे लिये एक कुर्ता अपने हाथ से बनाया और सिया। सोने के तारो मे मोती जड़कर उसमे पेशकारी मैंने ही की है। उसको अभिमंत्रित भी किया है। सब प्रकार की व्याधि, सङ्कट, भूत-प्रेत, शत्रु तुमसे दूर रहेगे; किसी भी कठिन या दुष्कर काम करने के पहिले पहिन लिया करो सब सहज हो जायगा। उसे दूगी साथ ले जाना।'

'अवश्य माँ अवश्य।'—भुवन को कुतूहल के लिये सामग्री मिल गई। 'उसे सावधानी के साथ रक्खूंगा।'

'जब तक आश्रम से लौटकर आओगे तब तक और भी कई अच्छे अच्छे बनाकर रक्खूंगी।'

भुवन को भेजने की तैयारी होने लगी। दूसरे दिन प्रातःकाल ही प्रस्थान करना था। पुरोहित सोम ने वही मुहूर्त रक्खा था।

चलने के समय माँ ने कुछ सीख दी—

'अपने स्वास्थ्य की चिन्ता करना, जो स्वास्थ्य की चिन्ता नही करता वह पापी है।'

'करूँगा माँ। अभी तक बराबर करता आया हूँ।'

'गाली देना पाप है।'

'नही भूलूँगा।'

'जैसे ब्राह्मण बुद्धि के, वैश्य राष्ट्र-सम्पत्ति के, शूद्र श्रम की पवित्रता के प्रतीक माने गये हैं, वैसे ही क्षत्रिय वीरता और बलिदान के। और, चिरञ्जीव, अहङ्कार से सदैव बचना। अहङ्कार अधःपतन का द्वार है।'

'याद रक्खूँगा माँ।'

भुवन अपने पिता के साथ रथ मे जा बैठा। उसकी माँ ने देखा कि भुवन के हाथ मे चूड़े, कड़े, वलय और गले में हार इत्यादि कुछ नहीं हैं, कमर में केवल मूँज की रस्सी जिसे उसने स्वयं पहिनाया था, तब वह मुँह फेर कर रो पड़ी।

[१८]

रोमक के रथ और अनुचरों को नैमिषारण्य के किनारे तक पहुँचने मे कई दिन लग गये । मार्ग मे धूल और सूखे पेडों के सिवाय कुछ नही मिला । शरद ऋतु फिर आ गई थी, परन्तु नाम मात्र के लिये छोटे छोटे पौधो मे जिनकी जड़ें गहरी थी घुडिया निकलते ही झुलस गईं। नरनारी उस गीत के भाव को—सुस्मित शरद सौ बरस फिर फिर सामने आती रहे—कई प्रकार से गाते हुये तो सुनाई पड़े, परन्तु शरद के किसी भी अङ्ग पर स्मित कही न दिखलाई पड़ी । गाँव के गाँव उजड़े हुये से थे । गाँव के साहूकार और साधन सम्पन्न शाल और महाशाल अवश्य पनप रहे थे । साधारण जन दुबला पड़ गया था । पर झुका नही था, वह अच्छे दिनों को लौटा लाने के लिये छाती ताने था ।

रोमक नैमिषारण्य के छोर पर, बिखरे हुये जङ्गल मे बसे हुये एक गाँव मे सन्ध्या समय पहुँचा । वहा से धौम्य के आश्रम तक रथ नही जा सकता था । भुवन को आश्रम मे छोड़कर अयोध्या लौट पड़ने की उसे आतुरता थी । मार्ग मे उसने जो कुछ देखा और सुना था उससे वह अपने भविष्य के सम्बन्ध मे कुछ भयभीत हो गया था ।

एक पहर रात रहे ही वह मार्गदर्शक को लेकर भुवन के साथ पैदल चल दिया ।

भोर होते होते उसे नैमिषारण्य के घने जगल में शरद का भिन्न रूप दिखलाई पड़ा । हरसिंगार के फूलो की सुधन्धि ऐसी जान पड़ रही थी जैसे पग पग पर स्वागत कर रही हो । थोडी दूर आगे बढ़े कि चीतलों और करसार हिरनो के झुण्ड के झुण्ड चरते कुदकते फुदकते मिले । चौंके और फिर चरने मे लग गये । भुवन का मन तीर चलाने को ललचाया । पवन मे होम के सुगन्धित धुयें की बाढ पर बाढ उन चीतलो और हिरनों को छू-छू आ रही थी । समझ गया कि आश्रम निकट है और आश्रमों के निकट आखेट करने का निषेध है । संभव है ये जानवर आश्रम के

पालतू हों। फिर उन सबको कुछ स्त्रियो की हँसी के साथ बातचीत भी सुनाई पड़ी। रोमक ठिठक कर चलने लगा। चलते चलते उसे सुनाई पड़ा—

'पौ फट गई। अँधेरा जा रहा है।'

'आज कुछ जल्दी निकल पड़ी घर से।'

'दूध दोह लिया और चली आई। जरा उजाला और हो जाय तो फल इकट्ठे करें।'

'आकाश मे पक्षी उड़ने लगे। कूंकू-चीची करके ऊषा की अगवानी कर रहे हैं।'

'शुभ्रवर्ण ऊषा, तुम सारे उजियालों की रानी हो, सबसे अधिक सुन्दर, मंजुल और उज्ज्वल। उधर तुमने अपने लाल-पीले पट बिने और बुने इधर दोपाये चौपाये और पक्षी अपने अपने काम मे जुटे।'

'वह देखो, स्वर्ग की बेटी प्रभात के माथे पर रोरी लगा चली है।'

'नन्ही नन्ही कोपलों के भीतर छिपी हुई बड़ी बड़ी कलियाँ दिखलाई पड़ने लगी है जैसे ऊषा से मुस्करा मुस्कराकर कुछ कह रही हों।'

ये लोग थोड़ा-सा ही आगे बढ़े होंगे कि गाय के रंभाने के शब्द के साथ ऋषियो की मन्त्रध्वनि सुनाई पडी।

एक पुरुष के स्वर में सुनाई पड़ा—

'ऊषा, जैसे तुम दूब को ओसकण, गायो को बलभद्र चारा और ऋषियों ज्ञानियो को सत्य प्रदान करती हो वैसे ही कर्मकारों को महानता दो।'

दूसरे के में—

'ऊषा के सहस्र वरद हाथ हैं। इधर वह हमे वरदान दे रही है उधर सूर्य का स्वागत करने मे भी तल्लीन है।'

ये लोग एक छोटे से आश्रम से कुछ दूर होकर निकले। एक विद्यार्थी दूसरे से कह रहा था—

'धन्य हो ऊषा ! नित्य ऐसे ही ओज, साज, सलोनेपन और स्मित के साथ हम सबको वर्चस्व बांटने के लिये आती रहो। अनादिकाल से ऐसा करती आई हो और अनन्त समय तक करती जाओगी। हमारे पुरखो ने तुम्हारे दर्शनो से अपने को कृत-कृत्य किया अब हमे सजीव करो।

'जगाती-उठाती और आगे आने वाली पीढियों को भी आलोक और चेतना देती रहोगी।'

रोमक पुलकित हो गया। भुवन के मन पर आतङ्क छा गया। तो यहां इस प्रकार की बाते होती हैं ! जुआ, शिकार, ऊधम-उपद्रव कुछ नही !! हिश !!! कुछ बढ़िया भी मिलेगा।

आगे बगल मे थोड़ी दूर एक गाँव मिला। फिर थोड़ा सा जङ्गल।

एक वृक्ष की कुञ्ज के पीछे कुछ लड़किया बाते करती हुई जा रही थी।

'अरी यह वही ऊषा तो है जो नित्य नये ठाटवाट के साथ आकर गहरे अन्धकार को भगा देती है।'

'और सूरज के सामने जाने मे उसे कोई लाज नही आती !'

'वह सबके लिये कुछ न कुछ करती है, पक्षपात किसी का नहीं करती। जो अब भी आड़े-तिरछे पड़े होगे उन्हे कान मे कूके देकर जावेगी। किसी को यज्ञ करने, किसी को धन कमाने के लिये चेतावेगी।'

'अब अपने लाल होठो और मोतियो जैसे दाँतों की दमक भरी मुस्कानो द्वारा हमे-तुम्हे फल संग्रह करने के लिये कह रही है। जुट पड़ो कही।'

'वह देखो, नर्तकी की तरह सूर्य को कभी यह रङ्ग और कभी वह रङ्ग दिखलाने लगी है।'

रोमक और उसके संगियों को अपने पास आते हुये देखकर लड़कियां ठिठक गईं। इनमे एक गौरी थी दूसरी अम्बिका।

अधिक निकट पहुँचने पर रोमक ने गौरी को कुछ अधिक ध्यान के साथ देखा—जैसे पहिचानने का प्रयत्न कर रहा हो। भुवन उसके पीछे खड़ा था।

'वेटी, धौम्य ऋषि का आश्रम यहाँ से कितनी दूर होगा?' रोमक ने पूछा।

'बहुत दूर' उसने भुवन की ओर देखते हुये उत्तर दिया।

मार्गदर्शक ने कहा, 'मुझे मालूम है। एक पहर दिन चढ़े के पहले पहुँच जावेंगे। वहाँ पहुँचने के पहले आपको स्नान भी तो करना है।'

रोमक कुछ बात करना चाहता था।

'तुम कहाँ की हो वेटी?'

'इसी गाँव की।

अम्बिका ने संशोधन किया,—'बहुत दूर की—अयोध्या की।'

भुवन टकटकी लगाकर उसकी ओर देख रहा था। गौरी ने सिर नीचा कर लिया। भुवन की आँख इधर-उधर भटकने लगी।

'तुमको मैंने अयोध्या मे देखा है···स्मरण नही आता कब।' रोमक ने कहा।

गौरी ने सिर उठाया और रोमक को देखा, परन्तु आँखें भुवन की ओर फिर गईं। वह उसकी ओर देखने लगा था।

गौरी ने फिर सिर नीचा कर लिया। बोली, 'देखा होगा।'

मार्गदर्शक रोमक को लेकर आगे बढ़ा। भुवन ने लौटकर देखा तो गौरी उसी की ओर दृष्टि किये थी।

उन सबके चले जाने पर अम्बिका ने गौरी से पूछा, 'ये कौन थे ?'

'अयोध्या के राजा।'

'और वह ?...लड़का ?'

'मैं क्या जानूं ?'

'हूं...ऊँ...'

गौरी फलो की खोज करने लगी।

[१९]

धौम्य ने भुवन को अपने आश्रम मे ले लिया। वैसे छोटी आयु के ही बालक आश्रमो में प्रवेश पाते थे, परन्तु रोमक के विनय भरे अनुरोध और अपनी उदार वृत्ति के कारण धौम्य ने आनाकानी नही की।

उपनीत करने के बाद धौम्य ने कहा, 'मैं भुवन को वार्त्ताशास्त्र की भी शिक्षा दूंगा। कहां से किसका पेट कितना और कैसे भरा जावे वार्त्ताशास्त्र का यही सार है। पेट पहले, सिर पीछे। मन्त्रो के रटने मात्र से कुछ नही होता। इसने अभी तक कुछ नही सीखा है।'

'आचार्य मेघ ने ढङ्ग से नही सिखलाया पढ़ाया', रोमक ने सफाई दी।

धौम्य बोले, 'हो सकता है, परन्तु जिस वातावरण में यह पला है उसका दायित्व अधिक है।'

'मैंने धनुर्विद्या सीखी है, गुरुदेव',—भुवन से न रहा गया।

धौम्य हँस पड़े।

'सीखने के पहले तुम्हे बहुत से अभ्यास भुलाने पड़ेंगे। धनुर्विद्या तो जीवन का केवल एक अङ्ग है। आदर्श है उचित अनुपात मे शरीर, मन और आत्मा का समन्वय, उनका समीकरण। अपने निज को सन्तुलित रखना जीवन का दृढ़ संकल्प और ध्येय होना चाहिये।' धौम्य ने समझाया।

'गुरुदेव, मेरी माता ने चलते समय कहा था कि स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखना',—भुवन यह समझा।

'और यह भी कहा था कि मौज के साथ मनमाना भोजन करना और दिन-रात सोना!'

धौम्य की बात पर रोमक हँस पड़ा और भुवन सिकुड़ गया।

धौम्य ने कहा, 'मैं रानी ममता को जानता हूं। ममता ने छत्री-
ला मे शिक्षा पाई हैं। उन्होने तुमसे कहा होगा कि अहङ्कार अध:पतन
द्वार है ?'

जैसे धौम्य वहां कही खड़े हो जब उसकी मां ने यह बात कही थी !
फेद जटा जूट वाले दृढ शरीर धारी धौम्य की जब पैनी आंखों को
ग्रा और खनकती हुई वाणी सुनी तब भुवन सहम गया।

धीरे से बोला, 'जी'' कहा था उन्होंने यह।'

फिर पुचकार कर धौम्य ने कहा, 'तुमको ठीक कर लूंगा। अच्छे
नने के लक्षण हैं तुम मे।'

रोमक ने अपनी बात चलाई—

'अयोध्या की ओर छह सात साल से बरसा नही हो रही है, यज्ञ
र यज्ञ किये, परन्तु कोई फल नही मिला।'

धौम्य ने कहा, 'सुगन्धि और रोग हरण के लिये सीमा भीतर का
ज्ञ उचित है, पर अति तो सर्वत्र निषिद्ध है। उस घी और अन्न को जो
ज्ञो मे फूका, दुखी जनो के मुह मे पहुँचाते रहते तो अधिक कल्याण-
ारी होता।'

'अब कैसे पार पाऊं गुरुदेव ?'

'सोचो समझो और विवेक से काम लो। इस समय इससे अधिक
कुछ नही कहूंगा।'

चलते समय रोमक बार-बार इच्छा करते हुये भी भुवन के सिर
ार या पीठ पर न तो हाथ फेर सका और न उससे कोई बात कर
सका। गला रुँध गया था। वह नही चाहता था कि धौम्य या उसके
आश्रमवासी उसे निर्बल समझें।

ममता के दिये हुये जडाऊ कुर्ते की पोटली जिसमे पेटियां और
बहुमूल्य कंचुक भी थे रोमक ने धौम्य की ओर बढाते हुये कहा, 'आज्ञा
हो तो कुर्त्ता और कंचुक छोड़ जाऊँ भुवन के लिये ? इसकी माता ने
इन्हे अभिमन्त्रित किया था।'

धौम्य ने अपनी कुटी के एक कोने में उस पोटली को टँगवा दिया। मुस्कराकर बोले,—'जैसे वैसाख-जेठ की दुपहरी में ठण्डी हवा का झोंका आया हो,—'यह अपने ही मन्त्र से अपनी रक्षा करेगा। अभिमन्त्रित वस्त्रों में रक्षा करने का सामर्थ्य नहीं होता।'

[२१]

जैसे जैसे रोमक अयोध्या की दिशा मे बढ़ा शरद पीछे छूटती गई। धौम्य के आश्रम और वहाँ के वातावरण से उसने जो ओज अपने भीतर प्रतीत किया था वह भी अयोध्या पहुंचते पहुँचते क्षीण हो गया। भुवन को छोड़ आने पर जो जी बारबार भर आता था अयोध्या मे उसकी अनुपस्थिति के शून्य में अकाल की प्रचण्डता और अपनी असमर्थता को बढ़े हुये रूप में पाने लगा।

कभी कुछ नही और कभी यकायक कुछ कर डालने के स्वभाव ने उसके प्रयत्नों को विकृत और लचर बना दिया।

साधनहीन किसानों की संख्या अनगिनत हो गई। बड़े भूमिस्वामियों, महाशालो से बँटिया की खेती पर उन्हे उपज का सातवाँ भाग मिलता था। रौमक ने अपनी कुआ खेती पर उन्हें उपज का पाचवां भाग देने का वचन दिया तो अपने पशुओ के चराने की मजदूरी घटा दी—छः गायों के चराने पर एक गाय का दूध और सौ के चराने पर दूध के अतिरिक्त गायों की एक जोड़ी मजूरी मे मिलती थी वह दर कम करदी। श्रमिकों को, जिसकी जैसी योग्यता हो, एक पण से लेकर छः पण रोज तक मजूरी की दर थी। वह घटाकर पाव पण से एक पण करदी गई! कुओं नहरों इत्यादि के खुदवाने का काम उसी गति से जारी रखना चाहता था। जब प्रतिवाद खड़ा हुआ तब कह दिया कि पणियों और वणिको ने भोजन के उपकरण छिपा लिये हैं, हमारा कोई दोष नही। राजा के अन्नागारों से अन्न वितरण का काम ममता को कम कर देना पड़ा, क्योंकि स्वयं भूखो मरने की नौबत आती। अकाल पीड़ित प्रजा में हाहाकार मच उठा। रोमक ने उपदेशो से प्रजा का पेट भरना चाहा। विफल रहा।

राजा, उसके अमात्य और अन्य वेतन भोगी कर्मचारी परस्पर खींचा-खांची करने लगे। केवल एक साधन पर सहमत हुये—जिन व्यापारियों ने अपने अपने भण्डारों मे अन्न छिपा रक्खा है उनका अपहरण किया

जावे। महाशालों के अन्न भण्डारों पर भी आँख लगाई गई। जिन महाशालो ने विरोध किया उनकी भूमि छीनने की आज्ञा रोमक ने निकाली—ये भूमिया मैंने या मेरे पुरखो ने ही तो दी थी तुम्हें ! उन्होने दस्युओ और भागे हुये दासों से डाके डलवाना शुरू कर दिया ! अकाल और अराजकता का गठबन्धन होने लगा।

एक दिन आतुरता मे आकर रोमक ने नील के अन्नागार पर आक्रमण करवा दिया।

आधी रात का समय। रूखी बरफीली वायु सूखे पेड़ों तक को कंपा रही थी। हिमानी और नील अपने अपने कमरे मे मोटे मोटे कम्बल ओढ़े सो रहे थे कि उन्हें अपने आगन मे किसी के धम्म से कूदने का शब्द सुनाई पड़ा। हिमानी ने किवाड़ खोलकर देखा तो आंगन में राजा के कई सिपाही मशालें लिये कुछ ढूढ रहे थे। कुछ के हाथ में ताले और किवाड़ तोड़ने के औजार भी थे।

हिमानी चिल्ला पड़ी—'डाकू ! डाकू !!'

उन लोगो मे से एक ने कहा, 'डाकू नही हैं। राजा के दण्डिक हैं। तुम्हारा अन्न ले जाने के लिये आये हैं। बतलाओ कहां छिपा रक्खा है।'

नील भी आ गया।

बहुत हाय हाय की फिर भी वे लोग न माने। नील अड़ गया—

'हम अन्न चोर नही है। कोई दूसरा घर देखो। अपने को यों ही नही लुटने देंगे। हमे मार डालो तब हमारे माल को मार सकोगे।'

सिपाहियो ने उनको बाध लिया। ताले तोड़े, किवाड फाड़े और बहुत सा अन्न उठा ले गये। बाहर सड़क पर गाड़ियां खड़ी थी। उनसे ढोकर राजा के अन्नागार में रखा दिया।

सूर्योदय के उपरान्त पीड़ितों को अन्न दिया गया। लगी हुई आग पर पानी के छीटे पड़े और पड़ते रहे, परन्तु वह बुझी नही। कुछ समय के उपरान्त फिर धायं धायं करने लगी।

यह आग मेघ और उसके वर्ग के हाथ का हथियार बनी।

[२१]

'भोजन की वेला आ रही थी, थोड़ा सा काम और हो जाता तो अच्छा रहता', एक किसान ने दूसरे से कहा।

'वह देखो, उन स्त्रियो के हाथ पैर ढीले पड़ रहे हैं। हम लोग जब इस खेत की कटाई कर लेंगे, तभी चैन लेंगे, स्त्रियों को चेताओ।' दूसरे ने उत्तर दिया।

धूप तो खरी हो गई थी, पर वायु में ठण्डक अब भी थी। अयोध्या से दूर एक गाँव मे कुआँ खेती होती थी। किसान गेहूं की फसल काट रहे थे। एक पुरुष स्त्रियों के दल के पास पहुँचा जो दूसरे खेत की कटाई कर रही थीं। उसने हँसकर उनसे एक बात की और गा गाकर सपाटे के साथ हँसिया चलाने लगी। उनके गीत का भाव यह था—

'पृथ्वी के पौधे मीठे दूध से भरे खड़े हैं। हमारे बोलो मे भी तो अमृत की बूँदें हैं।

भगवान शुद्ध सुरस से भरे हैं, वे निराले है। कौन जाने कहां बसते और फिर भी सारे जग को उजियाला देते रहते हैं। अलख है। हमारी विनती सुनते हैं और हमारी विनय मात्र के बदले मे ढेर का ढेर अन्न हमे वे देते हैं। वे सौ बाहो से इकट्ठा करते हैं और सहस्र से बाँट देते हैं।

हम गृह देवी को चार पुरी चढ़ाते हैं, गन्धर्वों को तीन तुम्हे एक ही चढ़ा दें तो हम पुञ्ज के पुञ्ज पा जाते हैं। हे प्रजापति संग्रह और उत्कर्ष तुम्हारे दो चेरे हैं। ये दोनो अनन्त सम्पदा हमारे घरो मे लावें।'

गीत के ओज ने उनके हाथ के हँसिये को बल और चमत्कार सा दे दिया। उन्होने गीत को दुहरा--तिहरा नही पाया था कि चुपचाप खड़ी होकर एक ओर देखने लगी। उस दिशा से मेघ आ रहा था।

जटाजूटधारियो को बहुत सम्मान मिलता था। एक कृषक ने आगे बढ़कर उसे नमस्कार किया। मेघ ने आशीर्वाद दिया। किसान ने श्रद्धा प्रकट की—'आप हमारे अतिथि हैं। मधुर अन्न का भोजन करिये।'

'मुझे अन्न की भूख नही है। तुम्हारी श्रद्धा का भूखा हूँ,' मेघ ने आतङ्क बिठलाया।

थोड़ी देर मे मेघ किसानों के जमघट मे पहुँच गया। सब छाया तले जा बैठे। स्त्रिया एक किनारे। वे सब भूखे थे। मेघ से शीघ्र छुट्टी पा जाना चाहते थे, परन्तु सङ्कोच मे थे। मेघ अपने उद्देश्य मे आधा पागल हो गया था। वह कह रहा था,—'राजा जो जनपद की छाया कहलाता है, पापो का पुञ्ज बन गया है। तुम दुर्बल होते जा रहे हो वह मोटा पड़ता चला जा रहा है।'

एक बोला, 'बहुत दिनो से नही देखा। क्या उसके तोंद निकल आई है?'

'उसकी देह नहीं, उसका भीतर वाला मोटा हो गया है। खानो से धातुओ के निकालने वालों से आधा कर ले लेकर उसने अपना कोष भर लिया है। तुम्हारे हित पर कुछ खर्च नही करता।' मेघ ने बतलाया।

अधेड़ अवस्था की एक स्त्री ने कहा, 'हमे किसी से कुछ नही चाहिये। परमात्मा का और अपना भुजाओ का भरोसा रखते हैं।'

यह स्त्री इतनी फूहड़! मुँह लगाकर बात करती है!! शूद्र तपस्या करने लगे हैं और स्त्रियो के सिर फिर गये हैं!!! मेघ ने सोचा। एक क्षण ध्यान का ढोंग करके चुप रहा।

'तुम थोड़े से कुछ अन्न पा गये तो क्या हुआ? सारे जनपद मे हाहाकार मच रहा है। राजा ने यज्ञो में पशुओ का बलिदान बन्द करके देवताओ को रुष्ट कर दिया है। अग्नि के मुंह में अन्न और घी झोंकने से देवता सन्तुष्ट नही हुये और न होगे! उसने ऐसे बहुत से यज्ञ किये—सब व्यर्थ गये। कोई कहे कि हमे किसी से कुछ नही चाहिये! परमात्मा का और अपनी भुजाओ का भरोसा करते हैं!! तो वह अपने

को अन्य बढ़ी जनता से अलग-विलग करता है।' मेघ बोला और उसकी आँखो पर रोष आ गया।

एक किसान ने अपनी आस्था व्यक्त करने और बात को शीघ्र समाप्त करने के लिये प्रश्न किया, ऋषि महाराज हमे तो थोड़े शब्दों में बतला दीजिये कि क्या करना है ?'

राजा ऋषियों का अपमान करता है। राज्य में अराजकता फैल गई है। वह अपना कोष बढ़ाता चला जा रहा है और तुम्हें भूखों मार रहा हैं। भोर और सांझ उसे कोसो और समिति की बैठक करवा के उसे गद्दी के नीचे पटक दो। सदा के लिये कीड़े-मकोड़े की भांति कर दो।' मेघ आवेश से भर गया।

'अभी तक हम सीखते आये हैं कि सब एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें, किसी की सम्पत्ति की लालच न करें। हमारा द्वेषी कोई न रहे; आज यह सब क्या सुन रहे हैं ? धौम्य एक बड़े ऋषि हैं। वे भी यही कहते हैं ?' एक अधवूढ़े किसान ने साहस के साथ कहा।

'धौम्य की बात मत करो, मन्त्रों के भौतिक प्रभाव को न वह जानते हैं और न मानते हैं। मानो अथर्व कुछ है ही नही।' मेघ ने आवेग के साथ व्याख्या की।

दूसरे वयोवृद्ध ने सभाला,—'अरे तो यह कब कहते है कि राजा को लूट लो ? हमने भी सुना है कि जनपद मे जगह जगह पर घोर अकाल पड रहा है। एक यहाँ कुछ सुख है सो हम उन सबसे अलग तो हो नही गये और ऋषियों का अपमान तो कोई भी नही सह सकता।'

मेघ ने विजय का मार्ग पा लिया—

'मैं ही हूँ वह ऋषि बालब्रह्मचारी तपस्वी और वेदपाठी। मेरा ही घोर अपमान किया गया है। देवगण तपस्वी को छोड़कर दूसरे के मित्र नही होते, जानते हो ?'

मेघ भय के साधकों का साथी था—अन्धविश्वासो का बढ़ाने वाला ; इन लकीरो को यो खीचो, उनको यों; इनके भीतर, उनके भीतर मत आओ इत्यादि के द्वारा मानव की विकास-प्रेरणा और निर्भीकता को कुण्ठित करने वाला वेदवादरत कर्मकाण्डी, क्रिया विशेष कुशल। जनता का एक विशेष अङ्ग भयभीत, भ्रान्त, उद्विग्न और विषण्ण रहता ही आया है, मेघ ने उन्हें भयभीत कर दिया।

और थोड़ी देर मे उसने उन सीधे भूखे किसानों के बहुमत को अपनी ओर कर दिया। समिति की बैठक शीघ्र करवायेंगे और राजा को ठीक करके ही रहेगे, उन्होंने वचन दिया।

मेघ को भोजन कराके वे सब खाने-पीने लगे।

दो पुरुष अलग बैठकर धीरे धीरे बात कर रहे थे—

'यह ऋषि तो बड़ा घमण्डी और क्रोधी जान पड़ता हे।'

'अरे चुप! मन्त्र जानने वाला ब्राह्मण है!'

'अरे तो उससे थोड़े ही कुछ कह रहा हूं। अरे भाई तुमसे कहता हूँ कि प्यास बुझाने के कई साधन हैं—अञ्जलि बाँधकर पी लो, लोटे से, चाहे मुह से पी लो। होना चाहिये पानी निर्मल। परन्तु केवल इस बात पर ओज का पटकना कि बस यो पियो, यों खाओ और उसी उसी पर ध्यान को रमाओ कुछ उल्टा जान पड़ता है। मैंने तो अच्छे लोगों से यही सुना है।'

'जिधर अपने यहां के सब जायेंगे वही हमे तुम्हे भी चलना पड़ेगा।'

'......देखा जायगा।'

[२३]

कही थोड़ी सी फसल आ गई तो अधिकांश खेतों में धूल ही उड़ती रही। मनुष्यों और पशुओं में बीमारियाँ फैली। मनुष्य बचे तो पशुओं का व्यापक नाश हुआ। जगह जगह उनके कङ्काल फैल गये।

राजा ने यज्ञ बन्द कर दिये। सोचा और अधिक अन्न, घी-चन्दन कहाँ से लावें? पशुओ की बलि वह करता नही था। बलि योग्य पशुओं की संख्या रह ही बहुत कम गई थी।

बुनकरो के नरे, कँडे और करघे बेकार हो चले। धुनकरो के धुनकों और पीजनो के लिये कपास नही के बराबर रह गया। लुहार, बढ़ई, रथकार, सूत और तन्तुवाय हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते थे। चित्रकार गायक, वादक और नर्तक भी रोने को आ गये।

ऐसे थोड़े से ही थे जिनके पास सम्पत्ति थी। वे लुटेरों के डर के मारे चिन्ता में रहने लगे।

ऐसे लोग अब बहुत हो गये जो कहते थे कि जनता के कष्टों का दायित्व राजा के सिर है।

एक दिन आया जब मेघ वर्ग के संवृद्ध प्रभाव ने जनपद समिति का अधिवेशन रोमक को गद्दी से उतारने के उद्देश्य से करवा डाला।

बहुत से लोग जानते थे कि अकालों का पड़ना दैवी दुर्घटना है और वे इसके कारण राजा को पदच्युत करने के लिये तैयार न होते। परन्तु उन्हे राजा की कार्य अक्षमता, उसका जन हितकारी कामों को अधूरा छोड़ना, ऊटपटाँग व्यवहार और वर्ण व्यवस्था के प्रति निष्ठा की कमी अखरने लगी थी। अकेले यही होती तो कोई बात न थी, परन्तु इसके साथ दूसरी बातें जुड़ गईं। कुछ लोग महाशालों के प्रभाव मे थे, कुछ पणियो और वणिको के हाथ मे। इनका अन्न छीनकर राजा ने जिनको बांटा था उनकी शक्ति सीमित थी, परन्तु मेघ और उसके वर्ग के ब्राह्मणों, महाशालो और लेन-देन करने वाले साहूकारो की अधिक थी।

समिति की बैठक में जैसा कि नियम था राजा उपस्थित हुआ और उसे खरी-खोटी सुनने पड़ी—

'सामन्तो की कमर तोड़ दी गई है।'

'व्यापारियों का व्यवसाय चौपट कर दिया गया।'

'राजा ने वेट-वेगार बढ़ाकर अपनी खेती तो बना रक्खी है, और सबकी उजाड़ दी है।'

'भुवन विक्रम ने जानवरों की शिकार करते करते कई गाँव वाले मार डाले! उसको दण्ड न देकर आश्रम मे भगा दिया है!!'

'मनु महाराज ने जनपद के दु.खो का कारण राजा का पाप बतलाया है। यदि जनपद सुखी हो तो राजा बखान करता फिरता है कि मेरे कर्मो का फल है यह। यदि जनपद दु.खी हो तो वह क्यो न स्वीकार करे कि ये दुःख उसके पापो का फल है?'

'राजा ने वर्णाश्रम को लुञ्जपुञ्ज कर दिया है! इनके राज्य में शूद्र तपस्या कर उठे हैं!!'

'कुछ तपस्या करते हैं और कुछ डाके डालते हैं। वह न उनको रोक पाते हैं और न इनका कुछ कर पाते हैं।'

राजा को उत्तर देना पड़ा। इस प्रकार के संगठित विरोध की उसने कल्पना न की थी। क्या कहे और क्या न कहे इस द्विविधा मे पड़ गया।

सोम ने कुछ सहारा दिया,—'शूद्र तपस्या कर सकते हैं यहाँ तक कि वे ब्राह्मण भी हो सकते हैं।'

'शास्त्रो मे आज्ञा है।' रोमक के मुह से निकला।

मेघ ने तपाक से टीका की,—'शास्त्रों की चर्चा वेदवेत्ताओं के लिये छोड़िये। अपने कुकर्मों को शास्त्रो की दुहाई में मत लपेटिये। प्रत्येक काल के लिये शास्त्रो मे अलग अलग विधि है। आज के युग में उसका निषेध है। कही कही तो तपस्या करने वाले शूद्र को मार दिये

जाने तक की विधि है।' समिति में उसको कितनी मान्यता प्राप्त है, मेघ जानता था।

रोमक ने कहा, 'मैं इस बात को ठीक नही समझता। परमात्मा नें गुण और कर्म के अनुसार चार वर्णों का सृजन किया है। संभव है आप सरीखे लोगो ने पीछे से यह अनीति जोड़ जाड़ दी हो।'

मेघ बालब्रह्मचारी था। ब्रह्मचारी चाहे क्रोधी हो, अहङ्कारी और छली कपटी ही क्यों न हो है तो ब्रह्मचारी। उसका पहले अपमान किया और भरे अधिवेशन मे आज फिर! समिति के एक प्रभावशाली भाग में रौरा मच गया।

इस पर रोमक चिल्लाया,—'सत्ता से सत्य बडा होता है। न भूलना कि ऋतु और सत्य के सहारे ही मनुष्य स्वर्ग को पाता है। वेद और वेदाङ्ग सद्गुण शून्य मनुष्य का वैसे ही त्याग कर देते हैं जैसे चिड़ियों के बच्चे पंख हो जाने पर नीड़ छोड़ कर उड़ जाते है।'

छन्द संग्रह—राय लेने—की बारी आ गई। समिति में बहुत से लोग राजा को पदच्युत करने के पक्ष मे थे तो एक खासी संख्या उसे गद्दी से न उतारने के पक्ष मे भी थी। कुछ लोग ऐसे भी थे जो उसे उस समय तक के लिये अपदस्थ करना चाहते थे जब तक कि जनपद के अच्छे दिन फिर से न लौट आवें।

समिति के प्रधान ने, जो ईशान कहलाता था, हरे पीले और लाल रङ्ग की काठ की शलाकायें तैयार करके बंटवाईं। हरे रङ्ग की राजा को अपदस्थ करने की द्योतक, लाल उसको बनाये रखने की और पीली तब तक के लिये राज्य से अलग कर देने की जब तक कि जनपद फिर से सुखी न हो जाय।

जब तक शलाकायें तैयार होकर बाटी जायें तब तक वाद विवाद चलता रहा।

एक ने कहा, 'हमारा राजा शीलवान और सदाचारी है। उसको गद्दी पर से नही उतारना चाहिये।'

'यह कैसा शील कि अपने अपराधों को स्वीकार नहीं करते।'

मेघ ने ब्राह्मणों को समाधान किया,—'जब हम सबने राजा का अभिषेक किया तब समिति से कहा था—हे जनगण, यह तुम्हारा राज है, परन्तु हमारा राजा वर्चस्व है यह नहीं। राजा और सबका अधिपत भले ही हो परन्तु ब्राह्मणों का नही हो सकता। और फिर ऐसा राजा!'

शलाकायें इकट्ठी की गईं। गिनती हुई। पीले रङ्ग की सबसे अधिक निकली।

ईशान ने घोषणा की,—'राजा रोमक को जनपद समिति उस समय तक के लिये अलग करती है जब तक कि जनपद फिर से सुखी न हो जाय।'

कुछ लोग सुनकर प्रसन्न हुये, कुछ ने हाय हाय की। रोमक पीला पड़ गया।

ईशान ने उसे सांत्वना दी,—'सम्भव है बहुत शीघ्र जनपद का गया गौरव और सुख लौट आवे। तब तक आप अपने दोषों का अनुसन्धान और उनका मार्जन करें।'

रोमक नीचा सिर करके लड़खड़ाते पैरों वहा से चला गया।

अब प्रश्न खड़ा हुआ राज्य का कार्य आगे के दिनों में किस प्रकार चलाया जावे। यह बिना विलम्ब तै हो गया। लोग बैठे बैठे थक गये थे और दृढ़ शासन के पक्ष मे थे। महाशालो मे दीर्घबाहु, साहूकारो मे नील, नगर सभा की ओर से सोम, ब्राह्मणों मे से मेघ को लिया गया। अमात्य वे ही रहे। मेघ ने अपने वर्ग के दो–तीन सदस्य और ले लिये। बहुमत मेघ का था।

राजा को राज-भवन छोड़ने की आज्ञा हुई। मेघ रोमक को सदा के लिये न निकाल पाने की खिन्नता और कम से कम कुछ दिनों के लिये ही सही, उसे गद्दी पर से पटक देने की प्रसन्नता के दुबीच भूल रहा था। उसने सुझाया,—'रोमक का सोना-चादी और हीरे-मोती छीनकर दीन-दरिद्रो को बाँट देना चाहिये।'

समिति ने समर्थन नही किया,—

'यह तो अधर्म है। लूटमार का दूसरा रूप। यह नही होने दिया जावेगा।'

मेघ ने देख लिया कि समिति सीमा उल्लघंन सहन नही करेगी।

समिति के अधिवेशन की समाप्ति के उपरान्त ही नये शासक मंडल ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ली। काम दृढता और उत्साह के साथ आरम्भ कर दिया गया। महाशाल, साहूकार और मेघ वर्ग के ब्राह्मण एक सूत मे बँधने लगे। जो इनके विरोधी थे वे उदासीन हो गये। डाका और बटमारी बन्द हो गई,—क्योकि उसमे महाशालों का हाथ अधिक था,—परन्तु साधारण जनता की दरिद्रता में कमी नहीं आई।

[२४]

रोमक को तिखण्डा राजभवन छोड़कर नगर के एक भवन में जो उसका ही था आना पड़ा। महल से छोटा था। फिर भी उसमें कई सदन और आँगन थे। पिछवाड़े एक उद्यान भी लगा था। पहले इस भवन मे रोमक के पशु बँधते थे। अब पशु थोड़े से ही बचे थे। उनके लिये और रोमक के लिये काफी स्थान निकल आया। रोमक अपने कोष के साथ अपना निजी अन्न भांडार, जो थोड़ा सा ही रह गया था, उठा लाया। परन्तु यह स्थान उसे ऐसा लगता था जैसे खाये डालता हो। श्रीहीन रोमक अपने को दिशा रहित शून्य में उड़ता पाने लगा। उसको ममता का वीणावाद्य भी अच्छा नही लगता था। जब कभी भुवन का स्मरण हो आता था, जैसे कुपच के रोगी को कभी बहुत पहले खाये हुये चटपटे पकवान की याद आ जाती हो और उसे देर तक मन मे न टिका पाता हो। उसके विवेक को घुन लग गया और वह विक्षिप्त सा रहने लगा।

कभी अकेले मे अपने आपसे बातें करता और कभी दूसरों से बेतुकी कहता।

सूर्योदय के बहुत पहले सरयू के किनारे चला जाता, कभी सरयू की पतली धार, कभी सरयू की रेत और कभी तटवर्ती वृक्षो को अपने मन की सुनाता। जो लोग प्रातःकाल स्नानादि के लिये वहाँ आते वे भी उसके स्वागत भाषणो को सुनते। किसी को उस पर दया आती और किसी को हँसी। अयोध्या नगर मे उपेक्षा के साथ उसकी बातों की चर्चा होती।

एक दिन बड़े भोर जब अँधेरा था वह सरयू तट के उसी स्थान पर गया जहाँ प्राय. जाया करता था। वृक्ष कुञ्ज के एक बड़े पेड़ के नीचे खड़े होकर बोला, 'हे वरुण, हे अन्तरिक्ष और पृथ्वी के स्वामी, आप सबके भले बुरे कृत्यो को देखते है। बतलाइये मैंने कौन-सा पाप किया

जिसका यह दण्ड मुझे दिया गया ? मेरे गौरव का अपहरण क्यों हुआ ? वह गया ही क्यों ?'

पेड़ के ऊपर थोडी सी खरखराहट हुई। रोमक को सुनाई पड़ा—

'तुम्हारे पाप अनेक है। सबसे बड़े हैं, पशुओं का बलिदान वर्जित कर देना, दासों का भगवा देना और शूद्रो का एक ओर तपस्या करना, दूसरी ओर डाके डालना। महापुरुषो का अपमान करना······'

'आकाशवाणी ! आकाशवाणी !!······या कोई छल ?'

'मैं आकाश से बोल रहा हूँ ··· अन्य जन से भी पूछो। यही वे कहेगे ····· बस, अब नही बोलूँगा······'

रोमक घबराकर हट गया। आँखें बन्द और कानो मे सायँ सायँ। न कुछ दिखलाई पड़े और न कुछ सुनाई पड़े। सरयू के पुलिन पर खुले मे गया। उसके कानो मे वह आकाशवाणी गूँज रही थी पौ फटने की प्रतीक्षा करने लगा।

जब अपनी अनादि और अनन्त सजधज के स थ पौ फटी, उजेला हुआ और स्नान करने वाले इधर उधर दिखलाई पड़ने लगे, रोमक उसी पेड़ के नीचे फिर गया। बड़ी बारीकी से उसने ऊपर नीचे और सब दिशाओ को आँख से टटोला, पर वहाँ कुछ भी न दिखलाई पड़ा। स्नान करने के लिये आये हुओ मे से जिसने रोमक की यह क्रिया देखी उसने समझा कि दिमाग फिर गया है।

उधर से कुछ लोग लौटे तो उनसे रोमक ने बातचीत की—

'आपने यहाँ या आसपास किसी को देखा ?'

'नही तो।'

'आचार्य मेघ कही दिखलाई पड़े ?'

'न।'

'आप मे से किसी ने कोई आकाशवाणी सुनी ?'

'न, न।'

'मैंने ऐसा क्या किया जो पददलित कर दिया गया ?'

उन लोगों ने मुंह फेर लिया और चलने लगे।

एक कहता गया—'आपके राज्य मे शूद्र तपस्या कर उठे हैं।'

दूसरा—'आप महापुरुषों का, वाल ब्रह्मचारियों का अपमान करते हैं।'

तीसरा—'बहुत बातें हैं कौन कहे। यज्ञों मे पशुओं का बलिदान रोक दिया! अकाल बुला डाले!! कौन कहता फिरे।'

उनके चले जाने पर रोमक ने सोचा क्या यह सब मेरे मति विभ्रम का फल नही है? घर जाकर सो लूं।

घर पहुंचकर सोया और जब मन कुछ स्वस्थ हुआ उसने ममता को आकाशवाणी वाली बात सुनाई।

ममता स्थिर मति की थी। उसने विना किसी अन्वेषण या विश्लेषण के समझाया,—'पूर्व काल मे भले ही कभी आकाशवाणी होती रही हो, इस काल मे नही होती। यह तो मेघ या उसके किसी सहवर्गी का छल जान पड़ता है।'

'उसके उपरान्त ही कुछ नगर निवासी मिले तो उन्होंने भी वही कहा जो मैंने आकाशवाणी में सुना था।'

'आकाशवाणी का स्वर किसी परिचित के कण्ठ से मिलता था?'

'कह नही सकता। उस समय जांच नही कर पाई।'

'मुझे विश्वास है कि वह किसी का छलछद्म ही था। शत्रुओं ने अपने मनकी करली, फिर भी पीछे पड़े हुये हैं। अस्तु, आप वह सब भूल जाइये। आगे क्या करना है उसी को स्थिरता के साथ सोचा करिये।'

'यहाँ मन नही लगता है। जनपद में भ्रमण करने की इच्छा है। मेघ और उसके साथी जनता के मुखियों को बहका सकते थे तो क्या मैं उन्हे ठीक-ठीक बातें न सुझा सकूंगा? जनपद के अच्छे दिन आने पर भी ये लोग फिर कोई नया षडयन्त्र रच सकते हैं।'

'मैं आपके साथ रहूँगी।'

'भुवन को भी देखने की लालसा है।'

'इन दिनों उससे नही मिलना चाहिये। यहा का समाचार तो उसने सुन ही लिया होगा। हम लोगों के साक्षात्कार से उसका दुख बढ़ेगा।'

रोमक एक क्षण सोचकर बोला, 'ठीक कहती हो।'

[२५]

भुवन के कई घण्टे अध्ययन करने और गुरू के प्रवचन सुनने में जाते थे तो कई घण्टे फलमूल संग्रह, स्वच्छन्द विचरण, खेलकूद और आश्रम के छोटे-छोटे खेतों पर भी जिनमें शाक भाजी इत्यादि उत्पन्न की जाती थी, चले जाते थे। जान ही नहीं पड़ता था कि दिन कब आया और कब चला गया।

पिता के अपदस्थ होने का समाचार मिला तो मन को वेदना हुई और कई दिन होती रही, परन्तु जैसे आश्रम में और उसके चारों ओर दूर-दूर तक ही अच्छे ही अच्छे दिन दिखलाई पड़ते थे वैसे अयोध्या मे भी शीघ्र किसी दिन फिरेंगे। यह आशा थी। युवक के सहज उत्साह, आत्म विश्वास, और भविष्य की प्रवल आशा ने उसके आश्रम-जीवन मे कोई उथल-पुथल नही होने दी। आखेट वहा वह खेल नही सकता था—तो स्नातक होने के वाद अयोध्या पहुंचकर सही। वाण-विद्या तो भलीभाति सीख रहा था जितनी और जैसी मेघ तो क्या उसका मरा वाप भी नही सिखला सकता था! भुवन की धारणा थी।

आरुणि का और उसका साथ कम होता था, वेद और कल्पक का अधिक। हलके जी वाले वेद को वह गम्भीर आरुणि की अपेक्षा अधिक चाहता था।

एक दिन वह वेद के साथ आश्रम निकटवर्ती जङ्गल की उस टेकड़ी के पास पहुँचा जहाँ आरम्भ में कपिञ्जल योगाभ्यास किया करता था।

'इस टेकड़ी मे वडा गुन भरा है।' वेद ने कहा। भुवन के मन में जिज्ञासा की तृप्ति का लोभ उठा और हँसने की इच्छा—

'कैसा? कैसा?'

'कपिञ्जल के योग के साथ साथ फल, फूल, मूल यही तो मिलते थे। अपने आप!'

'ऊहँ! तुम दे जाते थे। सुना है। इसमे क्या?'

'मैं तो थोड़े से दे जाता था। गाँव की लड़कियां आती थी जो ढेर के ढेर चढा जाती थी और वह सबके सब डकार जाता था। योगाभ्यास से वह इतना पुष्ट नही हुआ जितना उस सत्कार से।'

'लडकिया आती थी ! कौन ?'

'मैंने क्या नाम लिख रक्खे हैं—जो गिनाता फिरूँ ? हा एक का नाम याद है—अम्बिका ''दूसरी का'''भूल गया। कौन कोई शास्त्र है, जो इनके नाम रटता फिरूँ।'

'जङ्गल में गायें चराते तो मैंने भी कइयों को देखा है, परन्तु बात किसी से नही की और न किसी ने मुझे कभी फल-फूल दिये।'

'तो जा बैठो इस टेकड़ी पर और लगाओ समाधि और लो ढेरों फल, मूल, फूल इत्यादि, इत्यादि।'

'इत्यादि, इत्यादि !' भुवन हँस पड़ा। 'योगाभ्यास है तो बहुत अच्छी क्रिया', भुवन ने कहा।

'हा उसके साथ साथ बहुत-सा खाने को मिले तो', वेद उपेक्षा के साथ बोला।

भुवन कुछ सोच रहा था।

'क्या कोई साधना शुरू कर दी, भुवन ?' वेद हँसा।

'नही तो, ऐसे ही कुछ।'

'उन लड़कियों मे एक तुम्हारे अयोध्या नगर की भी है।'

'देखा है।'

'गाँव मे ? तो भिक्षाटन के लिये तुमको जाना नही पड़ता।'

'नही, जङ्गल मे, यो ही दूर से।'

'अयोध्या का नया समाचार उससे तो मिलेगा क्या, गाव मे उसके माता पिता से मिल सकता है।'

भुवन उदास हो गया। मन की बात नही कहना चाहता था।

'घूमता-फिरता प्रश्न किया,—'क्या उसके माता पिता से मिले हो ?'

'कभी नही। मैं मिलता-विलता किसी से नही। दूर से ही चुटकियां ले लेता हूँ।'

[२६]

फिर फल-संग्रह में एक दिन आरुणि और कल्पक का साथ हो गया। वे चारों जंगल में दूर निकल गये और अतिकाल हो गया। सभी भूखे थे। भुवन तो तडप-सा गया। बोला, 'फल-मूल बहुत इकट्ठे कर लिये हैं। आश्रम दूर है और भूख बहुत लग आई है।'

वेद भी यही कहना चाहता था। बोला, 'तो अपने मन का कर डालो न।'

कल्पक मुह ताकने लगा।

आरुणि ने निषेध किया,—'आश्रम को लौट चलो। वही भोजन करेंगे।'

भुवन ने प्रतिवाद किया,—'आश्रम तक पहुंचते पहुंचते मैं तो मर ही जाऊँगा', और झोली में से फल निकाल कर खाने लगा। पास खड़े कल्पक की ओर भी एक बढाया,—'तुम कुछ नही बोले तो उसका यह अर्थ नही कि तुम्हारी आँतें कुलबुला नही रही हैं।'

कल्पक ने संकोच के साथ ले लिया और कभी वेद, कभी आरुणि का मुंह ताकने लगा। जब आरुणि ने कुछ नही कहा और वेद भी खाने लगा तब उसने भी आरम्भ कर दिया।

वेद बोला, 'तुम आरुणि, संग्रह के समय खाते रहे हो इसीलिये निग्रही बन गये!'

'तुम देख रहे थे न?'

'देखता होता तो तुम खाते ही कैसे?' वेद खिलखिला पड़ा।

भुवन ने साथ दिया,—'ये तो अकेले-दुकेले में आनन्द लूटते हैं।'

'जैसे तुम। जहाँ मिलीं दो, वही रहे सो। जो कुछ मिलता है सब खा जाते हो।' आरुणि कुछ और न कह सका।

वेद ने चिढ़ाया,—'तभी तो भुवन इतना मोटा पड़ रहा है, और भाई आरुणि, तुम्हारी भारी भरकम काया इस बात का प्रमाण है कि आश्रम में तुम्हे जो कुछ मिल पाता है उसके ऊपर कही न कहीं से कुछ अपने उदरदेव की भेंट करते रहते हो। खाओ भी भूख नाते में अग्निदेव का कोई न कोई है। शान्त और प्रसन्न करते रहो उसे।'

भुवन ने जोड़ा,—'मेरा तो सिद्धान्त है अरिष्टा स्याम तन्वा सुवीराः—शरीर से निरोग और उदात्तवीर बनें। यह आरुणि का भी है। पर मेरा सिद्धान्त खुला है इनका चुप्पा।' हँस पडा।

आरुणि क्षुब्ध हो गया—

'यह समय हँसने का है! उस मन्त्र का इस प्रकार दुरुपयोग निन्दनीय है। भुवन तुम्हे लाज नही आती कि तुम्हारे ही दुर्गुण के कारण तुम्हारे पिता पद दलित कर दिये गये! आश्रम मे भी बुरे अभ्यास का त्याग न किया!!'

आरुणि वहाँ से चला गया।

भुवन ने अधखाया फल फेक दिया। वेद और कल्पक ने भी खाना बन्द कर दिया।

'मैंने मेघ सरीखे अहङ्कारी और क्रोधी ब्राह्मण के सम्बन्ध मे कुछ कहा तो बुरा नही किया। किसी का यह आरोप कि शिकार मे मैंने हाके वालो को मार डाला बिलकुल झूठ है।' भुवन का गला रुँध गया था।

वेद ने उसे सान्त्वना दी,—'मैं और कल्पक एक ऊँचे पेड़ पर चढ़े सब देख सुन रहे थे। तुमने किसी को नही मारा-वारा।'

कल्पक ने समर्थन किया, 'हमने सब देखा। तुम जब घायल और अचेत हो गये तब उस शूद्र तपस्वी ने ही तुम्हारी रक्षा की थी। फिर क्यो न तुम्हारे पिता शूद्रो की रक्षा करें?'

'कौन थे वे शूद्र तपस्वी? नाम जानते हो?' भुवन ने उत्सुकता के साथ पूछा।

कल्पक के मुंह तक नाम आया, परन्तु वेद ने रोक दिया,—'गुरुदेव ने वर्जित कर दिया है। अभी जानकर करोगे भी क्या? गुरुदेव स्वय कभी बतलायेंगे।'

भुवन को उत्सुकता छोड़नी पड़ी।

जिस दिशा में आरुणि गया था उस दिशा में देखते हुये वेद ने कहा, 'आरुणि पहले पहुँच कर गुरुदेव से कुछ इधर उधर की न जड़ देवे इसलिये अब चलो।'

वे तीनों वहां से डग बढ़ाते चले गये।

[२७]

भुवन ने धीरे धीरे अपने उन सहपाठियो का सङ्ग छोड़कर अकेले ही फल संग्रह और भ्रमण करना आरम्भ कर दिया। ध्यान जमाने के लिये वह कभी-कभी उन टेकड़ी पर जाकर बैठने लगा जहाँ कपिञ्जल ने पहले-पहले अभ्यास किया था। टेकड़ी के आसपास ऊँचे-ऊँचे घने पेड़ थे। कई फल वाले और फूल वाले तो बहुत। कुञ्जो के बीच-बीच मे खुले हुये छोटे छोटे स्थल थे जिन पर दूबा हरियाती रहती थी। जब वह चरने योग्य न रहती तब पशु पेडो के नीचे लटकने वाली लम्बी लम्बी डालियों पर मुंह डालते।

पहले ही दिन भुवन को उस टीले पर अच्छा लगा। ध्यान जमाने की चेष्टा की तो कुछ जमा। थोड़े से ही क्षण बाद वेद की बात स्मरण हो आई—इस टेकडी मे बड़ा गुन भरा है! फिर वेद की हँसी की बातों का क्रम ध्यान में उमड़ा पडा। उँह। अच्छा है, परन्तु कुछ उथला छिछला है। उसने कहा था कि—कौन? अम्बिका नाम की एक लड़की गाँव मे रहती है। दूसरी अयोध्या से आई है। यह वही है जो उस दिन मार्ग मे जब पिताजी के पीछे-पीछे आश्रम की तरफ चला जा रहा था, मिली थी। ध्यान उचट गया। थोड़ी सी ही दूरी पर गाय के रँभाने का शब्द सुनाई पड़ा। आँख खुल गई। गायें सामने नही आई थी। किसी कुञ्ज के पीछे चर रही थी। शायद इनके साथ वह भी हो। कपिञ्जल को फल दे जाती थी। कपिञ्जल योगी हो गया! गुरु की कृपा। कभी-मिला तो पूछूंगा कि उस दिन जब अयोध्या से भागे तब उसके आगे कैसी क्या क्या बीती। नील ने उसको बहुत सताया था। उसकी लड़की हिमानी कैसी वज्र है! अरे, कहाँ से कहा पहुँच गया! ध्यान करने के लिये उसने फिर आखें बन्द की। श्वास प्रश्वास का नियमन किया कि कानो मे, गायो के हांकने संभालने का 'टिक टिक चिकचिक' शब्द पड़ा। आखें अपने आप खुल गई। थोड़ी सी गायें सामने के छोटे से मैदान में

चर रही थीं। जिसके मुंह से 'टिकटिक चिकचिक' निकली होगी वह नही दिखलाई पड़ा। आंखें टटोलने में लग गईं। एक वृक्ष के पीछे लाल रंग की ओढनी का छोटा सा छोर दिखलाई पडा। शायद कोई गाय या बछड़ा-बछिया उस रङ्ग की हो। आंखें और गड़ाईं वायु के झकोरे से लाल रङ्ग का पल्ला इधर उधर डुला। यह तो कोई लडकी है! क्या कर रही है? इस तरह क्यों आड़ पकड़े खड़ी है? छाया ले रही होगी। धूप में कहां तक घूमें? वह होगी जिसका नाम वेद ने अम्बिका बतलाया था। अथवा वह—दूसरी हो। या दोनों आपस मे कुछ बात कर रही हो। उसका नाम न मालूम हुआ। कभी मिले तो पूछूँ? अरे यह तो अनुचित होगा। अनुचित क्यों? नाम पूछने में बुराई ही क्या? हमारे नगर की रहने वाली है। बड़ी अच्छी और भोली।

पेड़ की ओट से देखते देखते गौरी निकली। भुवन ने आखें झुकाली परन्तु बन्द नही की। कनखियों देख रहा था। गौरी ने सामने की गाय पर आख पसारी। फिर भुवन की ओर देखकर दूसरी ओर मुंह कर लिया। एक क्षण उपरान्त धीरे धीरे टेकड़ी के पास आई। वहाँ उसकी एक गाय आ गई थी। पीठ पर हाथ फेरते-फेरते उसने भुवन पर टकटकी लगाई। भुवन उसे नीचे नीचे से देखता रहा।

गौरी के अञ्चल मे कुछ फल थे। उसने खोले और फिर बाध लिये। गाय एक ओर चलने लगी और वह उसके पीछे पीछे। फिर वह यकायक मुड़ी और टेकड़ी पर चढ़ने लगी। भुवन ने आंखें मीच ली। उसके कान आंख का काम करने लगे।

गौरी ने आकर अञ्चल मे से फल निकाले और उसके सामने रख दिये। भुवन ने आखें खोली। गौरी उसकी ओर देख रही थी। उसने तुरन्त बरौनी नीची करली और चलने को हुई।

'तुम्हारा नाम क्या है?' भुवन ने सहसा प्रश्न किया।

'गौरी', उसने धीरे से उत्तर दिया और अपने पशुओ की ओर देखने लगी। ठिठक गई थी।

'उस दिन जब मैं पिता जी के साथ आश्रम की ओर जा रहा था तब तुम्हें पहली बार देखा था। तुमने मुझे अयोध्या मे कभी देखा?'

'हाँ।' 'इतने बहुत से फल मेरे सामने रख दिये क्या करूँगा?'

'खा लेना।'

'थोड़े से तुम लेती जाओ।'

'ओर ढूँढ लूगी।'

भुवन की समझ मे नही आ रहा था कि अब और क्या कहे तो झिझक कर बोला, 'बैठ जाओ, थक गई होगी।'

'नही। कोई आता होगा'''अरे! मेरी गायें भटक गई हैं!!' और गौरी टीले पर से जल्दी उतर कर निकटवर्ती खुले स्थान में जा खडी हुई। वहाँ से गायें दूर थी, पर वह 'टिकटिक चिकचिक' करने लगी। फिर चली गई। उसने लौट कर नही देखा।

× × ×

भुवन इस स्थान पर बहुधा आने लगा और इसी प्रकार बैठने लगा। कभी कभी गौरी अम्बिका के साथ आई तो अपनी सखी के साथ चुहल करती रही, हँसती रही, परन्तु टेकड़ी पर नही आई, फल लिये थी पर उसके सामने फल नही रक्खे।

एक दिन अम्बिका ने, जब वे दोनों भुवन से कुछ दूर थी, गौरी से कहा, 'थोड़े से फल दे आओ न। भूखे होगे।'

'तुम्ही न दे आओ अपने।'

'खाऊँ या दूसरो को खिलाऊँ?'

'मेरा भी यही हाल है।'

'ओ हो हो हो! जा तुझे मेरी सौगन्ध है।'

'अरे! तुम तो वैसी ही बेबस करती हो।'

'हूँ! अच्छा!! जा यहाँ से। वे तो बिचारे ध्यान मग्न हैं। उस शूद्र योगी को तो बहुत फल चढ़ाती थी! इन्होने क्या बिगाड़ा है?'

गौरी भौंहें तान कर चली गई। टेकड़ी पर जल्दी जल्दी चढ़ी भुवन के सामने फल रक्खे और चलने को हुई।

भुवन ने धीरे से कहा, 'कई दिन बाद आईं गौरी, और ऐसी जल्दी चल दी। ठहरो न, कुछ बात करें।'

'नही, अम्बिका वहाँ खड़ी है।' कहकर गौरी ने उसकी ओर देखा और चली गई।

'अरी इतनी आतुरता से चली आई!'—अम्बिका बोली,—'एक बात तो कर लेती अपने राजकुमार से!'

'अरे! वैसे ही बकती है!!' पर गौरी के कण्ठ मे क्रोध नही था।

× × ×

एक दिन गौरी अकेली-आई। टेकड़ी पर भुवन भी अकेला बैठा था। वैसे ही ध्यानमग्न। देख तो रहा ही था, गौरी ने जैसे ही फल सामने रक्खे उसने आँखें खोल दी। अबकी बार फलों के साथ थोड़े से जङ्गली फूल थे। गौरी मुस्करा रही थी।

'अरे! आज बहुत दिनो बाद अचानक दिखलाई पड़ी गौरी! मैं ध्यान मे था।'

'ध्यान मे नही थे। मैंने तो देख लिया। इधर-उधर झाक रहे थे।'

भुवन हँस पड़ा—जैसे उसकी आत्मा बोली हो।

'तो तुम इतने दिन क्यों नही आई?' उसी हँसी मे भुवन ने पूछा।

'मैं तो लगभग नित्य ही आई। तुम्हीं नही दिखलाई पड़े। कभी दिखे भी तो किसी न किसी के साथ।'

'तुम भी तो अम्बिका के साथ आती रहीं—पर यह सच है कि मैं किसी-किसी दिन यहाँ नही आ पाया।'

'अब जाऊँ—'एक गाय उसकी ओर देख रही थी।

'जी चाहता है कि·······'आगे भुवन न बोल सका।

'कोई आ रहा है', गौरी चौकी और शीघ्रता के साथ चल दी। उसने अपने पशु हांके और एक कुञ्ज में विलीन हो गई।

थोड़े ही समय पीछे वहा वेद कुछ फल लिये आ गया। उसके आने के पहले ही भुवन ने सिटपिटाकर ध्यान की मुद्रा बनाई और आँखें बन्द कर ली।

भुवन के सामने फल और फूल देखकर वेद ने सिर हिलाया और बोला, 'अरे भाई योगी जी, समाधि खोलो! यह अकिञ्चन सामने खड़ा है!!'

भुवन ने आँखें खोली। लाल थी। परन्तु वह स्थिर था।

'वेद भाई, आज तुम चले गये थे गाँव मे तो मैं यहाँ निकल पड़ा और ध्यान में रम गया।' भुवन ने कहा।

'और ऐसी सिद्धि प्राप्त की कि फलो का ढेर सामने आ लगा और कही से फूल भी बरस पड़े!'

भुवन भीतर भीतर सकपकाया परन्तु उसने बात बनाई,—'कोई रख गया होगा। मैं तो ध्यानमग्न था। तुम क्या करने गये थे गाँव मे?'

'इतनी जल्दी भूल गये! गुरुदेव ने कल सन्ध्या के उपरान्त कहा था न कि उस खेत की जुताई के लिये कही से बैलों का प्रबन्ध कर लेना तो वहाँ चला गया था।'

'फिर?'

'फिर क्या, गाँव वाले इतने पाजी है, इतने दुष्ट कि किसी ने कोई बहाना कर दिया किसी ने कोई। अब कल्पक को लेकर जाता हूँ। एक आध की पीठ ठोकूगा और इधर उधर कही से बैल पकड़ लाऊँगा तब वह खेत जुत पायगा। चलो न मेरे साथ। दो से तीन भले।'

भुवन ने नाही कर दी। वेद मन ही मन कुढ़ता हुआ चला गया।

[२८]

सन्ध्या के उपरान्त धौम्य ने प्रवचन के लिये कुछ शिष्यो को अपनी कुटी के भीतर बुलाया। एक कोने में तेल का छोटा सा दीपक टिमटिमा रहा था। उसमें धौम्य जगमगा रहे थे।

शिष्यों में भुवन, वेद और कल्पक तो थे आरुणि नही था।

धौम्य ने पूछा, 'आरुणि कहां है ?'

वेद बोला, 'सो गया होगा गुरुदेव।'

कल्पक ने हँसी को दबा कर कहा, 'आश्रम के खेत की चिडियाँ उड़ाते उडाते ही सो जाता है वह तो।'

भुवन क्यो चूकता ?—'जब आप विद्याओं के रहस्य समझाते हैं तब वह जमुहाई अँगड़ाई लेने लगता है। हम लोगो की भाति तल्लीन नही होता। बाते भी विचित्र सी करता है। एक रात कहता था 'तारिकायें स्वर्ग का साहित्य है !' एक दिन बोला, 'सृष्टि परमात्मा का आत्म चरित्र है !!' सङ्गीत प्रकृति की वन्दना है' !!! और, और, भाषा व्याकरण का गणित है !!!! अटपटी बातें करता है।'

'हुँ, कहकर धौम्य थोडी देर चुप रहे फिर वेद से प्रश्न किया, 'वह जो एक खेत जोतने के लिये कहा था, उसका क्या हुआ ?'

'गाव में बैल माँगने गया था तो किसी ने नही दिये। जिससे मागे उसी ने कुछ न कुछ वहाना कर दिया फिर मैं कल्पक को साथ लेकर गया। चाहता था कि वहाना वनाने वालो को पीट डालूँ, पर बीच बिचाव करने वाले आ गये इसलिये रह गया। कल देखूंगा।'

'शाक भाजी कैसे होगी ? धौम्य ने कहा, 'हम सबने अपने हाथों परिश्रम करके कुआं खोदकर पानी तो निकाल लिया, पर कठोर भूमि नम्र किये बिना काम नही चलेगा।'

भुवन ने उत्साह दिखलाया,—'कल मैं भी इनके साथ चला जाऊँगा फिर देखें बैल कैसे नही मिलते।'

धौम्य बोले, 'इस समस्या के सुलझाने की बात पीछे करूँगा, पहले प्रश्न और परिप्रश्न। बतलाओ वर्णाश्रम क्या है ?'

वेद ने अविलम्ब उत्तर दिया,—'चार वर्ण अर्थात् जातिया और चार आश्रम।'

अन्य शिष्य चुप रहे।

धौम्य ने व्यङ्ग के स्वर मे कहा, 'बहुत समझे ! अब ध्यान लगाकर सुनो। श्रम सबके ऊपर है सबका राजा। उसका विभाजन वर्ण-कल्पना है। विद्याओ का आजीवन संग्रह, मनन और वितरण करने वाला, ब्राह्मण, देश की रक्षा और समृद्धि का सहायक क्षत्रिय, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और उद्योगो का करने बढाने वाला वैश्य—'

वेद ने परिश्रम किया—'और शूद्र कौन गुरुदेव ?'

'चोर, डाकू, अधर्मी, अत्याचारी दस्यु ये शूद्र है। श्रम करने वाला शूद्र नही है। जन्म से कोई भी शूद्र नही। स्मृति और श्रुति की मेरी व्याख्या यही है और मैं इसी को चलाऊँगा। अहंकार, द्वेष, भय, परिग्रह और वासनाओ मे लिप्त लोग भी दस्यु और शूद्र कहलायेंगे। मानव के सबसे बड़े शत्रु अहंकार और स्वार्थ हैं। इनको वश मे करने के लिये आश्रमो का सृजन हुआ है ! अहंकारी, द्वेषी और क्रोधी नीच है—'

भुवन बोला, 'तो गुरुदेव, आचार्य मेघ और नीलपर्णि नीच हैं।'

धौम्य ने हँसकर कहा, 'इसका उत्तर फिर कभी पाओगे।'

उसी समय आरुणि आकर बैठ गया।

धौम्य ने पूछा, 'तुम कहा थे आरुणि ?'

आरुणि ने बतलाया,—'एक का बैल गड्ढे मे गिर गया था। तो उसको उठाने और गड्ढे से बाहर करने के लिये चला गया था। उसी में इतना विलम्ब हो गया गुरुदेव।'

'एक तो क्या पाँच प्रवचनो के सुनने का श्रेय तुमको अपने इस एक काम से मिल गया। एक दिन तुम अपने पञ्चाल जनपद को चमका दोगे', धौम्य ने मुस्कराकर कहा।

भुवन ने अपने भीतर लघुता अनुभव की।

धौम्य ने थोड़े से प्रश्न और किये, फिर अन्त में बोले, 'भुदन तुम गाँव में जाने की अनुमति चाहते थे ?'

'जी'

'मैं अनुमति देता हूँ, परन्तु केवल भिक्षा माँगने के लिये। तुम वन से फल मूल न लाकर केवल समिधा ईंधन इत्यादि लाया करो। क्षत्रिय या राजपुत्र के लिये आश्रम मे भी रहते हुये भिक्षा मागने का निषेध है, परन्तु मैं तुम्हारे लिये इसका उल्लंघन करता हूँ। बिना इसके तुम्हारे भीतर भरा हुआ अहङ्कार दूर न हो सकेगा। और देखो शरीर से और उदात्त वीर बनने के लिये पेट को ठास ठांस कर भरने की आवश्यकता नही है। जो कुछ भी भिक्षा में मिले सबका सब यही लाया करो। समझे ?'

'जो आज्ञा गुरुदेव।'

वेद और कल्पक को धौम्य ने आदेश दिया,—'तुम्हारी हिंसा और अहमन्यता का उपचार यह है कि किसी के भी बैल न मांगकर खेत को स्वयं जोतो, अपने ही कंधो पर जुयें रखकर खेत जोतो। समझ गये ?'

दोनों के मुंह से दबे स्वर मे एक साथ निकला, 'जो आज्ञा।'

आरुणि पिघल उठा,—'मैं इनकी सहायता कर दूं, गुरुदेव ?'

'नही। तुम गाँव की वीथि और गली अपने अवकाश के समय में स्वच्छ करो। भुवन यथावकाश तुम्हारी सहायता करेगा। गाँव के रोगियों और पीड़ितों की भी, जब समय मिले, सेवा करो। वेद और कल्पक एक बार नही बार बार खेत की जुताई का काम करे। जब तक इनके भीतर से अहङ्कार और हिंसा ने पलायन नही किया तब तक बराबर इनके कंधों पर बैलों का जुआं रहेगा। श्रम का महत्व भी तभी समझ में आवेगा। दरिद्रता और विपत्ति परमात्मा की छैनी और हथौड़ी है।

जिनसे वह अपनी सृष्टि के प्रभाशाली व्यक्तियों की बुद्धि और विवेक की प्रतिभा को छील-छीलकर कल्याणकारी बनाता है।'

वेद और कल्पक ने गुरू की आज्ञा पालने के लिये अपने अपने निश्चय को कसा। भुवन ने सोचा सस्ते छूटे। गाँव का जाना भला रहा। वहां कुछ नही खायेंगे तो यही कौन सी कमी रहेगी ? और······ और······

[२६]

प्रातःकाल के नित्यकर्म और अध्ययन से निबट कर भुवन दोपहरी के लगभग भिक्षा मागने के लिये उस गाँव मे जाया करता था जहा गौरी रहने लगी थी। गाव का नाम धौम्यखेड़ा पड़ गया था। नैमिषारण्य मे और भी अनेक गाव थे, पर वे दूर दूर वसे थे। धौम्य के आश्रम के निकट यही था। भिक्षा माग लाने के बाद फिर उसे समिधा और ईंधन वीनने के लिये जङ्गल मे जाना पडता था। गौरी प्रातःकाल के उपरात पशुओ को चराने के लिये कभी वन के इस भाग मे और कभी उसमे निकल जाती। दोपहरी के बाद वह रोटी खाने के लिये घर लौट आती थी। ढोरो को कभी अम्बिका के और कभी किसी और स्त्री के हवाले कर आती थी।

भुवन नित्य उमङ्ग लेकर कभी गाव और कभी जङ्गल मे जाता, परन्तु गौरी उसको नही मिली।

भिक्षाटन के लिये एक दिन वह वेद और कल्पक के पास होकर निकला। सावन भादो का महीना था। कही पानी बरसा हो या न बरसा हो नैमिषारण्य मे गत वर्षो की भाति थोड़ा बहुत तो वरसा ही था। इस समय नभ मे बादल के टुकड़े इधर-उधर भटक रहे थे। दोपहर के सूर्य की किरणें मन्द मन्द पवन के सोंधेपन को उबाल सा रही थी।

वेद और कल्पक कन्धो पर जुआ रक्खे, एक एक हाथ मे साधे एक दूसरे को कड़खे से सुना रहे थे—

वेद कह रहा था,—'खाते हो पत्तल भर भर और काम के समय तनिक से मे हाफ हांफ जाते हो! एक मुझे देखो कि छाती फुला फुलाकर हल खीचता हूँ।'

'देख लिया', कल्पक टर्रा रहा था,—'बातो के ही हो। मेरे कन्धे सूज गये। उनसे रक्त तक झरा तो भी मैंने किसी के सामने रोना नही रोया। तुम इधर मेरे बल से तो लाभ उठाते हो और दिखलाते फिरते हो अपनी थोड़ी सी सूजन चाहे जिसको! ऊपर से ऐंठते हो।

'जी चाहता है कि—'

'क्या चाहता है?'

'एक धप्प ढील दूँ तुम्हारे सिर पर।'

'मेरे क्या हाथ-पैर नही हैं?'

'क्या बतलाऊँ गुरुदेव की आज्ञा है कि उतनी जुताई हो जाने तक कन्धे से जुआँ न उतारना नही तो—नही तो—'

'नही तो, नही तो बड़े आये कही के। खीचो, चलो चुपचाप।'

दोनो पसीने मे तर थे। दोनो के कन्धे सूजे हुये थे।

भुवन इनकी बातें सुनकर हँस पड़ा। वेद और कल्पक का क्रोध एक धारा मे बहने लगा।

'हँस लो बेटा भुवन, हँस लो',—वेद चिड़चिडाया,—'एक दिन आयगा जब तुम्हारी हड्डी-पसली का चूरा होगा।'

जब भुवन उन दोनो के निकट आ गया और उनके सूजे हुये कन्धो मे रक्त की झलझलाहट देखी तब पिघल गया—

'भाई क्षमा करना, इतना हँसना तुम्ही से तो सीखा है।'

वे दोनो ठण्डे नही पड़े।

वेद एक आँख की भोह ऊँची करके गाँव की दिशा में सिर हिलाते हुये बोला, 'बच्चू, हमारे ये दिन न रहेगे। समय आने दो तब तुम्हारी सारी कलई.... '

'ये न खोलेगा तो मैं खोलूँगा',—कल्पक ने वाक्य समाप्त किया।

'मैंने ऐसा क्या किया है?' भुवन के ढङ्ग मे घबराहट थी।

'हुं! कोई न कहे तो भी सब उजागर होकर रहेगा, क्योकि गुरुदेव की आँख से कुछ नही बचता।'

'बढो कल्पक। अभी बहुत काम पडा है।'

भुवन की पूरी उपेक्षा करके वे दोनों सूजे हुये कन्धों का जोर लगा कर सूखे हुये होठो सास भरते हुये जुताई करने लगे।

[३१]

नैमिषारण्य में ग्रीष्म ऋतु झिझकती-झिझकती हुई सी आती थी और मुंह चुराकर चली जाती थी। जाने को ही थी जब एक दिन भुवन दोपहरी के उपरान्त जङ्गल मे समिधा और ईंधन इकट्ठा करने के लिये निकल पड़ा। बीन-बीनकर एक ठौर थोडी-सी लकड़ी जोड़ पाई थी कि पीछे से किसी ने कहा, 'कुछ मै भी ले आई हूँ।'

लौटकर भुवन ने देखा तो गौरी खड़ी है। गुरु का आतङ्क चित्र आँखों के सामने नही आया। गौरी के भोले चेहरे पर हलकी मुस्कान बिखर रही थी।

'गौरी! अरे!! महीनो बरसो मे आज दिखलाई पडी!!!'

'मैं या तुम?'

'न कभी गाँव में मिली और न जङ्गल मे!'

'और न तुम कभी उस टेकड़ी पर। वहाँ फल तो नही, कभी कभी फूल रख आती थी। कभी नही मिले।'

'कभी गया भी तो ऐसे समय जब फूल मुर्झा चुके होगे। तुम भूली नही गौरी?'

'कौनसी बात? ऐसा क्या था जो मैं भूल जाती? क्यो?'... आगे गौरी कुछ न कह सकी।

वह अब कुछ सयानी हो गई थी।

'तुमने यह लड़की क्यों इकट्ठी की? गायों का चराना क्या कम था? तुम ठहरो। मैं बीने लाता हूं तुम्हारे लिये ईंधन। फिर आश्रम के लिये इकट्ठा कर लूंगा।'

'वाह! वाह!! यह तो मैं तुम्हारे लिये ही इकट्ठा कर लाई हूँ।'

'अरे! कब से कर रही हो यह?'

'कभी कभी—नही कभी से भी नही। तुम्हें दूर से देखा तो सोचा तुम क्यो इतना पसीना बहाओ। वही मिल गई ये लकड़िया और उठा लाई।'

भुवन हँस पड़ा। ऐसी हँसी उसने बहुत समय के बाद पाई थी।

'ये थोडो-सी है ! तो बहुत कितनी होती होगी गौरी ?'

'मैं कौन गिनने गई। इनको तुम्हारे वाले ढेर में रक्खे देती हूँ और थोड़ी-सी और बीने लाती हूँ।'

गौरी ने अपनी लकड़ियो को अविलम्ब भुवन के छोटे से ढेर मे मिला दिया।

'गौरी, एक बात सुनो।'

'कहो।'

'तुम थोडी देर सुस्ता लो। मैं बीनता हूं। उनमें से थोडी-सी इस ढेर मे डाल दूगा, बची तुम लेती जाना।'

'वाह ! मैं जब घर जाऊँगी तो मार्ग मे से इकट्ठी करती जाऊँगी। तुम बैठ जाओ। भोजन नही किया है। भूखे होगे। मेरे पास कुछ फल हैं। इन्हे बैठे-बैठे खाओ।'

'नहीं गौरी, मुझे गुरुदेव ने वर्जित कर दिया है। फल-वल जो कुछ भी मिलें सीधे आश्रम मे लाओ, और वन से तो फल लाओ ही नही, यह आज्ञा है। आज्ञा का उल्लङ्घन नही किया जा सकता।'

गौरी के चेहरे पर उदासी आ गई। जैसे छिटकी चाँदनी पर झीनी बदली। कुछ सोचने लगी।

भुवन ने कहा, 'तुम छात्रीशाला या गुरुकुल मे होती तो समझ लेती कि गुरु की आज्ञा क्या होती है। तुमने कही कभी कुछ पढा है ?'

'हाँ थोड़ा-सा घर पर। और रात मे यहाँ भी पढती हूं। लिखना भी सीखा है। पर तुम तो वेद-शास्त्र पढते हो।'

भुवन ने उस भोली-भाली सुन्दर लडकी को बहुत बड़ा और उसके सामने अपने को बहुत रीना-झीना और छोटा अवगत किया। फिर तुरन्त भीतर के अहङ्कार ने उसे धक्का दिया।

भुवन नीचा सिर करके कहता हुआ चला गया,—'मैंने कोई पाप नहीं किया।'

गुरू की सफेद जटा और दाढी, पैंनी आंख, सीधी दृढ काया आंखे नीची किये हुये भी बार-बार सामने आकर खड़ी होने लगी।

'मैंने कोई पाप नही किया!' उसके कानों में गूंज रहा था। जैसे उसके शब्द न हों किसी दूसरे के हों। मैंने गौरी से ऐसा कहा ही क्या है? मिली भी महीनों से नही है। जब गुरुकुल छोड़ूंगा तब उसके साथ वैदिक रीति से विवाह करूँगा। माता-पिता का आशीर्वाद मिलेगा और गुरु का वरदान भी। गुरु की फिर वही पैनी आंख! और उसके ऊपर तनी हुई वही भ्रकुटि!!

जब भुवन गाँव मे पहुँचा तो आरुणि को एक गली का नाबदान स्वच्छ करते पाया। कुछ गाँव वाले भी उसके साथ जुट रहे थे। भुवन के मन मे आरुणि के प्रति श्रद्धा उमडी।

बोला, 'आरुणि भाई, मुझे भी इसमे अपने साथ लगाओ।'

'नही भाई',—आरुणि ने स्नेह के साथ कहा,—'तुम्हारे लिये गुरुदेव की जो आज्ञा है वह करो। तुम्हारे हाथ मैले कुचैले हो जायेंगे। फिर मधुकरी के संग्रह में देर लग जायगी। अपना काम देखो।'

आरुणि के मोटे तगड़े पंजे उसकी मांसल कुहनियाँ तक काले धूमरे कीचड़ में लतपत थे। तभी गुरुदेव का इतना प्यार इसने पाया है, भुवन के मन मे उठा और वह आगे बढ़ गया। अब गुरु के उस प्रतिविम्ब में वह आतङ्क नहीं दिखलाई पड़ रहा था। होठों पर मुस्कान थी। आरुणि के प्रति उसकी श्रद्धा बढी। मैं आरुणि जैसा ही बनूंगा उसके भीतर प्रेरणा ने लहर मारी। उस दिन गौरी को देखने के लिये मन में उमङ्ग नही जागी।

[३०]

इस साल भी अयोध्या मे मेह के पानी की बूंदे तक दुर्लभ रहीं। बड़े लोगो पर अकालो का उतना प्रभाव नहीं था। राजसत्ता उन्ही के छोटे से वर्ग के हाथो में थी। शासन कठोर था। अराजकता कम हो गई थी। उस छोटे से शासक-वर्ग को अपनी शासन-निष्ठा का यही रूप बहुत अधिक दिखलाई पड़ता था। सत्ता सिमिट-सिमिटकर इसी छोटे से मेघ, दीर्घबाहु, नील इत्यादि के—वर्ग के हाथों मे केन्द्रित होती जा रही थी। राजा जब था, था तो एक, परन्तु सत्ता गाँव-गाँव और नगर-नगर में बँटी बिखरी थी। जनता को इधर अकाल अखर रहे थे' उधर यह एक छोटे से वर्ग का राज्य। अनेक व्यवसायी और महाजन उस परिस्थिति मे भी समृद्धि का सुख अनुभव कर रहे थे। यदि राजा फिर से सिंहासनासीन हो गया,—और वह घड़ी 'अच्छे दिन' आने पर ही आयगी, तो हमारा क्या बिगड़ेगा ? साधारणजन सोचता था कि राजा फिर गद्दी पर आया नही कि इन स्वार्थियो की तोद छँटे बिना रहने की नहीं। और अच्छे दिन कभी न कभी लौटेंगे।

रोमक ने भ्रमण करने का संङ्कल्प स्थगित कर दिया। क्या करूँ ? किससे क्या कहूँ ? क्या मुंह दिखलाऊँ ? सोचते सोचते वह और भी अनमना और विक्षिप्त-सा रहने लगा। ममता उसे बाहर घुमाना चाहती थी, परन्तु उसके उन प्रश्नो का मनचाहा उत्तर न दे पाकर घर मे ही ढाढस देती रहती थी।

शरद आई और गई। जाड़े आये और चले गये। बसन्त मुर्झाकर विलीन हो गई और ग्रीष्म ने अपने लम्बे-चौड़े पर फैलाये। क्या अब की बार भी पानी न बरसेगा ?

[३१]

नैमिषारण्य में ग्रीष्म ऋतु झिझकती-झिझकती हुई सी आती थी और मुह चुराकर चली जाती थी। जाने को ही थी जब एक दिन भुवन दोपहरी के उपरान्त जङ्गल मे समिधा और ईंधन इक्ट्ठा करने के लिये निकल पड़ा। बीन-बीनकर एक ठौर थोडी-सी लकड़ी जोड़ पाई थी कि पीछे से किसी ने कहा, 'कुछ मैं भी ले आई हूँ।'

लौटकर भुवन ने देखा तो गौरी खडी है। गुरु का आतङ्क चित्र आँखों के सामने नहीं आया। गौरी के भोले चेहरे पर हलकी मुस्कान बिखर रही थी।

'गौरी! अरे!! महीनों बरसो मे आज दिखलाई पडी!!!'

'मैं या तुम?'

'न कभी गाँव मे मिली और न जङ्गल मे!'

'और न तुम कभी उस टेकड़ी पर। वहाँ फल तो नही, कभी कभी फूल रख आती थी। कभी नही मिले।'

''कभी गया भी तो ऐसे समय जब फूल मुर्झा चुके होगे। तुम भूली नही गौरी?'

'कौनसी बात? ऐसा क्या था जो मैं भूल जाती? क्यो?'... आगे गौरी कुछ न कह सकी।

वह अब कुछ सयानी हो गई थी।

'तुमने यह लकड़ी क्यों इकट्ठी की? गायो का चराना क्या कम था? तुम ठहरो। मैं बीने लाता हूं तुम्हारे लिये ईंधन। फिर आश्रम के लिये इकट्ठा कर लूंगा।'

'वाह! वाह!! यह तो मैं तुम्हारे लिये ही इकट्ठा कर लाई हूँ।'

''अरे! कब से कर रही हो यह?'

'कभी कभी—नही कभी से भी नही। तुम्हें दूर से देखा तो सोचा तुम क्यो इतना पसीना बहाओ। वही मिल गईं ये लकड़िया और उठा लाई।'

भुवन हँस पड़ा। ऐसी हँसी उसने बहुत समय के बाद पाई थी।

'ये थोडो-सी हैं! तो बहुत कितनी होती होगी गौरी?'

'मैं कौन गिनने गई। इनको तुम्हारे वाले ढेर में रक्खे देती हूँ और थोडी-सी और बीने लाती हूँ।'

गौरी ने अपनी लकड़ियो को अविलम्ब भुवन के छोटे से ढेर मे मिला दिया।

'गौरी, एक बात सुनो।'

'कहो।'

'तुम थोडी देर सुस्ता लो। मैं बीनता हूं। उनमें से थोड़ी-सी इस ढेर मे डाल दूगा, बची तुम लेती जाना।'

'वाह! मैं जब घर जाऊँगी तो मार्ग में से इकट्ठी करती जाऊँगी। तुम बैठ जाओ। भोजन नही किया है। भूखे होगे। मेरे पास कुछ फल है। इन्हे बैठे-बैठे खाओ।'

'नही गौरी, मुझे गुरुदेव ने वर्जित कर दिया है। फल-वल जो कुछ भी मिलें सीधे आश्रम मे लाओ, और वन से तो फल लाओ ही नही, यह आज्ञा है। आज्ञा का उल्लङ्घन नही किया जा सकता।'

गौरी के चेहरे पर उदासी आ गई। जैसे छिटकी चाँदनी पर झीनी बदली। कुछ सोचने लगी।

भुवन ने कहा, 'तुम छात्रीशाला या गुरुकुल मे होती तो समझ लेती कि गुरु की आज्ञा क्या होती है। तुमने कही कभी कुछ पढा है?'

'हाँ थोडा-सा घर पर। और रात मे यहाँ भी पढती हूं। लिखना भी सीखा है। पर तुम तो वेद-शास्त्र पढते हो।'

भुवन ने उस भोली-भाली सुन्दर लडकी को बहुत बड़ा और उसके सामने अपने को बहुत रीना-झीना और छोटा अवगत किया। फिर तुरन्त भीतर के अहङ्कार ने उसे धक्का दिया।

'हाँ···आँ · पढ़ता तो हूं····· पढना ही चाहिये······तुम और भी पढ़ना। फिर मैं·· अर्थात् तुम बहुत पढकर और भी वहुत वड़ी हो जाओगी।' भुवन का अहङ्कार उसे धक्का देकर पीछे हट गया।

गौरी नहीं समझी—

'जितना वन सकेगा पढती रहूँगी ·····फिर ···· फिर जव अयोध्या लौटूंगी·· तब···' गौरी आगे कुछ न कह सकी। अपनी भटकती हुई गायों पर आँखें भटकाने लगी।

'कव तक लौटोगी गौरी अयोध्या ?'

'जब माता पिता यहा से आयेंगे। मैं क्या वतला सकती हूं।'

'मैं चार वर्ष पीछे अयोध्या जा सकूँगा। तब तक ·····' भुवन के गले तक कुछ और आया, पर आगे न वढ़ सका। गौरी ने मुह फेर लिया था।

'गायो को देख लू···' गौरी चलने को हुई।

'और वे लकड़ियां ?' भुवन ने कहा।

उसने उत्तर दिया,—'बीन कर अभी लाती हूं।' लौटकर मुस्कराई और चलने लगी।

'ठहरो गौरी, तुम्हें यदि मेरे लिये लकड़ी इकट्ठी करने का हठ है तो मुझे हठ है कि मैं तब तक तुम्हारी गायो को सम्भालूं।'

'वाह ! कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?'

'कहेगा कि मैं तो वड़ा निकम्मा हूँ और तुममें वहुत वहुत पुरुषार्थ है।'

गौरी हँस पड़ी। ऐसी हँसी उसने कभी नही देखी थी। उसने कही पढ़ा था कि पवित्र गङ्गा सफेद हिम से ढँके हुये हिमालय से सूर्य की किरणों के साथ खेलती हुई निकली है तो उसे स्मरण हो आया कि उस गङ्गा का यही रूप होगा।

भुवन उसकी ओर बढा। गौरी ने बड़ी तीव्रता के साथ अपनी डगें बढाईं। 'वाह ! वही रहो !!' गौरी कहती हुई चली गई और निषेध का हाथ भी झुलाती गई।

'तुम गङ्गा की भाति निर्मल और पवित्र हो गौरी', कहकर भुवन यकायक रुक गया—गुरुदेव का वह आतङ्क—रूप सामने आ खड़ा हुआ था।

गौरी ने थोडी दूर जाकर गायों को इकट्ठा किया—लकड़ी भी बीनती रही। भुवन भी बीनता रहा। सूखी लकड़ी का मिलना सहज नही था। वह दूर निकल गया। जब गौरी थोड़ी सी लकड़ी उस स्थान पर लाई तब भुवन नही मिला। थोड़ी देर ठहरी रही। कुबेला होती देखकर उसने लाई हुई लकड़ी का छोटा सा ढेर पहले ढेर की बगल में रख दिया और गायों को लेकर अम्बिका के पास चली गई, जो उसी की ओर आ रही थी।

[२३]

नैमिषारण्य में फिर पानी बरसा और कुछ न कुछ बरसता रहा। अयोध्या के खुले हुये क्षेत्रों मे फिर भी नही बरसा। वृक्ष लगाना और कुआँ खोदना भी एक प्रकार का यज्ञ कहा जाता था। फिर भी लोग यह नहीं कह रहे थे कि नैमिषारण्य की सघन और विस्तृत कुन्जें मेघ को मोह कर कुछ न कुछ बरसात अपने यहा खीच लाती हैं।

पानी बरसे या न बरसे नीलपरिण का व्यवसाय फिर उठ खड़ा हुआ था। उसकी समृद्धि का यह प्रमाण था कि उसके भवन मे कभी मेघ के आश्रित ब्राह्मणों को भोज, कभी दीर्घबाहु के वर्ग के महाशालों को मिलता रहता था।

परन्तु अब दासों से काम नही चल रहा था, क्योकि वे भाग गये थे। नील और हिमानी ने वेतन भोगी नौकर रक्खे और अपना काम बढ़ाया। पहले की अपेक्षा उनके साथ बर्ताव भी कम कठोर कर दिया।

एक रात एक नौकर को बड़े से बिच्छू ने काट खाया। त्राहि त्राहि मच गई। कुण्डु-प्याज—का रस इसकी औषधि समझी जाती थी। नील के कोठे मे प्रचुर मात्रा मे था ही। हिमानी ने एक नौकरानी को बुलाकर आदेश दिया,—'जाओ उस विचारे कै पीड़ा-स्थल पर प्याज मल दो।'

'जी हाँ' कहकर नौकरानी आकुलता के साथ चली गई। हिमानी उस समय बिस्तरो में पडी हुई थी। पर्याप्त मात्रा में प्रकाश देने वाला दीपक कमरे मे जल रहा था।

हिमानी बिस्तर छोड़कर यकायक खड़ी हो गई। फर्श देखा, कमरे में तो कोई बिच्छू नही है। फिर वह दीपक हाथ में लिये फूक फूककर पैर रखती हुई फिर भी कुछ आतुरता के साथ उस दिशा मे गई जहाँ से नौकरानी के आने की आहट मिल रही थी। नौकरानी सामने आई तो देखा कि प्याज के दो बड़े बड़े गट्टे हाथ मे लिये हैं। जब हिमानी को क्रोध आता था तब उसकी नाक का दाँया नथना ऊपर की ओर सिकुड़

जाता था। लगता था जैसे दोनों नथने सिकुड़ गये हों। तब बड़ी सुन्दर रेखाओं वाली हिमानी बहुत भयानक और कुरूप दिखने लगती थी। नौकरानी ने उस रूप को देखा और ठमक गई।

हिमानी जब चुनौती देती हुई या क्रोध के स्वर मे बोलती थी तब उसके गले की खनक बहुत बढ़ जाती थी। उसे बिना देखे, कुछ दूर से सुनने वाला जो उसके स्वभाव से अपरिचित भी हो, समझता कि वीणा के तीसरे सप्तक का निषाद स्वर टङ्कारें ले रहा है।

उस स्वर में हिमानी ने कहा, 'भूतनी कही की! दो गट्ठे क्यो लाई? और इतने बड़े बड़े!'

नौकरानी की हक्की बक्की भूल गई। उसकी दशा देखकर हिमानी जरा पसीजी क्योकि उसी समय बिच्छू के काटे नौकर की आह कराह सुनाई पड़ी।

बोली, 'कोठे में एक गट्ठा रख आ, दूसरा ले जा।' नौकरानी एक को रखने के लिये लौट गयी। हिमानी वही खड़ी रही। जब एक गट्ठा लिये हुये लौटी तब हिमानी ने धीरे से कहा, 'अरी यह तो बहुत बड़ा है। क्या करेगी इतने का?'

'काट कर आधा काम मे ले आऊँगी, आधा कल रसोई घर में लग जावेगा।' नौकरानी ने घिघिआ कर उत्तर दिया।

हिमानी ने आदेश दिया, 'नही। इसको रख आओ और एक छोटा सा उठा लाओ।'

नौकरानी तुरन्त फिर लौटी और शीघ्र एक बहुत छोटा सा उठा लाई। वह नौकर फिर कराहा।

'यह तो बहुत ही छोटा है।' हिमानी बोली।

नौकरानी हैरान कि अब क्या करूँ? फिर से लौटने को हुई थी कि पुचकार के स्वर में हिमानी ने रोका,—'अब इसी से काम निकाल लो। बिचारा कराह रहा है - इसमें भी तो काफी रस निकल आवेगा। ले जाओ। काम बन जावेगा।'

नौकरानी चली गई। हिमानी अपने कमरे में लौट आई और जा लेटी।

× × ×

एक दिन नील के सौदा सामान का टांड़ा बाहर जा रहा था कि एक नौकर अचानक बीमार पड़ गया। नील ने सोचा बहाना कर रहा है तो पहले सूझा कि डण्डे से बीमारी भगा दें, फिर जब उसको निकट से देखा तो समझ मे आ गया कि घोर ज्वर ने घेर लिया है। उपचार के लिये एक वैद्य को बुलाया। वैद्य तुरन्त चङ्गा कर ही कैसे सकता था ? तब एक मंत्रवेत्ता के हवाले रोगी को किया।

मंत्रवेत्ता ने चङ्गा कर देने का जो नुस्खा बतलाया वह बहुत मँहगा पड़ता—पशुओं का बलिदान और न जानें क्या क्या। नील ने उसे टाला। हिमानी ने कहा कि मैं अपने 'बालदेव' से प्रार्थना करूँगी—बचे तो जल्दी बचे और मरे तो जल्दी मर जाये।

हिमामी ने जो प्रार्थना की उसका सार यह था कि टाड़े को जहाँ जाना है वहाँ तक पहुँचने के समय के लिये चङ्गा हो जावे, क्योंकि जानकार नौकर है; फिर मर जावे—तब तक दूसरा चतुर नौकर खोज लूंगी।

× × ×

हिमानी को अपने देश–पणिश-का नृत्य आता था। आर्यावर्त के दृष्टिकोण से वह केवल उछल कूद और मटक चटक ! उसके निजी दृष्टिकोण से समुद्र की लहरों का अनुकरण जिन पर 'बल' या 'बाल' देव का राज्य था—ऊँची ऊँची तरङ्गों को लेकर आईं, कहीं टकराईं और लौट गईं; जिससे टकराईं उसे सिर धुनते छोड़ गईं। फिर बीच बीच में जब तूफान न रहा तब, छोटी छोटी लहरों का अनुकरण या प्रतीक हलकी पद चाप। इसके समक्ष उसे यहाँ का नृत्य निस्तेज, नीरस, मन्थर और प्रगतिहीन जान पड़ता था।

नील उस दिन अपने एक टाड़े को बहुत दूर भेजने की तैयारी में घर बाहर था। सङ्ग साथ के लिये प्रबल रक्षक दल की भी उसे चिन्ता थी। हिमानी को कुछ पहले सूचना मिल गई थी कि दीर्घबाहु आने को है। ठाठ के साथ उसने अपना शृङ्गार किया और प्रतीक्षा करने लगी। दीर्घबाहु आया।

हिमानी ने स्वागत किया। मिठास बरसाया। उसके साज और स्वागत को देखकर कुण्ठित आशा सचेत हो गई। शुभ घड़ी आई, उसने सोचा।

'कहाँ रहे इतने दिनो ?' हिमानी ने पूछा। कण्ठ उसका सुरीला था ही, दीर्घबाहु को लगा जैसे कुसमय भी कोयल कूकी हो।

उसने उत्तर दिया,—'शासन के कामो में बहुत उलझा रहा। आचार्य मेघ दूर के एक गाँव मे छप्पर वाली एक बड़ी कुटी बनवा रहे हैं। उठना, बैठना, लेटना उनका होता है भूमि पर बिछी एक चटाई पर। बड़े त्यागी महापुरुष हैं। आजकल वही से राजकाज चलता है। अमात्य और हम थोड़े से लोग वही इन दिनो बने रहे। वह बड़ी कुटी बिचारे हम सब के लिये ही तो बनवा रहे हैं। नील जी इधर अपने कारबार मे उलझे रहे तो तुम भी वहाँ न आ पाईं। नही तो मिलने की बहुत इच्छा रही। थोड़ा-सा अवकाश पाते ही चला आया।'

'राजकाज में कोई नई विघ्न बाधा खड़ी हुई है क्या ?'

'नही तो। सब सुखी हैं। कुछ थोड़े से असन्तोषी लोग हैं। उन्हीं की देखभाल करनी पड़ती है।'

'तो आ सकते थे न इन दिनो ?'

'करूँ क्या हिमानी देवी। छोटे से छोटा काम भी आचार्य मेघ मुझसे पूछ-पूछकर करते थे। रहना पड़ा। मन बार-बार ऊब उठता था।'

'इधर मैं बहुत कष्ट मे रही। कभी यह नौकर बीमार तो कभी वह। अकेली थी; मन लगा तो उनकी सेवा करती रही। एक रात एक नौकर को बिच्छू ने डँस लिया तो सारी रात उसकी सेवा मे बितानी

पड़ी। दिन में जब समय नही कटता था तब चिड़ियो के साथ खेलने लगती थी। जानते ही हो कि उन्हे कितना प्यार करती हूं?'

'हाँ उन्ही को तो सब से अधिक···' दीर्घबाहु हँस पड़ा। हिमानी भी हँसी।

'एक बात मे बड़ा आनन्द आता है—कुछ को तुम्हारा नाम दे दिया है।'

'हैं!·· क्या?'

'अरे हां, तो और क्या करती? तुम्हारा नाम न रखती तो क्या भुवन और रोमक सरीखे दुर्जनों का रखती? तुम्हीं बतलाओ भला।'

'अरे वाह! तुम मेरा नाम लेकर उनसे क्या कहती थी? मेरी सौगन्ध है बतलाओ।'

'देखो जी तुमने अपनी सौगन्ध धराई तो मैं रो दूंगी, फिर हाँ—'

'अरे नही, जी नही। मैं अपनी सौगन्ध को वापिस लेता हूँ। पर बतलाओ भी कि उनसे कहती क्या क्या थी।'

'यह लो! भला सब बातें कैसे बतला दूं? कही बतलाई जाती हैं? फिर भी कुछ बतला दू—'

'बतलाओ जल्दी बतलाओ नही तो—'

'उनसे प्यार की बातें करती थी।'

'क्या? क्या?'

'जब उन्हे प्यार पुचकार कर के बुलाती तो वे आ जाते और फिर गोदी मे बैठना चाहते तो मैं उनसे कह देती कि अभी मेरी—अर्थात् हमारी सबकी—कामनायें पूरी नही हुई हैं। कुछ समय तक थोड़ी दूर रहो। जब पूरी हो जाये तब गोदी मे आना।'

दीर्घबाहु का हर्षोन्माद खिसकने लगा।

तो भी उसने साहस किया—

'तुमने कहा था कि सफल होने के बाद मेरे-तुम्हारे विवाह की घड़ी आ जावेगी सो इसको दो-तीन बरस हो गये। मैं मानता हूँ कि तुमने

यह भी कहा था कि राजा को गद्दी से उतारने के उपरान्त शासन व्यवस्था अच्छी तरह से खड़ी हो जाय और कोई खुटका न रहे तब बात होगी। इसीलिये मैं आ गया हूँ अब कोई खुटका नही रहा।'

'क्या सचमुच ?'

'क्या कोई खुटका है कहीं ?'

'बड़ा भारी। भले ही दिखलाई न पड़ता हो नाक के नीचे। रोमक अभी है। दो-तीन बरस में भुवन आश्रम से लौटेगा। पानी भी कभी न कभी बरसेगा ही। वे दोनो जनपद को भड़कावेंगे और तुम सबको शासन से हाथ खीचना पड़ेगा। फिर ज्यों के त्यो।'

दीर्घबाहु चिन्तित हो गया। बोला, 'मेरी समझ मे नही आ रहा है कि अब और क्या करूँ। तुम सदा ऐसी ही टालती रहोगी।'

हिमानी के नथने सिकुड़े—भीतर भीतर क्रोध भड़भड़ा उठा। अब तक दीर्घबाहु जिस रूप-सरूप पर मुग्ध हो रहा था वह उसे बहुत उचटाने वाला लगा। परन्तु कुछ क्षणों के लिये ही, क्यो हिमानी ने अपने क्रोध को दबा लिया।

अपने को संयत करके उसने कहा, 'इसे टालना मत कहो। मैंने रोमक और भुवन के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा है क्या वह गलत है ?'

'गलत तो नही है। उस परिस्थिति में क्या करना होगा ?'

'जैसे इतने दिन हम लोग ठहरे रहे कुछ समय तक और सही। जैसे ही वह भयानक परिस्थिति सामने आवे अब की बार निश्चय कर लेना है कि जनपद समिति रोमक को सदा सर्वदा के लिये राज्य से अलग करने की सम्मति दे। तुम सब के लिये विशेषकर तुम्हारे लिये क्योंकि तुम सर्वप्रिय हो, समिति को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने में कठिनाई नही पड़ेगी; इतने दिनों के सुन्दर शासन की शक्ति का हथियार जो तुम्हारे हाथ में रहेगा।'

'हां—ग्रां—'दीर्घबाहु सोचने लगा। उसके मन में हिमानी की बात बैठने लगी। हिमानी की इच्छा के विरुद्ध कर भी क्या सकता हूं उसकी धारणा बनी।

हिमानी ने मुस्कराकर कहा, 'तुम्हें आज नृत्य दिखलाना चाहती हूँ स्वयं अपना।'

'अरे! अच्छा!!' दीर्घबाहु हलका पड़ गया।

हिमानी ने अपने देश की परिपाटी का नाच दिखलाया। दीर्घबाहु को बहुत अच्छा लग रहा था कि यकायक हिमानी के उन नथनों का स्मरण हो आया जो थोड़ी देर पहले सिकुड गये थे। उस नृत्य पर से उसका मन उचट गया। वह कुरूप आंखों में उतरा उठा था।

नृत्य की समाप्ति पर उसने हिमानी की सराहना की—शायद अच्छा भविष्य जल्दी सामने आवे।

हिमानी ने उसे जलपान कराया।

अवसर पाकर बोली, 'एक बहुत आवश्यक कार्य है।

'क्या?'

'तुम कुछ समय के लिये—थोड़े महीनो के लिये आचार्य मेघ के पास मत जाओ। वे काम तो चला ही रहे हैं। चलाते जायेंगे।

'हाँ हाँ कोई बात नही। यहीं बना रहूँगा। तुमसे मिलते रहने के लिये अवसर पर अवसर प्राप्त होंगे।'

'फिर वही लोभ और मोह! एक मुझे देखो जो तुम्हारे नाम से चिड़ियों पर प्यार बरसा-बरसाकर मन को समझाया करती हूँ। उधर एक-तुम कि··क्या कहूं।'

'मैं ही जानता हूं कि कैसे मन मे बसाकर तुम्हारी पूजा किया करता हूं।'

'यह मैं जानती हूँ कि दूर रहने पर प्रेम की गांठ और भी अधिक पक्की बँध जाती है;··तो अब मेरी एक विनती सुनो।'

'क्या? अरे क्या?'

'उसमें मेरा कोई स्वार्थ मत समझना। अपने दोनों के भले के लिये है।'

'कहो भी। मैं तो सिर तक देने को तैयार हूं।'

'ऐसी—बात मत कहना···मेरा तो कलेजा कांप गया। अब कहने को जी नही चाहता।'

'अवश्य कहो। मेरी सौं···अच्छा अच्छा सौगन्ध नही धराता हूँ।'

हिमानी ने बड़े भोलेपन के साथ दीर्घबाहु के गले उतारा—'पिता जी का एक टांड़ा दूर देश जा रहा है। अयोध्या जनपद मे तुम्हारी सब की शासन व्यवस्था बहुत प्रबल है इसलिये यहा तो कोई डर नही, परन्तु बाहर टाड़े के लिये यात्रा मे सङ्कट है। इसलिये तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम अपने योधाओ के साथ उसकी रक्षा के लिये साथ चले जाओ। कुछ ही महीनो की बात है तब तक मैं अपना समय उन पक्षियों के साथ खेलने मे काटती रहूँगी। अरे तुम तो उदास हो गये!—'

गिरे से स्वर मे दीर्घबाहु के मुह से निकला,—'चला जाऊँगा।'

'मैंने व्यर्थ ही तुमसे कहा। तुम्हे दुख नही देना चाहती।' हिमानी के गले में खरखराहट थी और नाक थोडी सी ऊपर को सिकुड़ी हुई।

दीर्घबाहु निश्चय के स्वर मे बोला, 'नही, कोई बात नही अन्ततोगत्वा मुझे भी समय काटने के लिये कुछ चाहिये।'

'मार्ग मे तुम्हें शिकार भी मिलेगा। कभी बाघ, कभी कुछ, कभी कुछ।'

'हां, हां, मन बहलाता रहूंगा।' दीर्घबाहु ने भविष्य में आखेट के चित्र अपनी कल्पना मे देखते हुये कहा।

समय पर वह नील के टाडे के साथ अपने योधाओ को लेकर गया। और ऐसा कई बार हुआ।

[३३]

जाड़े लगे और अब उतरने को आ गये। नैमिषारण्य में जहाँ तहाँ गेहूँ और जवे की फसल कटने पर आ गई—नैमिषारण्य के बाहर रूखी जगहों में तो कुछ हुआ ही न था। वहाँ अकाल के क्रम को दस बरसें हो गई थीं।

रात मे ठण्ड अब भी पड़ती थी, पर दिन में धूप तेज हो गई थी। दोपहर के समय आरुणि और वेद धौम्य खेड़े में सेवा का कुछ काम कर रहे थे और भुवन मधुकरी इकट्ठी कर रहा था। उसके जूट में पसीना झलक रहा था और होठो की घनी आंसों और ठोड़ी की खिरविरीं सिमटी हुई दाढ़ी की जड़ो पर छोटी छोटी बूंदें थी। वह गौरी की पौर में पहुंचा। चवूतरे पर कमण्डल झोला और लोटा रखकर पसीना पोंछते हुये उसने आवाज लगाई,—'इस गाँव के नर-नारियो का स्वास्थ्य अच्छा रहे। उनका कल्याण हो।'

गौरी एक छोटी सी हांड़ी में दूध लाई और मुस्कराकर उसने भुवन के लोटे में दूध डाल दिया।

'अपना पेट काट के आज इतना दूध क्यों दे दिया?' भुवन ने आँखें जोड़ते हुये कहा।

'हमारे पास देने के लिये है ही क्या?' गौरी ने चितवन नीची कर ली और मुड़कर आंगन के द्वार के कौरे से जा चिपकी।

'जो कुछ तुम्हारे पास है वह और कही नही है। देखू उसके पाने के योग्य कब हो पाता हूं।'

गौरी द्वार के कौरे से चिपकी चिपकी उसकी ओर देखने लगी। बोली, 'ऐसी बातें मत किया करो। दीन दरिद्र हूँ। तुम्हे फूल चढ़ाने की ही पात्र हो जाऊं तो बहुत है।'

भुवन जरा सा हँसा—

'सो तो बरसे हो गई जब फूल पा लिये थे। उस टीले पर—याद है न?'

'ह! ह!! जब कोई साधना करते थे!'

'तुम्हारा ही तो ध्यान लगाता था—'

'और आखे अधमुदी रखते थे? मैंने तो जाँच लिया था।'

'और कहा आज।'

'हूँ.. ऊँ...'

'तो मैं अब जाऊँ?' भुवन जाना नही चाहता था, परन्तु उसने अपने को उद्यत दिखलाया।

गौरी चाहती थी कुछ देर और बैठा रहे। क्या कहूँ कैसे कहूँ यह वह नही जानती थी।

योगाभ्यास कितने दिन करना पड़ता है?'

'जीवन भर कर सकते है और थोड़े ही समय तक भी—जैसे मैंने कुछ दिनो किया और छोड़ दिया।

फिर हँसी। भुवन बैठ गया।

'आजकल वे कहाँ हैं? वे जो तुमसे पहले उसी टीले पर अभ्यास करते थे? नाम कपिञ्जल था।' गौरी ने बात बढाई।

'दूर जंगल मे तपस्या, योगाभ्यास करते रहते है।'

देखू तो कदाचित अब पहचान मे ही न आवें।'

भुवन का हाथ सहसा अपनी दाढी पर गया और हट गया।

बोला, 'मेरी दाढी से चार छः गुना लम्बी तो हो ही गई है उनकी दाढी।'

'कौन देखने जावें, दूर जो इतने चले गये हैं वे। पास के ही जङ्गल में तुमही कब कब दिखलाई पड़ते हो। कई बार,समिधायें और लकड़ियां इकट्ठी की, पर तुम मिले ही नही!'

'अब तो आश्रम से बहुत कम निकल पाता हूँ। वेद, धनुर्वेद और अन्य शास्त्रों के अनुशीलन में बहुत समय लगाना पडता है। यहाँ मिल जाती हो यही मेरा बड़ा भाग्य है।'

आंखें नीची करके गौरी ने प्रश्न किया, 'किसका बड़ा भाग्य ?'

'गौरी, मेरा भाग्य, मेरा भाग्य गौरी।' भुवन उमङ्ग की हँसी हँसा। गौरी ने सिर ऊँचा किया। त्योरी पर निषेध के बल थे और होठों पर आनन्द की भोली मुस्कान। उस मुस्कान में से कुछ ऊँचे स्वर में निकला,—'हूं ··ऊँ···वैसी ही बातें करते हो !'

और उसी समय गली में से वेद निकल कर आगे चला गया। दोनों में से किसी ने नही देखा कि उसने कुछ देखा—और सुन भी लिया।

'वेद था !' जरा-सा सकपकाकर भुवन बोला।

'उहँ, तो क्या हुआ ?' गौरी ने कहा।

'नही कुछ नही; लेकिन निश्चय है कि उसने देखा नही।'

इतने मे ही गौरी को अपने आंगन मे किसी की आहट मिली। वह तुरन्त मुड़ी और भीतर चली गई।

भुवन के सामने गौरी की मां आ खड़ी हुई।

अब भुवन सन्न। चेहरा फक।

गौरी की मां ने ऊँचे कांपते हुये स्वर में कहा,—'आप राजकुमार हैं और हम लोग बहुत गरीब—'

'जी—जी—' भुवन खड़ा हो गया। उसके गले में कुछ अँड़ गया था।

गला साफ करके बोला, 'मां जी, हम लोगों को जो कुछ मिल जाय लेते हैं।' और वह अपना डेरा-डण्डा सँभालने लगा।

'ठहरिये',—गौरी की मां के गले का कम्प कम हो गया था और स्वर पैना,—'ठहरिये, मैं कुछ और कह रही हूँ।' भुवन को रुकना पड़ा। चुपचाप, सुन्न।

वह कहती रही,—'आप हम दीन-दुखियों के साथ खिलवाड़ करना चाहते है ! याद रखिये हम भी क्षत्रिय हैं ।'

'कैसा खिलवाड मां जी···कैसा ?'

'जैसा अभी अभी कर रहे थे हमारी भोली-भाली गौरी के साथ···मैं स्पष्ट पूछती हूं—क्या आप उसके साथ वैदिक रूप से विवाह करने को तैयार होंगे ?

'अवश्य, मां जी, अवश्य ।' उसके गले में न कम्प था, न घबराहट ।

'आप गंगा की और अपने पुरखों की सौगन्ध खाते हैं ? स्मरण करिये राम आपके पुराने पूर्वज हैं ।,

'···मैं सौगन्ध खाता हूँ माँ जी ।'

गौरी आंगन में होकर सुन रही थी । पृथिवी को पैर के नख से कुरेद रही थी जिस पर दो आंसू आ टपके ।

'पक्का वचन ?' गौरी की मां का स्वर अब धीमा पड़ गया था ।

'पक्का, माँ जी, बिलकुल पक्का । उतनी बड़ी सौगन्ध खा चुका हूँ । आश्रम में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त माता-पिता के आशीर्वाद से पहला काम यही करूँगा ।

'अच्छा बेटा, सुखी रहो तुम दोनों ।' गौरी की माँ का गला काँप रहा था। । उस कम्प के साथ आँखों में आँसू भी थे ।

गौरी आँसू पोछती हुई घर के एक कमरे में चली गई ।

[३४]

वह दिन भुवन का इतने आनन्द में बीता और उसने उस दिन का अपना काम इतनी लगन के साथ किया कि समय, स्थान और व्यक्ति सब लहरों पर खेलते हुये से दिखलाई पड़े।

सन्ध्या के उपरान्त जब धौम्य की कुटी में वह अन्य शिष्यों के साथ प्रवचन सुनने के लिये बैठा तब उसे अपने भीतर बड़ी स्फूर्ति प्रतीत हुई।

प्रवचन के अन्त मे धौम्य ने कुछ प्रश्न किये।

'मानव पराक्रमी कैसे बनता है?'

एक ने उत्तर दिया,—'ध्यानधारी होने से—आपने बतलाया था।'

दूसरे ने—'संयमी बनने पर।'

तीसरे ने—'परिग्रह के छोड देने पर भी कर्तव्य निष्ठा से।'

भुवन बोला—'लगातार शुभकर्म करने से।'

धौम्य ने कहा, 'ध्यान, समय, अपरिग्रह और शुभकर्म का संयोग ही पराक्रमी बनाता है।'

थोड़ी-सी प्रश्नोत्तरी के बाद जब शिष्य अपने अपने स्थान को जाने लगे, धौम्य ने अकेले भुवन को रोक लिया। भुवन ने सोचा मेरे ऊपर विशेप कृपा है।

'संकटो से लड़ने के लिये अपने को पूरा पराक्रमी बनाओ', गुरु ने उद्बोधन किया।

भुवन ने अपनी नस नस में उस वाक्य को निश्चय के साथ बाध लिया और सिर झुका कर 'हा' की।

'मन को सन्तुलित और दृढ रखने के बराबर और कोई हथियार नही।'

भुवन ने ओज की बाढ़ को अपने भीतर अवगत किया और सांस साधी मानो भीतर ही भीतर उस ओज को भरे रखने का प्रयास कर रहा हो।

'उचाट मारने के पहले अपने अंगों को संकुचित करना पड़ता है।'

भुवन नही समझा। धौम्य के प्रति उसके आदर में प्रश्न था। धौम्य मुस्कराये।

'ध्यान के साथ सुनो और गाँठ में कसकर बाँध लो। तुम में जो कसर है उसे मिटाना चाहता हूँ।'

भुवन को लगा जैसे पैर तले की मिट्टी खिसक रही हो।

धौम्य ने कहा, 'तुम जङ्गल मे समिधा इत्यादि के संग्रह के लिये नही जाओगे।'

'जो आज्ञा गुरुदेव।' भुवन की प्रसन्नता फिर लौटने को हुई।

'तुम छः महीने तक किसी भी गांव मे भिक्षाटन के लिये नही जाओगे और न किसी सेवा कार्य के लिये।'

ऐं! और आगे क्या आने वाला है—भुवन की धुकधुकी चंचल हुई।

'अध्ययन इत्यादि के उपरात अगले छः महीने आश्रम के उद्यान और शाक-भाजी के खेतो मे काम करते रहोगे। जब ये छः महीने बीत जावें तब गाँव मे भिक्षाटन के लिये जाना।'

कोई बड़ा हर्ज नही, न जायेंगे छः महीने गाँव मे, इसके बाद तो जा सकूगा। भुवन के मन मे लहर-सी दौड़ी। 'जो आज्ञा गुरुदेव।' उसने कहा।

'दो वर्ष पीछे स्नातक होने की आशा करो। जब छः महीने के उपरान्त गाँव मे भिक्षाटन के लिये जाओ इन बातो को भलीभाति और सदैव ध्यान मे रखना—'

भुवन दबी हुई घबराहट के साथ धौम्य की ओर देखने लगा।

धौम्य ने दृढ स्वर मे उन बातो को उसके ध्यान मे बिठलाया,—'गाँव में प्रवेश करने के समय ही कहो कि गाँव के नर-नारियो का स्वास्थ्य अच्छा रहे, उनका कल्याण हो, घर घर मत कहो। महीने में एक घर से एक ही बार भिक्षा लो। किसी के भी घर के भीतर मत जाओ। किसी भी स्त्री से आँख उठाकर बात मत करो और न किसी स्त्री

से अकेले में बात करो या मिलो। विद्यार्थी जीवन वासनाओं के संकलन का समय नहीं है। समझ गये ?'

'जी गुरुदेव।' भुवन को पसीना आ गया।

'और देखो'—पैनी आंखों को और भी पैनापन देते हुये धौम्य बोले,—'जो कुछ मैंने अभी अभी कहा है प्रतिज्ञा के रूप में अगले छ. महीने नित्य मेरे सामने दुहरा जाया करो।'

भुवन ने बहुत नम्रता और निष्ठा के साथ 'हां' की।

यह घोर दण्ड किस अपराध पर ? इसकी अपेक्षा तो वेद को अपने कन्धों पर बैल का जुआं रखने के कारण जैसा और जो कुछ भुगतना पड़ा था वह बहुत ही बहुत सहज था। क्या वेद ने कोई चुगली खाई है ? वह तो सिर नीचा किये निकल गया था।

धौम्य ने उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा,—'यह प्रतिज्ञा मेरे सामने अकेले में किया करोगे।'

अब भुवन को धौम्य की वह आज्ञा कुछ कम कटीली लगी।

[३५]

रोमक के गिरते हुये स्वास्थ्य को देख देखकर ममता बहुत चिन्तित हो उठी। उसने रोमक को भ्रमण करने और बाहर के वातावरण मे विचरण करने के लिये सहमत कर लिया, मन बहलाव होगा और विचार भी भिन्न दिशाओं मे जाने लगेंगे।

दो तीन रथो के साथ घोड़े से अनुचरों को लेकर वे लोग निकल पड़े।

रूखी सूखी भूमि के भूखे टूटे वातावरण मे भी रोमक को अयोध्या के बाहर जहाँ पड़े-पड़े उसे कई बरस बीत गये थे कुछ नयापन मिला। पृथ्वी पर मेह की बूदें नही पड़ी थी तो उसके भीतर के आँसुओं ने एक कोलाहल उत्पन्न कर दिया—मैं मुंह क्यों चुराऊँ? मुह दिखाने से क्यों हिचकूं? थोड़े से मुझे पापी कहते हैं तो बहुत से तो ऐसा नही कहेंगे। जनपद को शुभ घड़ी भी देखने को मिलेगी। तब इन बहुतों से क्या कहूँगा? थोड़े तो शासन मद मे प्रमत्त होने के कारण मेरी कभी कुछ नही सुनेंगे, न आज और न कल। उनमें क्यों न घूमूं फिरूँ जिनकी बहुलता है, जो सबसे अधिक दुखी और पीडित हो रहे हैं? उनके मन मे यदि मेरे विरुद्ध कोई भ्रम रहा भी था तो अब घुल गया होगा।

× × ×

रथों को दूर छोड़कर एक गाँव मे अकेला गया। वहाँ एक मिला। रोमक वेश बदले हुये था। कपड़े सीधे सादे।

'क्यों भाई यहाँ के लोग कहाँ गये ?' रोमक ने पूछा।

'सब भाग गये हैं। जो थोड़े से हैं वे नदी किनारे के मूल खोदने गये हैं। तुम कौन हो।'

'पथिक हूँ। दूर से आया हूँ। नैमिषारण्य जा रहा हूं। तुम्हारे राजा का क्या हाल है'

'सुना है विचारा कही मारा मारा फिर रहा है।'

'अपने कर्मो का फल पा रहा होगा ?'

'उसने किया ही क्या था ? दुष्टों ने कष्ट दिया उसे।'

× × ×

ऐसे ही दूसरे गाँव में पहुँचा। यह बडा सा था। वे ही प्रश्न। उत्तर भी लगभग वे ही। कुछ भिन्नता भी थी।

गाव वाले कह रहे थे,—'हमारे गाँव का भी हाल बुरा है, लेकिन हम दुर्भाग्य से लड़ना जानते है और लड़ते रहेंगे। जब अच्छे दिन भी सदा एक से नही रहते, तो बुरे भी यों ही नही चलते रहेगे।'

× × ×

बहुत से गावो में घूमते घूमते उसने देखा कि अब पहिचाना जाने लगा है और छद्मवेश से काम नही चलेगा। वेश तो उसने अपना सीधा-सादा रक्खा, पर नाम बदल कर बात नही की।

एक ऐसे गाव मे पहुचा जहा थोड़ी सी कुआँ खेती होती थी और ब्राह्मण रहते थे। उसने निर्भीकता के साथ उन लोगो से प्रश्न किये। ब्राह्मणों ने निडरता के साथ ही उत्तर दिये।

'मैंने ऐसे कौन से पाप किये थे जो गद्दी से उतार दिया गया ?'

'एक के पाप से इतना बड़ा सङ्कट मानव पर नही आता। हम सब के पापो का फल अकालो मे प्रकट हुआ है। यदि अपने अकेले की पूछते हो तो हम कहेगे कि मजूरो को पूरी मजूरी न देना, कार्यो को अधूरा छोड़ना इत्यादि इत्यादि पाप हैं।'

'इत्यादि इत्यादि क्या ?'

'शूद्रो को तपस्या करने देना एक यह भी है।'

× × ×

एक जगह उसे यह सुनने को मिला—

'मेघ के पिछलग्गे ब्राह्मणों पणियो और वणिको ने मौज समेट रक्खी है। इनसे तो हमारा रोमक ही अच्छा जो चाहे जिसका गला तो नही दबोचता था।'

और एक जगह—

'रोमक ने मध्य श्रेणी के परिवारो की कमर टूट जाने दी इसलिये मुखियो ने उसे गिरा दिया। यदि उनकी कमर सीधी हो जावे तो अब की बार राजा से प्रण करायेंगे कि अपनी नीति को बदल कर चले, तब फिर से राज्य देंगे।'

दूसरे स्थान पर—

कुछ स्त्रियो की बात-चीत में उसने पाया—

'रोमक का तो मुंह भी न देखे। हाँ उसकी रानी बड़ी भली है। उसी के पुण्य प्रताप से जीवित है नही तो कभी का मर जाता।'

रोमक सन्नाटे मे आ गया।

× × ×

रोमक दूर एक ऋषि के आश्रम मे पहुँचा। थोड़ी सी वातचीत के बाद ऋषि ने तीसरा नेत्र खोल दिया।

जाओ। तुम्हारे राज्य में शूद्र तपस्या कर उठे है।'

कुछ समय उपरान्त एक दूसरे ऋषि के आश्रम में पहुंचा। ये आश्रम नैमिषारण्य के किनारे पर थे।

ऋषि से रोमक पूछ बैठा, 'मेरा राज्य मुझे कैसे मिलेगा?'

ऋषि ने कोई बात नहीं की। हाथ का संकेत करके हटा दिया—मानो कह रहा हो कि ऐसे व्यक्ति को यहा खड़े रहने के लिये भी ठौर नही है।

रोमक अपने भ्रमण मे कभी कुछ और कभी कुछ देखता और सुनता था।

[३६]

दीर्घबाहु जब कभी बाहर नही होता था या शिकार खेलने नहीं चला जाता था तब मेघ, नील, सोम इत्यादि के साथ शासन सम्बन्धी प्रसङ्गो में भाग लेता था। इन लोगो की बैठक मेघ के दूरवर्ती प्रिय स्थान मे बहुधा होती थी। कभी कभी राजभवन मे भी हो जाती थी। वैसे वह सूना बन्द पड़ा रहता था। शासक मण्डल मे सोम प्राय: मेघ वर्ग का विरोध किया करता था।

राजभवन मे एक दिन घण्टो से अधिवेशन हो रहा था। काफी बहस हो चुकी थी।

दीर्घबाहु कह रहा था,—'कुछ को साधने से सब सध सकता है, सबको साधने की लालच मे सब डूब जाता है।'

सोम—'मध्यम श्रेणी, अच्छे ब्राह्मणों और किसानो के साधने से ही सब कुछ सध सकता है। नही तो नही।'

मेघ रूखे स्वर मे बोला,—'बात बढ़ाना व्यर्थ है। काम होने दीजिये।'

सोम से मेघ की वह आँख नही सही गई। बैठक छोड़कर चला गया।

नील ने कहा, 'मध्यम श्रेणी क्या? यह तो कोई नया-सा शब्द है।'

'सोम जानें। उन्ही की मनगढन्त है।' मेघ ने समर्थन किया।

नील ने अपना बड़प्पन जताया—'ब्राह्मणों के साधने की बात तो ठीक है। औरो की ये यों ही कह गये। जैसे उन्हे कोई मारे डाल रहा हो!'

'शिल्पियो की श्रेणियां जरूर टूट-फूट गई हैं, परन्तु इसमे रोमक के बुरे शासन और अकालो का प्रभाव अधिक है। सुकाल आवे तो हम लोग इन्हे भी सुखी कर देंगे।'

नील ने वही बात दूसरे शब्दों मे कही जो इन सब के मन में थी—‘हम लोग’ इन्हे सुखी कर देंगे, अर्थात् रोमक को फिर से राज्य न पाने देंगे।

× × ×

हिमानी नौकरो के काम पर जैसी सतर्क दृष्टि रखती थी वैसी ही उनके भोजन पर भी—

‘अरे इतना मत भखो, बीमार पड़ जाओगे। कुऋतुओं के कारण रोग वैसे ही बहुत बढ़ रहे हैं।’

‘पेट को इतना भर लोगे तो रात को खेत की रखवाली कैसे कर सकोगे? उधर तुम सोये इधर अनाथ ढोर सारी फसल चर कर चौपट कर डालेंगे! शाम को अधपेटे रहा करो। कल का दिन फिर मिलेगा।’

‘अजी तुम्हारी देह मे पीड़ा बहुत खाने से हुआ करती है। आगे से खाना कम मिलेगा।’

परन्तु जब वह अपने मुर्गों को चुगाती थी तब इतना अन्न फेक देती थी कि पृथिवी पर पड़ा रह जाता था। चीटियों, कीड़ो और इधर-उधर के पक्षियों का पेट तो भरता है! उसको पक्षियो पर दया थी।

‘मूर्ख! मिट्टी के ढेले!! काठ के मेढक!!!’ वह जिन मुर्गों को ‘दीर्घबाहु’ नाम देकर सम्बोधन करती थी उनके सामने का तो दो-दो तीन-तीन दिन पड़ा रहता था।

[३७]

छः महीने भुवन को वह द्राविड़ प्राणायाम करना पड़ा। बाहर नही जा पाया। आरम्भ में तो दम घुटने लगा फिर धीरे-धीरे अभ्यास ने उसे स्थिरता दी। उसे गुरू के सामने अकेले मे नित्य दुहराना पड़ता था—

'गाँव में प्रवेश करने के समय ही गाँव वालो के लिये कल्याण और स्वास्थ्य की वाञ्छा प्रकट करूँगा, घर-घर नही कहूँगा। महीने मे एक घर से एक ही बार भिक्षा लूँगा। किसी के भी घर के भीतर नही जाऊँगा। किसी भी स्त्री से आँख उठाकर बात नही करूँगा। किसी भी स्त्री से अकेले में न मिलूंगा, न बात करूँगा।'

कुछ दिनों अन्तिम प्रतिज्ञा करते समय उसे लज्जा आ जाती थी और काँटे से चुभ जाते थे, फिर वह सब सहने लगा। छः महीने निकल गये। उसने एक एक दिन याद रक्खा। अब कम से कम बाहर का चलना फिरना और अनिरुद्ध वातावरण में विचरण तो हाथ लगेगा।

सातवें महीने के पहले दिन गुरू के सामने जाते ही उसने प्रतिज्ञा को उत्साह के साथ दुहराने का प्रयत्न जैसे ही व्यक्त किया कि धौम्य ने मुस्कराकर रोक दिया—

'अब मुंह से कुछ नही कहना है। मन में ही प्रतिज्ञा जपते रहना। जङ्गल में भी जा सकोगे।'

भुवन उस दिन गाँव में नही जा पाया। दूसरे दिन गया। गाँव के बाहर ही चिल्लाकर कल्याण सूचक वाक्य कहा। थोड़ों ने ही सुन पाया होगा। जब गाँव के भीतर पहुँचा प्रत्येक घर के सामने थोड़ी-थोड़ी देर चुपचाप खड़ा रहा और आगे बढ़ गया। मुझे भिक्षा दो यह उसके स्वाभिमान ने कहीं भी मुह के बाहर नही निकालने दिया। जब गौरी के द्वार पर पहुँचा आँखों ने कनखियो कुछ देखना चाहा, पर भीतर से उसकी प्रतिज्ञा ने फटकार दिया। मुंह से कुछ नही कहूँ तो खाँस तो

दूं। खांसा, कोई भी बाहर नही निकला। फिर खांसने की इच्छा हुई तो उसके भीतर से किसी ने तुरन्त कहा—यह भी एक तरह की भाषा ही है और 'विद्यार्थी जीवन वासनाओ के सङ्कलन का समय नही है।' गुरु की वही पैनी आँख, वही तेजस्विता फिर सामने! और अधिक वहां नही ठहरा।

गाँव मे बहुत थोड़ी भिक्षा मिल पाई। गुरू ने देख लिया, और भुवन ने समझ लिया कि गुरुदेव सन्तुष्ट हैं।

उसे भोजन कम मिल पाया। उहँ, विवेक की खूराक अन्न इत्यादि नही है। सन्तोष से पेट पूरा कर लिया।

ऐसा कई दिन हुआ। भुवन बँधे हुये समय पर भिक्षाटन के लिये पहुँचता था। इसलिये लोग उसे अधिक अधिक मिलने लगे और मधुकरी की मात्रा भी बढ़ने लगी।

एक दिन गौरी की माता ने उसकी झोली मे अन्न ड.ला। दूसरे दिन उसके पिता ने। भुवन ने आँख उठाकर देखा। इधर उधर के दृश्य भी दृष्टि की कोरो पर चढ़ बैठे। परन्तु वहां गौरी नही थी।

भुवन वन मे भी कभी कभी गया। दूर से ही गौरी की झाकी ले लूँ—क्या यह ठीक होगा? लेकिन वह दूर से भी नही दिखलाई पड़ी। कई महीने बीत गये। गाँव से चली तो नही गई? नही, गई नही है। उसके माता-पिता मिले थे।

उस दिन जब गाँव मे गया गौ‿ी पानी के घड़े सिर पर रक्खे भुवन के सामने से आ रही थी। यकायक उस पर आँख गई। गौरी टकटकी लगाये उसकी ओर देखती चली आ रही थी। गली के उबटो की भी परवाह नही थी! भुवन ने आँख नीची करली। देह सन्न सी रह गई। उसके पैर गौरी के पास से उसकी देह को आगे खीच ले गये। गौरी के हाथ ढीले पड़ गये उसे और लगा जैसे घड़े सिर पर से गिरे और अब गिरे, कठिनाई के साथ उन्हे संभाल कर चली गई। भुवन को क्या हो गया है!

क्या यह वही भुवन है ? शायद इधर-उधर कोई ताक-झांक रहा था इसलिये उसने आंख नही उठाई। विद्यार्थी जो ठहरा।

× × ×

एक दिन जब द्वार पर जाकर खड़ा हुआ तो गौरी पौर मे खड़ी थी—जैसे उसके आने की प्रतीक्षा कर रही हो।

गौरी ने कहा, 'भीतर आओ।'

भुवन को कहना पड़ा,—'नही···यही से ले लूगा।' उसने आंख नहीं उठाई।

'वहा से नही; आज यह क्या ? किसी और घर मे चाहे न जाओ, यहाँ तो आना पड़ेगा। बहुत समय से नही मिले।' गौरी का स्वर काप गया।

'नही।' धीरे भुवन बोला।

'क्यो ?'

'यों ही।'

'और जो मैं वहा गली में आकर न दूं ?'

'तो मैं यह चला।' भुवन की सांस फूलने लगी। भुवन के पैर बढ़े। वह द्वार से थोड़ा आगे निकल गया।

'ठहरो !' गौरी के स्वर मे क्षोभ था।

भुवन ठहर गया। परन्तु उसने लौटकर नही देखा। गौरी खोवे मे भर कर गेहूँ ले आई। उसकी ओर नही मुड़ा। उसकी ओर पीठ किये हुये भुवन ने अपना कमण्डल वाला हाथ पीछे बढ़ा दिया।

गौरी ने अपना सिर झटक कर कहा,—'ऊँ—ह !' और अभिमान के साथ मुंह फेरकर कमण्डल मे अनाज जो डाला तो कुछ उसमे गया और बहुत-सा धरती पर जा पड़ा। भुवन थोड़ा-सा आगे चला कि पीछे द्वार पर उसे सिसकी का शब्द सुनाई पड़ा। जब लौटकर देखा तो गौरी भीतर चली गई थी। अन्न नीचे बिखरा पड़ा था। भुवन ने एक एक दाना बीनकर अपने पात्र मे रक्खा और होठ से होठ सटाये। चलने को

था कि गौरी द्वार की चौखट पर आ गई। भुवन ने सिर तक नहीं उठाया। वैसे ही चला गया।

जब वह भिक्षाटन करके आश्रम की ओर जा रहा था मन चाहा कि कहीं अकेले में बैठकर रोलूं। हैं! क्या यह पुरुषार्थ होगा? माता, पिता को ग्यारह वर्ष से ऊपर कष्ट भोगते हो गये हैं। क्या क्या नहीं बीत रही होगी उनके ऊपर और एक मैं इतने से ही रोने पर आ गया! गौरी आर्य नारी है। एक दिन बात उसकी समझ में आ जावेगी और वह मुझे क्षमा कर देगी।

[३८]

भुवन को आश्रम आये छठवां वर्ष हो रहा था। छटवें वर्ष की समाप्ति में देर ही कितनी लगती है ? तीन महीने और कि स्नातक हो जाऊँगा। गुरुदेव की कृपा से वेद, शास्त्र, वाण विद्या, ललित कला का मन लगाकर परिशीलन किया है। दीक्षान्त संस्कार होगा। फिर गुरुदेव के चरणो का आशीर्वाद लेकर गौरी को उसके माता पिता सहित अयोध्या ले जाऊँगा। वहा माता पिता के वरदहस्त की छाया मे हम दोनों एक हो जायेगे। भुवन उसी टीले पर बैठा हुआ सोच रहा था जहा उसने गौरी से पहली बार बातचीत की थी।

ग्रीष्म लगभग था। टीले पर पसरे हुये घने पेड़ की छाया मे ठंडक थी। भुवन को उस दिन गाँव मे थोड़ा सा ही मिला था। जङ्गल मे फल कुछ अधिक मिल गये थे। तीसरा पहर लगने को था। भूख के मारे आतें जल रही थी। उसने झोली मे से फल निकाले और सूँघे। रसना मे रस भर आया। दातो के नीचे उमेठ हुई। परन्तु-परन्तु वह उन्हे खा कैसे सकता था ? गुरुदेव ने वर्जित जो कर रक्खा था। शिथिल होकर भूमि पर भुजा के सहारे लेट गया। थोड़ी देर लेटा रहा। लेटे लेटे क्या भूख शान्त हो जायगी ? उठकर फल झोली के झोली मे रख दिये गये। अरे इस पेड़ पर नई कोमल कोपलें तो हैं !! बड़ी स्वादिष्ट होंगी। ये न फल हैं, न अन्न। आश्रम देर में पहुंच पाऊँगा। क्यो न खाऊँ इन्हें ? भुवन ने उस पेड़ की कोपलों को खाना शुरू कर दिया और खाता रहा।

थोड़ी देर मे उधर आँख जो गई तो देखा कि गौरी एक छोटे से कपड़े मे बढ़िया आम लिये उसी की ओर चली आ रही है। कपड़े मे से कई लाल पीले आम झाँक रहे थे। अब ? अब क्या करूँ ? गुरु के निषेध की अवधि में अभी तीन महीने शेष हैं। इसे क्या निषेध वाली बात भी न बतलाऊँ ? किसी भी स्त्री से आँख उठाकर बात न करूँगा, किसी भी

स्त्री से अकेले में न मिलूंगा, न बात करूंगा—वह प्रतिज्ञा भीतर से चीख पड़ी।

भुवन् ने तुरन्त अपनी झोली कमण्डल सम्भाला और अधचबाई कोंपलें जीभ और दांतों मे दावे टीले से जल्दी जल्दी उतार कर द्रुतगति से दूसरी दिशा मे चला गया।

'अरे! यह क्या?' गौरी के थर्राये हुये गले से निकला। भुवन ने नही सुन पाया होगा।

गौरी ने अञ्जलि के फल नीचे पटक दिये—भुवन पागल हो गया है। पागलपन नही तो यह सब क्या है? पागल है? और मैं किसी प्रकार भी इसकी सेवा नही कर पाती! हे भगवान!! एक घड़ी उपरान्त गौरी ने फेंके हुये फल फिर उठा लिये और वहां से धीरे धीरे चली गई। कब मिल पाऊँगी? कभी कुछ-पूछ पाऊँगी? कब किसी और से पूछूं। किससे? कोई क्या कहेगा?

[३६]

नील के भवन में नील, हिमानी, दीर्घबाहु और मेघ एक कमरे मे थे। गरमी की ऋतु समाप्ति पर थी। आकाश मे बादलों के टुकड़े किसी निरुद्देश्य की भाँति चक्कर लगा रहे थे। फिर भी ऐसे बादल अयोध्या में आज बारह बरस में दिखलाई पड़े थे। लू नही चल रही थी। पवन में कुछ ठण्डक थी। यह इन लोगो के हर्ष और विषाद का एक साथ कारण बनी।

दीर्घबाहु के मन मे कुछ देर से भड़भड़ा रहा था—

'रोमक राज्य वापस पाने के लिये सिर तोड़ प्रयत्न कर रहा है। बेभाव घूम रहा है। जनता को भड़का रहा है।'

'सो क्या राज्य पा लेगा ?' हिमानी ने उपेक्षा के साथ पूछा।

'कभी नही। किसी हालत में भी नही'—मेघ के पास क्रोध तो बिना बुलाये ही आ जाता था।

नील को चिन्ता थी—

'कुछ ब्राह्मण उसके समर्थक हो गये हैं, पाने को उससे कुछ भी नही। फिर भी न जानें क्यों ? दस पाँच दिन मे शायद पानी बरसे। अच्छा ही होगा। यदि बरस पडा और किसानो ने अच्छी फसल पाई तो क्या रोमक को गद्दी मिल जावेगी ?'

'मिल तो जावेगी गद्दी !' मेघ के क्रोध ने कड़वे व्यङ्ग और तीखे अहङ्कार का रूप पकडा,—'फसल अच्छी आने से रोमक के पाप भी धुल जायेंगे !! मेरा शाप भी विफल चला जायेगा !!! बड़े बड़े लोग और बहुत से गाँवों के मुखिये हमारा साथ नही छोड़ सकेंगे। इन छः वर्षो का हमारा शासन कोई नही भूल सकता और न उन छ. वर्षों के दु:खों को ही जब रोमक के राज्यकाल मे विपत्तियां बरसती रही।'

'और फिर हम सब कहा जावेंगे जिनके हाथो मे शक्ति है ?' हिमानी बोली, 'आचार्य महाराज ठीक कह रहे है। दीर्घबाहु जी की बात को भी

ध्यान मे रक्खे रहे। रोमक की गतिमति पर सूक्ष्म दृष्टि बनाये रखना ठीक होगा।'

दीर्घबाहु का मन फूल गया—मेरी बुद्धि की सराहना कर रही है हिमानी !

× × × ×

नैमिषारण्य के निकट एक गाँव के बाहर तीसरे पहर घने बादलों और एक कुंज की छाया मे भूमि पर एक मोटा कम्बल बिछाये ममता के साथ रोमक बैठा हुआ था। ऐसे बादल रोमक ने नैमिषारण्य के आस-पास पिछले वर्षों में भी देखे थे। इसलिये उसकी सहज उदासी मे कोई कमी नही आई। ममता उसे उत्साहित करना चाहती थी।

ममता ने कहा, 'देव, आप और अधिक न भटकें। ऐसे बादल मैंने बारह बरस पीछे देखे थे। लोगो में विश्वास उत्पन्न होता जा रहा है कि अकाल दैव। कोप के कारण ही पड़े हैं, वे आपको दोषी नहीं ठहराते। अयोध्या लौट चलिये। अच्छे दिन फिर रहे हैं।'

'कौन जाने बरसेगा या नही। एक गाँव मे कुछ लोग कह रहे थे—वर्षा ऋतु की गरमी के पसीने पर पसीने आगे क्या कभी नही आवेंगे ? उस ऋतु के पसीने से उत्पन्न दुर्गन्धि बाग बगीचों के पुष्पो की सुगन्धि से अधिक कल्याण देने वाली होती है, वह क्या कभी नही मिलेगी ? इधर के बहुत से जन मुझे पापी कहते हैं। अयोध्या के अधिकांश तो कहते ही हैं।' रोमक ने हाय साँस ली।

ममता उसे समझाने बुझाने के लिये मन में किसी सामग्री का संग्रह करने लगी।

रोमक ने निश्चय प्रकट किया,—'मैं तो देवी, अब वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करना चाहता हूँ।'

'अभी वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कैसा ? आपका भुवन जब तक विद्यार्थी जीवन को समाप्त करके गृहस्थाश्रम मे नही आता तब तक आप वानप्रस्थ आश्रम मे जा कैसे सकते हैं ?'

'शास्त्रों में व्यवस्था मिल जायगी।'

'हमारे भुवन को महर्षि धौम्य ने तपा-तपाकर बलिष्ठ और प्राञ्जल के साथ मञ्जुल भी कर दिया होगा।'

'क्या किसी दिन भुवन इस योग्य हो जावेगा कि उन दुष्टों को अपने ओज, तेज और प्रताप से पानी कर दे?'

'अवश्य देव। आपने उसे बरसों से नही देखा।'

'हां आ...'

'अब वह बालक नही रहा होगा। उसके आसे भीग आई होगी। दाढ़ी पर छोटे छोटे बाल भी उग निकले होगे। बाहु विशाल हो गये होंगे। कन्धे और वक्ष पुष्ट, और सुशील भी कितना हो गया होगा!'

माता के हृदय की वाणी ने अपना काम किया।

रोमक फफक उठा। आंखों से आंसू बह निकले। उसके टूटे हुये स्वर में निकला,—'दुबला हो गया होगा। गाल पिचक गये होंगे। कैसा सुन्दर कुमार! मेघ की क्रूरता ने कहां भिजवाया उसे!!'

'आपकी आँखों में आँसू! सोचिये तो कि आपके भुवन में तेज किस मात्रा मे बढ गया होगा। आपको स्मरण होगा कि जब आप उसे महर्षि के आश्रम में प्रवेश कराने गये तब उन्होने कहा था कि भुवन को राजपद के योग्य बनाकर रहूँगा। आप ही ने मुझे बतलाया था।'

रोमक ने अपने आंसू पोंछे और कम्पित स्वर में बोला, 'जब मैं आश्रम मे उसका प्रवेश कराके लौटा उसे छाती से नही लगा पाया था। एक बार आंखो भर उसे देख तक नही सका था।'

रोमक फिर रो पड़ा।

'विपत्तियों के सामने आपको कभी इस प्रकार झुकते नही देखा। देवता कभी रोते हैं? अन्न की बालो का दूध पकने पर सूख भले ही जाय पर उनकी शक्ति मे दीनता कभी नही आती। आप जागें, उठें और अपने बड़े महर्षि धौम्य से ही जाकर पूछें कि आपको क्या करना चाहिये। भुवन भी वही मिलेगा।'

रोमक यकायक खड़ा हो गया। उसने कड़ी उङ्गलियों अपने आँसू पोछे। कण्ठ स्वच्छ किया।

धीरे से उसने कहा, 'देवी, आप वास्तव में देवी है आपके ही नाम की एक देवी ने ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों की रचना पूर्वकाल में की थी। मैं महर्षि धौम्य के पास जाऊँगा। बहुत पहले जाना चाहिये था। वे जो कुछ कहेंगे उसी का अनुसरण करूगा।'

अब ममता हिल पडी—

'आपने मुझे जो पद और आदर सदा अखण्ड भावना के साथ दिया है उसे सब जानते हैं, परन्तु इतनी बडी तुलना के योग्य मैं नहीं हूं।'

कुछ क्षण दोनो चुप रहे।

ममता ने अपने स्वर को साधा और मुस्करा कर बोली, 'आपको वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करने का संकल्प त्याग देना चाहिये।'

कैसी सुन्दर, शुभ्र मुस्कान! जैसे घने काले बादलो के अन्धेरे को चीर कर चन्द्रिका निकल पड़ी हो। रोमक को अपने तिमिराच्छन्न मन मे ऊषा की जैसी किरणे दिखलाई पडी और उसने कहा, 'मैंने वानप्रस्थ आश्रम के अपनाने का विचार त्याग दिया। कल तड़के ही महर्षि धौम्य के आश्रम की ओर पैदल यात्रा करूँगा। तब तक तुम पास वाले गाँव मे प्रवास करना। मैं जल्दी लौटूंगा।'

'मैंने इन दिनो भुवन के लिये कई बढिया बढिया कुर्ते और कन्चुक बनाये हैं—समय मिलता रहता था। उससे कह देना कि जब वह लौटकर घर आयेगा तब उसे भेट कर दूंगी।'

'साथ लेता जाऊँ?' अब रोमक के चेहरे पर हँसी आई। यह हंसी ममता ने बहुत समय पीछे देखी थी।

ममता भी हँसी।

वह एक कुर्ता तो महर्षि ने अलग रखवा दिया था, इनको भी किसी कोने मे टंगवा देगे। स्नातक होने के बाद ही तो पहिन पावेगा ऐसे वस्त्र वह। स्नातक होने मे भी अब अधिक विलम्ब न होगा। कुशाग्र बुद्धि जो इतना है।'

[४०]

नैमिषारण्य मे बदली पेड़ों की टोनों पर कुहरे जैसी छाई मालूम हो रही थी। फिर भी दोपहरी के समय धौम्यखेड़े की गली में ततूरी सी लग रही थी। भुवन नंगे पांव, जैसा कि नियम था, भिक्षार्जन के लिये गाँव में आ गया था।

गौरी के घर के सामने आखें नीचे किये हुये खडा हो गया। ततूरी कुछ तो थी ही, पर उसे नही लग रही थी। पौर आगन वाले द्वार पर लाल कपड़े की झांई कनखियो पर पड़ी। गौरी एक कटोरे में दूध लाकर आते आते कौरे से सट गई। झांककर भुवन की ओर देखा। थोड़ी देर झिझकी। तब तक भुवन आगे बढ़ गया। गौरी की सास फूली; हाथ ढ़ीला पड़ा और कटोरा छुटक पड़ा दूध बिखर गया। भुवन के कान मे कटोरे गिरने की झन्नाहट पहुंची। डग धीमा हुआ। गौरी ने उसके नारङ्गी रङ्ग के कोपीन का एक छोर देखा। एक क्षण मे अदृष्ट हो गया। गौरी ने आकाश की ओर आखें उठाईं। वहां से थोड़ी सी बारीक बूंदें चली और उसकी झलझलाई आँखों मे समा गईं। वह भीतर के एक कमरे मे चली गई।

'भली घड़ी मे आये राजकुमार,'—गौरी की एक पडोसिन खीर का बर्तन उसकी ओर बढाती हुई बोली,—'आपके आते ही मेह ने बूँद टपकाईं!'

'मुझ से राजकुमार मत कहो, बहिन मैं तो एक छोटा सा विद्यार्थी ही हूं। तुम्हारी खीर नही लूगा क्योकि एक ही महीने के भीतर तुम्हारे यहा से दुबारा कुछ नही ले सकता हूँ।'

'तो थोड़ा सा खा लो। भूखे होगे। दोपहर बीत गये।'

'नही बहन!' भुवन आगे बढ़ा।

दूसरे द्वार पर एक स्त्री ने कहा, 'भुवन भाई, मैं मधुपर्क लाई हूं। धौरी और कबरी गायों के औंटे हुये दूध में बहुत सारी मधु मिला रक्खी है।'

भुवन ने इसे स्वीकार कर लिया और झोले मे से लोटा निकालकर भर लिया। एक घर से जौ का सत्तू मिला। ठिकाने से बांधकर और जो कुछ जहा से मिला लेकर आश्रम की ओर चला गया।

उसके हाथ से बर्तन छूटकर गिरा था! एक मैं हूं जो पत्थर का पत्थर ही रहा!! पर उसे डेढ वर्ष की अवधि मे दिन ही कितने रह गये होगे? अवधि पूरी हुई कि गौरी से सब कुछ खोलकर कह दूगा। वाह! गौरी सचमुच गौरी है!! वह कुछ गिनती, गिनता गुनत करता हुआ जा रहा था।

× × ×

उसी दिन धौम्य ने आरुणि को वार्त्ता शास्त्र के कुछ सूत्रों का अध्ययन और मनन करने का आदेश दिया और छुट्टी दी कि जङ्गल में जाकर कही भी जाकर अपना काम करे।

एक स्थान पर आरुणि अध्ययन चिन्तन में लीन हुआ था कि एक बच्चे की चीख पुकार सुनाई पडी। सूत्रो को वही छोड़ आरुणि दौड़ पडा। देखे तो भेडिया एक बालक को मुह मे दबाये जा रहा है। आरुणि चिल्लाकर भेड़िये पर जा टूटा। भेड़िये ने बालक को छोड़ दिया और अपने प्राण लेकर भागा। आरुणि ने भेड़िये को मारने के लिये एक बड़ा सा ढेला उठाया, पर भेडिया कतराकर जा रहा था, उधर बालक फिर चीखा। ढेले को वही डालकर वह उस बच्चे के पास आया। उठाकर देखा तो आहत न पाकर प्रसन्न हो गया। बालक की आयु चार पाच वर्ष की रही होगी। पानी पानी पुकार रहा था। और कुछ नही कह पाता था।

बालक सरूप नही था। बहुत मैला कुचैला। नाक और मुंह से उसके फेन बह रहा था। पानी वहां कही था नही। आरुणि तेजी के साथ आश्रम की ओर गया। भुवन गाव से लौट रहा था। आरुणि को अपनी बाहो में कुछ साधे आता देखकर एक बड़े पेड़ की आड़ में

छिपकर खडा हो गया। आरुणि के हाथों में बालक का फैन लिपटा हुआ था। बालक सुस्त पड गया था।

आरुणि के पीछे पीछे एक व्यक्ति दौड़ता हुआ चला आ रहा था। वह चिल्ला रहा था,— ओ भाई ! ओ भाई !!'

आरुणि खड़ा हो गया।

वह व्यक्ति हांफता हुआ आया। रो पड़ा,—'मेरा बच्चा ! मेरा मुन्ना !!'

बच्चा उसे देखते ही फिर चीखने लगा। बच्चे ने फड़फड़ाकर उस व्यक्ति की ओर अपने छोटे छोटे हाथ फैलाये। व्यक्ति ने झपट कर बालक को अपनी गोद मे भर लिया।

जब वह कुछ ठण्डा पड़ा, बोला,—मुनिराज ! आपने मेरे बच्चे को बचा लिया।'

'मैं मुनि-वुनि कुछ भी नही। विद्यार्थी हूँ।'

व्यक्ति ने एक हाथ आरुणि के पैर छूने के लिये बढाया। 'अरे नही जी ! यह मत करना। मैंने किया ही क्या है। भेड़िया पर दौड़ पड़ा तो वह भाग गया। बस तुम या कोई पास नही दिखलाई पड़े तो बालक को आश्रम मे लिये आ रहा था', आरुणि ने कहा।

'आपको कुछ भी देने लायक़ नही हूँ। इस कृपा को कैसे चुका पाऊँगा ?'

'वह कुछ नही। कुछ और कहना है ?'

'हाँ जी, मैं अछूत चाण्डाल हूँ। इस बालक के छूने से आपको प्रायश्चित करना पड़ेगा।'

आरुणि हँस पडा।

'तुम्हें और इस बालक के छूने से न जाने मेरे कितने मैल कट गये। इसे घर ले जाकर धुलाओ पोंछो।'

आरुणि पर असीसें बरसाता वह बालक को लेकर घर चला गया। आरुणि स्नान करने के लिये कुयें पर। भुवन धीरे-धीरे आश्रम में चला गया। वह अपने मन मे जो गिनती या गुनत करता आया था उसे भूलकर कुछ और सोचने लगा। आरुणि! आरुणि तुम धन्य हो!!

[४१ [

तीसरा पहर बीत गया। धौम्य कुटी के पास वाली वृक्ष कुञ्ज के नीचे विद्यार्थियों को शिक्षा दे रहे थे। सन्ध्या के पहले उन्होंने अन्य विद्यार्थियों को छुट्टी दे दी। वेद, कल्पक और भुवन को रोक लिया।

'आरुणि कहां है?' धौम्य ने पूछा।

वेद ने उत्तर दिया, 'कौन जाने गुरुदेव। अब तो वह बहुत छुट्टर हो गया है।'

कल्पक की ओर आंख उठाई तो वह बोला, 'मुझे तो वह बहुत कम मिलता है। उसका भविष्य अच्छा नही दिखलाई पड़ता।'

'तुम्हारा अनुमान क्या है भुवन?' धौम्य ने इससे प्रश्न किया।

उमङ्ग में भरकर भुवन ने कहा, 'देव, आरुणि जो कुछ करता है उसके वर्णन के ही योग्य मैं किस दिन हो पाऊँगा नही कह सकता। वह दोपहरी मे एक चाण्डाल के बालक की प्राण रक्षा करके लौट रहा था। बालक को गोद में लिये था। उसकी लार हाथों पर बह रही थी। धूल में सना था। नहाने चला गया। फिर क्या हुआ सो जानता नही।' भुवन ने पेड़ की आड से जो कुछ देखा और सुना था विस्तार के साथ सुनाया। उसी समय वहां आरुणि आ गया।

'कहां थे?' धौम्य ने पूछा।

आरुणि ने टालमटोल की,—'एक स्थान पर सूत्रों को मनन करते करते इधर-उधर चला गया। सूत्र वही छोड़ आया था। फिर ढूंढ़ने के लिये लौटा।'

धौम्य हँस पड़े।

'सूत्र मिले या नही?'

'नही गुरुदेव, भोजपत्र के पन्ने कही उड़ गये!'

'तुम व्यर्थ ही सङ्कोच में पड़े हो आरुणि। भुवन ने तुम्हारा कृत्य देखा है। अभी अभी उसने सुनाया। उन सूत्रों को खोकर भी तुम बहुत

पा गये। मैं प्रसन्न हूं। बिना उतना मनन किये ही तुमने वार्त्ता शास्त्र के रहस्य को समझ लिया है।'—धौम्य ने कहा। फिर वेद और कल्पक से—

'तुम्हारी समझ में कुछ आया ! कन्धों और पीठ पर बैलों का जुआँ रखने पर भी यदि मस्तिष्क मे चेतना और मेधा मे विवेक न आया हो तो कोई अन्य उपचार सोचूगा। वे दोनों धौम्य के चरणों मे गिर पड़े।

धौम्य बोले, 'गुरु के प्रति अन्ध श्रद्धा से सफलता प्राप्त नही होती। अब भी सुधरो और सम्हलो। जो आज्ञा पालने से न थके वही आज्ञा देने योग्य हो पाता है।'

वेद और कल्पक ने दृढ़ता के साथ प्रण किया कि वे मन और वचन से सुधार की ओर बढ़ेंगे।

किसी का थोड़ी दूर पर शब्द सुनाई पड़ा,—'राजन्,' महर्षि धौम्य का आश्रम यही है। वे रहे वहाँ।'

भुवन चौक पड़ा। पिता जी आये हैं क्या ? जब रोमक को देखा तो हर्षोन्मत्त हो गया। दौड़कर जाना चाहता था, परन्तु लगा जैसे किसी ने उसके पैर जकड़ दिये हों। फिर रोमक की क्षीण काया पर आँख घूमी। भुवन का मन बहुत उदास हो गया।

रोमक ने धौम्य को साष्टांग प्रणाम किया।

धौम्य ने आशीर्वाद दिया—'सुखी रहो।'

'बहुत दुखी हूँ देव। सुख की प्राप्ति के लिये ही चरणों मे आया हूँ।'

धौम्य ने आरुणि से आसन लाने को कहा। वह चला गया। रोमक ने भुवन के सिर पर हाथ फेरा। वह अपने आंसुओ को इधर उधर कर रहा था।

धौम्य ने कहा, 'आर्य, भुवन को आप छः वर्ष के उपरान्त देख रहे हैं। दुर्बल हो गया है। कहाँ तो अयोध्या के राज भवन में जल माँगने पर परिचारक दूध ले दौड़ते थे, गुड़ मांगने पर शक्कर देते थे, घोड़ा माँगने पर रथ सजा देते होगे और कहाँ आश्रम का कठोर जीवन !'

काँपते हुये स्वर में भुवन तुरन्त बोला, 'पिता जी, गुरुदेव ने मुझे पशु से मनुष्य बनने का मार्ग दिखलाया है।'

भुवन के जटाजूट और दाढी के घने वेगरे बाल देखकर और उसके स्वर मे इतनी गम्भीरता पाकर रोमक गद्गद हो गया। ग्रीवा, कन्धे, बाहु इत्यादि अङ्गों पर उभड़ी हुई नसें ऐसी जान पड़ी जैसे लोहे के जुड़े टुकड़ों पर ताम्बे की रस्सियाँ जकड़ी हों। हमारा भुवन बहुत शक्तिशाली होगा।—रोमक के गद्गद् ओज मे पुलक पर पुलक आये।

आरुणि आसन ले आया। रोमक ने भूमि पर ही बैठे रहने का निश्चय किया।

'कैसे आये आर्य ?' धौम्य ने विषय को स्थगित न करके प्रश्न किया।

स्वर को सम्भाल कर रोमक ने सीधा उत्तर दिया, 'देव, मैं यह नही ढूँढ़ पा रहा हूं कि मैंने कौन से पाप किये जिनका यह दण्ड भुगतना पड़ रहा है। चिन्ताओं के मारे जला जा रहा हूँ।'

'चिन्ताओं से बढकर मनुष्य का कोई भी शत्रु नही, और चिन्ता करने से ही संसार की कोई भी विपत्ति आज तक कभी नही टली।'

'देव, बहुत दिन हुये ऊषा के अस्पष्ट आगमन के समय आकाशवाणी सुनी थी कि शूद्रों को तपस्या और योग साधने देते हो ! महापुरुषों का अपमान करते हो !! आचार्य मेघ ने मुझे शाप दिया था। अकाल पर अकाल पड़े और पड़ते रहे है। समझ मे नही आता कि क्या करूं। कोई कुछ व्याख्या करता है, कोई कुछ।'

'आकाशवाणी नही हो सकती, किसी धूर्त का छल होगा। क्रोधियो के शाप से कुछ नहीं होता। और न उसको महापुरुष ही कहा जा सकता है। कउये के कोसने से ढोर नही मरता। शास्त्रो की गलत सलत व्याख्या को नही मानना चाहिये। पूर्व के ऋषियों को नमस्कार है, जिन्होने अज्ञान के अन्धकार को पार करने के लिये नये नये मार्गों का

निर्माण किया। उनके शब्द स्पष्ट हैं और सरल भी। उनसे उल्टा चलाने वालो की मत सुनो।'

'मेरी समझ मे नही आता देव। स्पष्ट व्यवस्था दीजिये, मैं तुरन्त उसे कार्यान्वित करूँगा।'

धौम्य भी उससे जल्दी निबटना चाहते थे।

'तुम्हारे भीतर तुम्हें क्या दिखलाई पड़ रहा है?'

'कभी कुछ कभी कुछ। शूद्र तपस्या कर रहे हैं यह एक तो मुझे स्पष्ट दीख रहा है।'

'और उनमे सबसे बड़ा कपिञ्जल है, यह भी जानते होगे?'

'कोई एक है। नाम नही आता स्मरण मे। क्या करूँ उसका और उस सरीखों का?'

'इनके दमन कर डालने पर राज्य के फिर से मिलने की आशा है?'

'है तो गुरुदेव। बहुत से लोग कहते हैं। अहङ्कारी क्रोधियों का शाप नहीं लगता यह आपने वता ही दिया है। अब शूद्रों वाले प्रसङ्ग पर भी आपकी ही व्याख्या मेरे लिये अन्तिम होगी।'

'अन्तिम व्यवस्था तो अपनी आत्मा की होती है। यदि तुम उचित समझो तो कपिञ्जल को मार दो। सब शूद्र तपस्या योग इत्यादि भयभीत होकर छोड़ देंगे। जो शूद्र इधर उधर उपद्रव कर रहे हैं वे भी दब जायेंगे!'

'पानी बरस पड़ने और अच्छे दिनों को लौटने की आशा फलवती होती दिखती है। मैं कपिञ्जल को मार दूंगा। मेरे और जनपद के का निवारण तो हो किसी प्रकार।'

रोमक सनक पड़ा। बड़े धौम्य के छोटे से संकेत पर उसकी कांक्षा, अनवरत कष्टों से किसी भी सरल सुगम मार्ग द्वारा भाग की सहज प्रेरणा, उत्तरोत्तर क्षीण हुये विवेक को दबोच जीभ पर आ बैठी। दिन भर का थका हुआ था ही।

काँपते हुये स्वर में भुवन तुरन्त बोला, 'पिता जी, गुरुदेव ने मुझे पशु से मनुष्य बनने का मार्ग दिखलाया है।'

भुवन के जटाजूट और दाढी के घने बेगरे बाल देखकर और उसके स्वर मे इतनी गम्भीरता पाकर रोमक गद्गद हो गया। ग्रीवा, कन्धे, बाहु इत्यादि अङ्गों पर उभड़ी हुई नसें ऐसी जान पड़ी जैसे लोहे के जुड़े टुकड़ों पर ताम्बे की रस्सियाँ जकड़ी हों। हमारा भुवन बहुत शक्तिशाली होगा।—रोमक के गद्गद् ओज में पुलक पर पुलक आये।

आरुणि आसन ले आया। रोमक ने भूमि पर ही बैठे रहने का निश्चय किया।

'कैसे आये आर्य?' धौम्य ने विषय को स्थगित न करके प्रश्न किया।

स्वर को सम्भाल कर रोमक ने सीधा उत्तर दिया, 'देव, मैं यह नही ढूँढ पा रहा हूं कि मैंने कौन से पाप किये जिनका यह दण्ड भुगतना पड़ रहा है। चिन्ताओ के मारे जला जा रहा हूँ।'

'चिन्ताओं से बढकर मनुष्य का कोई भी शत्रु नही, और चिन्ता करने से ही संसार की कोई भी विपत्ति आज तक कभी नही टली।'

'देव, बहुत दिन हुये ऊषा के अस्पष्ट आगमन के समय आकाशवाणी सुनी थी कि शूद्रो को तपस्या और योग साधने देते हो! महापुरुषों का अपमान करते हो!! आचार्य मेघ ने मुझे शाप दिया था। अकाल पर अकाल पड़े और पड़ते रहे है। समझ मे नही आता कि क्या करूं। कोई कुछ व्याख्या करता है, कोई कुछ।'

'आकाशवाणी नही हो सकती, किसी धूर्त का छल होगा। क्रोधियो के शाप से कुछ नही होता। और न उसको महापुरुष ही कहा जा सकता है। कउये के कोसने से ढोर नही मरता। शास्त्रों की गलत सलत व्याख्या को नही मानना चाहिये। पूर्व के ऋषियों को नमस्कार है, जिन्होने अज्ञान के अन्धकार को पार करने के लिये नये नये मार्गों का

निर्माण किया। उनके शब्द स्पष्ट हैं और सरल भी। उनसे उल्टा चलाने वालो की मत सुनो।'

'मेरी समझ मे नही आता देव। स्पष्ट व्यवस्था दीजिये, मैं तुरन्त उसे कार्यान्वित करूँगा।'

धौम्य भी उससे जल्दी निवटना चाहते थे।

'तुम्हारे भीतर तुम्हें क्या दिखलाई पड़ रहा है ?'

'कभी कुछ कभी कुछ। शूद्र तपस्या कर रहे हैं यह एक तो मुझे स्पष्ट दीख रहा है।'

'और उनमे सबसे बड़ा कपिञ्जल है, यह भी जानते होगे ?'

'कोई एक है। नाम नही आता स्मरण में। क्या करूँ उसका और उस सरीखो का ?'

'इनके दमन कर डालने पर राज्य के फिर से मिलने की आशा है ?'

'है तो गुरुदेव। बहुत से लोग कहते हैं। अहङ्कारी क्रोधियो का शाप नही लगता यह आपने वता ही दिया है। अब शूद्रो वाले प्रसङ्ग पर भी आपकी ही व्याख्या मेरे लिये अन्तिम होगी।'

'अन्तिम व्यवस्था तो अपनी आत्मा की होती है। यदि तुम उचित समझो तो कपिञ्जल को मार दो। सब शूद्र तपस्या योग इत्यादि भयभीत होकर छोड़ देंगे। जो शूद्र इधर उधर उपद्रव कर रहे हैं वे भी दब जायेंगे!'

'पानी बरस पड़ने और अच्छे दिनो की लौटने की आशा फलवती होती दिखती है। मैं कपिञ्जल को मार दूंगा। मेरे और जनपद के कष्टो का निवारण तो हो किसी प्रकार।'

रोमक सनक पड़ा। बड़े धौम्य के छोटे से संकेत पर उसकी महात्वाकाक्षा, अनवरत कष्टो से किसी भी सरल सुगम मार्ग द्वारा भाग निकलने की सहज प्रेरणा, उत्तरोत्तर क्षीण हुये विवेक को दबोच कर उसकी जीभ पर आ बैठी। दिन भर का थका हुआ था ही।

भुवन ने सिर नीचा कर लिया। वेद और कल्पक कन्धों से गर्दन सटाकर घौम्य की ओर टुकुर टुकुर देखने लगे। आरुणि स्थिर था। धौम्य ने दूसरी ओर मुंह फेर लिया मानो देख रहे हों कि सूर्यास्त के लिये कितना समय रह गया होगा।

फिर रोमक के प्रति उन्मुख हुये—

'कब और कैसे कपिञ्जल को मारोगे ?'

'बाण से। अभी। पर हां सन्ध्या होने वाली है। कही दूर होगा। बड़े भोर,—अभी तो थका हुआ भी हूँ।'

'हा सूर्योदय के उपरान्त कल। उस समय जब वह समाधि में हो।'

'जी।'

'परन्तु बाण का उपयोग मत करना। खड्ग का उपयोग कर सकते हो।'

'जो आज्ञा। सफल हो जाऊँगा आपके आशीर्वाद से...'

'यह आशीर्वाद नही है',—धौम्य का स्वर तो यथावत था, परन्तु आँख बहुत पैनी पड़ गई थी। रोमक ने सोचा उन आँखों में दृढ़ बने रहने का संकेत है। आशीर्वाद न सही प्रेरणा तो है।

भुवन ने सिर उठा कर धौम्य की तरफ दबी आँखों देखा।

धौम्य बोले, 'भुवन, स्थान बतलाने के लिये तुम इनके साथ चले जाना।'

'जो आज्ञा गुरुदेव',—भुवन का स्वर निर्जीव था।

अधमुंदी-सी आँखों धौम्य ने रोमक से कहा, 'आर्य, तुम जैसे ही यहां आये मैंने तुम्हारे स्नान जलपान इत्यादि के सम्बन्ध में कुछ भी न पूछकर पहले तुम्हारे मन के भीतर की जाननी चाही। अब भुवन के साथ जाओ। ठहरने के लिये एक अलग कुटी मिल जावेगी। भोजन के लिये है आश्रम मे भुवन कुछ ?'

'जी गुरुदेव। गाव से मधुपर्क और जौ का सत्तू ले आया था। गुड़ भी है।'

'अच्छा इन्हे ले जाओ।'

भुवन रोमक को लेकर चला गया। आरुणि इत्यादि संध्या कर्म के लिये चिन्तित दिखलाई पड़े।

'ध्यान देकर सुनो',—धौम्य ने कहा,—'संध्या कर्म की चिन्ता मत करो। कुछ कर्तव्य ऐसे हैं जो उससे भी अधिक महत्व के होते है। तुम तीनों ढाल और तलवार बांधकर कपिञ्जल की टेकड़ी पर गुप्त रूप से प्रातःकाल ही पहुंच जाओ। सूर्योदय होते ही कपिञ्जल समाधिस्थ हो जाता है। निकट ही कही उसकी रक्षा के लिये तैयार रहना—'

उन तीनों की नसों में बिजली कोंध गई। एक साथ ही उनके मुंह से निकला,—'जी।'

'सुनते जाओ—दिन चढ़े रोमक उसके वध के लिये पहुँच सकेगा। यदि तब तक रोमक की आत्मा का क्षीण विवेक सबल हो गया और उसने वध का संकल्प त्याग दिया तो बहुत अच्छा; यदि ऐसा न हुआ तो जैसे ही वह मारने के लिये तलवार उठाये तुम झपट पड़ना। तुम्हारे शरीर का चाहे कण कण कटकर गिर जावे, परन्तु कपिञ्जल का एक रोम भी बाका न होने पावे। जब रोमक को विफल और निष्क्रिय करलो, तब उसे बांधकर आश्रम पर ले आओ। साथ में सन की एक रस्सी लेते जाना। यदि भुवन अपने पिता की सहायता उस कुकर्म में करे तो उसे भी बांध लेना। आशा है कि वह ऐसा न करेगा। आवश्यकता पड़ने पर मुझे अपने से दूर नही पाओगे।'

धौम्य की बात को उन तीनों के रोम रोम ने पूरे ध्यान के साथ सुना। बड़ी उमङ्ग के साथ बोले,—'जो आज्ञा।'

जब वे चलने लगे धौम्य ने कहा,—'जब भुवन अपने पिता की सेवा से निवृत्त हो जावे रात के पहले पहर मे मेरे पास भेज देना।'

आठ नौ बजे रात के लगभग भुवन धौम्य की कुटी मे आ गया। वे अकेले थे।

'तुम उदास क्यों हो?'

'दिन मे भिक्षार्जन के लिये कुछ अधिक चलना-फिरना पड़ा। कुछ देर मे भोजन किया। और तो कुछ नही है गुरुदेव।'

'यदि तुम्हारे पिता ने प्रहार न कर पाया, क्योंकि कुछ निर्बल हैं यद्यपि उनमे उत्साह बहुत है, तो तुम क्या करोगे ?'

'गुरुदेव—' भुवन अकचकाया।

'निर्भय होकर बात करो। मैंने तुम्हे मा भैः का उपदेश दिया है। बतलाओ तुम उस परिस्थिति मे क्या करोगे ?'

'यदि उन्होने कपिञ्जल के वध मे मेरी सहायता माँगी तो शंका है कि मैं सन्न रह जाऊँगा।'

'कपिञ्जल के वध की योजना तो ठीक है न ?'

भुवन धौम्य के चरणों मे गिर पड़ा—

'मेरी और अधिक परीक्षा न ली जाय गुरुदेव !'

'उठो वत्स, तुम्हारा स्नातक होना न होना इसी प्रश्न के उत्तर पर निर्भर है। तुम्हारा सम्पूर्ण भविष्य भी। तुम अपने पिता के उत्तराधिकारी बन पाओगे या न बन पाओगे इस प्रश्न का उत्तर ही निर्धारित करेगा।'

भुवन खड़ा हो गया। सिर झुकाये हाथ जोड़कर बोला,—'क्षमा किया जाऊँ तो निवेदन करूँ।' उसका गला काप रहा था।

'मैं पहले ही कह चुका हूँ—मा भैः कभी मत डरो।'

भुवन का सिर सीधा हो गया। छाती तन गई। परन्तु हाथ जुड़े रहे। 'तो कहता हूं गुरुदेव कि कपिञ्जल के वध की योजना अधर्म मूलक है। कपिञ्जल के वध का समर्थन करते ही मेरी आत्मा टूट फूटकर बिखर जायगी। आपने मुझे आज तक जो सिखलाया है वह सब धूल मे मिल जायगा...'

फिर भुवन और भी उत्तेजित हो गया,—'चाहे मुझे आश्रम से निकाल दीजिये मैं समर्थन कदापि नही करूँगा।' उसका गला भर्रा गया था।

धौम्य ने उसे अङ्क में भर लिया—

'धन्य वेटा भुवन ! तुम वास्तव मे अब भुवन विक्रम होने जा रहे हो। स्नातक पद के योग्य तुम्हारा प्रतिबोध जाग्रत हो चुका है।'

भुवन की हिलकी बँध गई। धौम्य ने उसे शान्त किया।

जब उनके अङ्क से अलग हो गया तब बोले, 'राजा रोमक को कपिञ्जल के स्थान तक तो तुम्हें पहुँचाना ही पड़ेगा।'

'पहुंचकर तुरन्त लौट पड़ूंगा।'

'यदि उन्होने रुक जाने के लिये आग्रह किया तो ?'

'तो निवारण करने के लिये रुक भी सकता हूँ...... गुरुदेव, क्या यह योजना मेरे पिता की परीक्षा नही है ?'

'है। देखना चाहता हूं कि उनमे पद मोह अधिक है या धर्म मोह। सुधर पायेगे या नही। अभी उन्हें मेरा उद्देश्य मत बतलाना। कपिञ्जल को तुम चीन्ह तो लोगे ?' उसी ने तुम्हारे प्राण बचाये थे।'

'कैसे भूल सकता हूं। मेरा भी अनुमान था।'

'क्या किसी ने बतलाया है ?'

'बतलाया तो किसी ने नही अनुमान ने निर्णय पर पहुँचाया।'

'बात सच्ची है जाओ वत्स। तुम्हारे विवेक की जय हो।'

[४२]

सवेरा हो चुका था। आकाश में धुन्ध छाई हुई थी। क्षितिज के ऊपर सूर्य का गोला राख मे लिपटी कांसे की थाली जैसा प्रतीत होता था। हवा, धीमी चल रही थी।

धौम्य के आश्रम से दूर वन के एक भाग से कई पगडण्डियाँ भिन्न-भिन्न दिशाओं में गई थी। रोमक को भुवन यहाँ लाकर ठिठक गया। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे।

'अब कितनी दूर होगा वह स्थान ?' रोमक ने पूछा।

'कोई पाव योजन', भुवन ने क्षीण स्वर में उत्तर दिया।

'रात के तीसरे पहर से चल रहे हो इसलिये थक गये होगे। थोड़ा विश्राम करके चलो।'

'मेरी थकावट का कारण यह नहीं है पिता जी।'

'क्या बात है ?'

'पिता जी, इस कर्म को मत करिये। मेरा मन नही बोलता।' अब भुवन का स्वर उतना निर्बल नही था।

रोमक को आश्चर्य हुआ—

'बेटा, अब यह अनिश्चय कैसा ! रात मे तुम प्रसन्न दिखलाई पड़ रहे थे। अब इतने अनमने क्यो ? हम दोनों का, सारे जनपद का भविष्य इसी कर्म के फल पर निर्भर है। सारा जनपद निष्प्रभ हो गया है। राष्ट्र की वृद्धि करने वाले नटों और नर्तको के उत्सव बन्द हैं। साठ बरस के युवा अपने को बूढा समझने और कहने लगे हैं ! लोक गीतो में ओज नही रहा। बाण चलाने वाले योधाओं की प्रत्यञ्चा की अब टँकार नही सुनाई पड़ती ! अकाल पड़ रहे हैं। हमारा गया गौरव इसी कृत्य से तो लौटेगा। ठीक समय पर घबरा कैसे गये ? छुटपन मे सीखा हुआ वह सिद्धांत भूल गये हो क्या ?—पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में है तो विजय मेरे बायें हाथ में !'

'पिताजी उस सिद्धात के साथ एक तत्व और मिला हुआ है, जो मुझे इस आश्रम मे आने पर मिला—पुरुषार्थ दायें हाथ में हो। धर्म हृदय मे हो, तो विजय बायें हाथ मे रहती है। आप तो जानते ही हैं कि तपस्वी के पास—वह चाहे कोई भी हो देवता रहते हैं और देवगण तपस्वी को छोड़कर दूसरे के मित्र नही होते, फिर, यही वह सत्पुरुष है जिसने मेरे प्राणो की रक्षा की थी जब सुअर ने घायल किया।'

रोमक सन्नाटे में आ गया। भुवन उसकी ओर तिरछी गर्दन करके देखने लगा। बड़ी बडी आँखो में प्रार्थना, विनय, शील और आग्रह एक साथ आकर घुल मिल गये। सूर्य की मन्द किरणो मे रोमक ने भुवन की उन आँखों में झीने आँसू देखे। लाल डोरो मे भरे हुये और कुछ झलकते से भी। इसको गोद मे खिलाया है। इसकी बड़ी बड़ी बरौनियाँ अपनी आँखों मे भर लेता था। तुतलाता था। नटखट था। इसी मेरे इकलौते को उसने बचाया था जिसे मारने जा रहा हू। इसकी यह खिरबिरी दाढी और बड़े हुये केश क्या आज देखने को मिलते? रोमक का गला रुद्ध हो गया। शरीर कांपने लगा।

भुवन ने बड़े स्नेह और आदर के स्वर मे कहा, 'पिताजी, लौट चलिये। मेरी माता—मेरी जननी जब सुनेगी तब क्या कहेगी? पूज्य पिताजी, अधर्मयुक्त साधना से राज्य का प्राप्त करना आपको शोभा नही देता। उतने दिनो जिन शूद्रो का आप पक्षपात करते रहे, क्या उन्हे अब मिटाने जा रहे हैं? अपने बहुत बड़ो ने कहा है कि परमात्मा का भक्त शूद्र परमगति को प्राप्त करता है, यहाँ तक कि नीतिवान हरिभक्त चाण्डाल श्रेष्ठ से श्रेष्ठ द्विज से भी बढकर है।'

रोमक को चक्कर आ गया और सिर थाम कर बैठ गया। मुह से उसके निकला जैसे कोई और बोला हो,—'महर्षि धौम्य की व्यवस्था······?'

'आपकी आत्मा के विवेक की व्यवस्था। गुरुदेव ने इसी की ओर आपका ध्यान आकृष्ट किया था। पिताजी, अपनी गहराई में बैठकर

देखिये'—फिर भुवन ने ऊपर की ओर हाथ हाथ जोड़कर कहा,—'हे परमात्मन्......' और कुछ गुनगुनाने लगा।

रोमक यकायक खडा हो गया। उसने कमर से म्यान समेत तलवार खोली और झाडी मे फेंक दी। भुवन से जा लिपटा।

'सब कुछ छोड़ दूंगा, परन्तु तुम्हे और तुम्हारे द्वारा जगाये हुये विवेक को कभी नही छोडूँगा।'

थोड़ी देर बाप बेटे अपने अपने आंसू पोछते रहे।

भुवन ने कहा,—'अब आश्रम को लौट चलिये।'

'ऐसे नही बेटा। मुझे अब स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगा है। कपिञ्जल के स्थान पर ले चलो। उसके दर्शन करके फिर लौटूंगा।'

भुवन सहमत हो गया।

थोडी देर में दोनों कपिञ्जल के स्थान पर पहुंच गये। सूर्य कुछ और ऊपर चढ आया था। कपिञ्जल ध्यान-मग्न था। बड़े जटाजूट और घनी लम्बी दाढी। जिस पेड़ की छाया में बैठा था उसके डोलते हुये पत्तो मे होकर सूर्य की किरणें माथे पर पड़ रही थी मानो दमक को चमक मिल रही हो। जैसे वे झूमती हुई किरणे उसकी आरती उतार रही हो। वह टेकडी पर बैठा था। रोमक नीचे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसने धीमे स्वर मे प्रार्थना की,—'परमात्मा, मुझ गिरे हुये को पुनः ऊपर उठाओ! मेरे मन को कल्याणकारी संकल्प वाला बना दो!!

आरुणि, वेद और कल्पक कपिञ्जल की बगल में एक झाडी में छिपे अपनी अपनी तलवार पर हाथ रक्खे उकड़ूं बैठे हुये थे। उछल पड़ने को तैयार। उन्होंने एक दूसरे को देखा। तलवारो पर से हाथ हट गये। माथा टटोलने लगे!

भुवन ने रोमक के कान मे खुसफुस की,—'चलिये। उनका ध्यान भङ्ग न हो जाय।'

वे दोनों वहां से चल दिये।

जब वे उन पगडण्डियों के सङ्गम पर पहुँचे जहा भुवन ने बातचीत की थी । एक कुञ्ज के पीछे से धौम्य आ गये। रोमक और भुवन ने प्रणाम किया। भुवन रोमक के पीछे खड़ा हो गया ।

'आर्य अपना काम कर आये ?' धौम्य ने प्रश्न किया ।

'नही देव । मैंने नही किया और न कभी करूँगा ।'

'अब राज्य कैसे पाओगे ?'

'न मिले । छोड़ा मैंने । हम पिता पुत्र खेती कर खायेंगे । अपनी आत्मा के भीतर जो कुछ पा रहा हूँ वह संसार भर के राज्य से बढ़कर है ।'

'खङ्ग कहा डाल आये ?'

'मेरे उस बुरे संकल्प के कारण कलङ्कित हो गया था, इसलिये वन देवी के चरणों में पवित्र होने के लिये फेक दिया ।'

धौम्य ने रोमक के सिर पर हाथ फेरकर कहा, 'आर्य, तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये । मेरी व्यवस्था तुम्हारी परीक्षा के विधान की एक अङ्ग थी । जैसे ही संकल्प शुद्ध हुआ वह जड़ खङ्ग भी शुद्ध हो गया । उठा लो । वहां झाड़ी मे पड़ा है ।'

रोमक धौम्य के पैरो मे गिर पड़ा । जब धौम्य ने उठाया खङ्ग को धौम्य के बतलाये हुये स्थान से ढूंढ लाया । उसको आश्चर्य था—क्या ये सब देख रहे थे ?

धौम्य बोले, 'तुम यदि चाहते भी तो कपिञ्जल को मार नही पाते, क्योंकि वही आरुणि, वेद और कल्पक उसकी रक्षा के लिये नियुक्त थे ।

रोमक के रूखे होठों पर झीनी मुस्कान आई,—'और यह भुवन भी क्या इसीलिये मेरे साथ लगाया गया था, देव ? आपका दिया हुआ इसका विवेक बहुत जाग्रत हो गया ।'

यह उसकी निज की प्रेरणा थी जिसके द्वारा उसने तुम्हे चेताया । मैं तो निमित्त मात्र हूँ ।'

भुवन ने धौम्य के पैर पकड़ लिये ।

'उठो वत्स तुम्हारी परीक्षा समाप्त हो गई । आज से तुम स्नातक हो गये । दीक्षान्त और समावर्तन संस्कार आश्रम में होगा ।'

भुवन खड़ा हो गया । रोमक की सूखी आंखों में आसू उमड़ आये ।

धौम्य ने कहा, 'आर्य तुम्हारा गया गौरव तुम्हें फिर मिलेगा ।'

'परन्तु मेरे पाप ?'

'पाप हैं । उन्हे आश्रम मे चलकर बतलाऊँगा । जो तुम्हारे कान में अभी तक डाले गये है वे नही है, और उनका प्रायश्चित भी सहज है । चलो ।'

धौम्य ने आकाश की ओर आंख उठाई,—

'बहुत पानी बरसने के लक्षण दिखलाई दे रहे हैं ।'

[४३]

और जब वे सब आश्रम पहुँच गये तब पानी ने बरसना जो आरंभ किया तो बन्द होने का नाम नही ले रहा था।

रात के समय जब पानी बरस रहा था रोमक और भुवन धौम्य की कुटी में गये।

'आर्य,'—धौम्य ने कहा,—'तुमने अपने पापो के सम्बन्ध मे वहाँ उस समय प्रश्न किया था। अब उत्तर देता हूँ। राज करने वाले के पाप हैं—आलस्य, आगे की न सोचना, ठीक निश्चय पर न पहुंच कर परस्पर विरोधी विचारो के बीच मे झूलते रहना, वेट-वेगार लेना, खेती शिल्प धन्धो की सहायता न करना, शिल्प श्रेणियो का तिरस्कार करना, लुटेरो का न दबा पाना, लाखों निवर्तन भूमि अपनी खेती के लिये रख लेना और भूमिहीनों को मारे मारे भटकने देना, जनपद के कोष को अपना समझना, काम अधूरे छोड़ देना, मन मे लालच को बसाये फिरना।' रोमक के मन मे बहुत उत्साह था। जैसे-जैसे मेह की झड़ी लगती वैसे-वैसे उमङ्ग का प्रवाह सा उसके भीतर आ रहा था।

वोला, 'समझ गया गुरुदेव, समझ गया।'

'केवल समझने से ही क्या होगा? प्रण करो कि सौ बाहो से संग्रह करोगे तो सहस्र से बाँट दोगे। यहाँ से अयोध्या जाने पर पहला काम अपनी लाखों निवर्तन भूमि में से अपने लिये केवल थोडी सी ही रक्खो और शेष भूमिहीनों को बाँट दो। अपने मणि मुक्ताओ से जनपद की दरिद्रता दूर करो। जनपद की गई समृद्धि शीघ्र लौटेगी और राज्य की पुनः प्राप्ति में विलम्ब नही होगा। फिर निर्भय होकर धर्म और न्याय का पालन करना।'

रोमक ने प्रण किया।

रोमक दूसरे दिन ममता को आश्रम मे लाना चाहता था। वह भी भुवन के दीक्षात संस्कार का आनन्द प्राप्त करे।

परन्तु पानी थोड़ा सा ही रुक रुक कर तीन चार दिन बरसता रहा। चौथे दिन तीसरे पहर खुला तो सांझ से फिर बादल घिर आये। रात के समय जब उनकी कुटी मे रोमक, और आरुणि इत्यादि कुछ शिष्य बैठे थे, तब धौम्य ने कहा, 'आश्रम के उस खेत के बाध मे भीतर पानी बहुत भर आया होगा। बाध को टूटने से बचाना है। कुछ प्रबन्ध करो।'

आरुणि चुपचाप चला गया।

बिजली कड़क कड़क कर चमक रही थी। पानी कभी मोटी बौछारों कभी पतली फुहारो बरस रहा था। छोटे-छोटे और बड़े-बड़े नालो की तरह बलबलाते बह रहे थे। आरुणि ने देखा कि उस खेत के बांध के कोण पर से पानी की पतली सी धार रिपटती जा रही है। थोड़ी सी ही देर लगी कि कोण के ऊपर की मिट्टी को काटकर कोण को फोड़ डालेगी और फिर सारा बाध सङ्कट मे पड़ जावेगा।

आरुणि ने अपने हाथो बांध के नीचे से मिट्टी खोदकर कोण पर से जाने वाली पतली धार को रोकने के लिये रक्खी, परन्तु वह घुलकर बह वई। बिजली के प्रकाश मे आरुणि ने देखा कि हाथ की डाली मिट्टी तो बह गई है कोण का सिरा भी कटने लगा है और उसमें दरार पड़ गई है! आरुणि तुरन्त निश्चय पर पहुंचा और उसने पानी को रोकने एवं दरार को चौड़ा होने से बचाने के लिये वहा अपनी लम्बी चौड़ी देह अड़ा दी। बिजली और अधिक कड़की चमकी। आरुणि को लगा मानो इन्द्र की अप्सरायें बड़े-बड़े खड्ग लेकर गरज घुमड़ कर इन्द्र के शत्रुओ पर टूट पडी हो। थोड़ो देर मे वह थमा और बादल खुले, परन्तु आरुणि वही अड़ा पडा रहा। कीचड, मटीला पानी, घास के तिनके बार बार उससे टकरा रहे थे। वह त्योरी चढ़ाये भी हँस लेता था।

रोमक इत्यादि जब अपनी अपनी कुटी में चले गये और धौम्य ब्रह्ममुहूर्त में उठे तब उन्होने आरुणि को कई बार पुकारा। आरुणि

उत्तर देने के लिये अकुलाया छटपटाया, परन्तु न तो वहा से हटा और न उसने कोई उत्तर दिया। वह दिन चढ़े तक पानी को वैसे ही रोके जहां का तहा पड़ा रहा।

रोमक, भुवन वेद, और कल्पक को लिये धौम्य वहा पहुंचे। आरुणि खेत के बांध को निस्संकट समझ कर खड़ा हो गया। उत्तर न देने के लिये गुरुदेव से क्षमा माँगने लगा।

'यह तुम्हारी अन्तिम परीक्षा थी आरुणि। तुम स्नातक हो गये',—धौम्य ने कहा,—'क्षमा मागने की कोई बात नही। तुम अपना कर्तव्य छोडकर मेरे पास भागे चले आते तो, वह गुरू के प्रति तुम्हारी झूठी निष्ठा होती। ऐसी निष्ठा से गुरू और शिष्य—दोनों—गड्ढे मे गिर जाते हैं। तुम कर्मशील और ज्ञानी होगे और भुवन विक्रम कर्मशील राजयोगी।'

रोमक हर्षमग्न होकर बोला,—'समाज को हानि पहुँचाने वाली पुरानी परम्पराओ और रूढियो को आप तोड़ते हैं तो विलकुल ठीक ही करते हैं।'

आश्रम भर मे ओज की लहर दौड़ गई।

आकाश मे थोड़े से ही बादल दौड़-धूप कर रहे थे। सूर्य की किरणें प्रखर थी। रोमक ममता को आश्रम मे ले आने के आग्रह मे था। परन्तु कीचड़ इतना सलसला रहा था कि दो दिन पानी न बरसने पर भी उसको रुक जाना पड़ा।

[४४]

नैमिषारण्य में हर साल पानी थोड़ा-बहुत बरस जाता था, परन्तु तेरहवी साल मे तो मूसलाधार बरसा। जब खुला तो कई दिन के लिये खुल पड़ा। नर-नारी उमङ्गो मे लहरा उठे। बाँसुरी बजाने लगे और नारियाँ मङ्गल गीत गाने लगी !

बादल खुलने के दो ही दिन पीछे धौम्य खेड़े में समाचार आ गया कि अयोध्या मे भी ऐसा ही पानी बरसा है। गौरी के माता-पिता ने चलने की तैयारी कर दी। थोड़ा-सा अन्न, कुछ कपड़े, धातु के पाँच-छः बर्तन, और मजूरी मे चार गायें भी कमा ली थी। धौम्य खेड़े में जैसे कुल साधन थे और उन तीनो मे जितना शारीरिक बल था, अनुपात में यह कमाई पर्याप्त थी। राजा से जो अन्न-वस्त्र उधार लिया था उसे बात की बात में लौटा देंगे। उनका निश्चय था।

अम्बिका उसके घर आई। गौरी को दूसरे दिन अयोध्या की यात्रा करनी थी। दोनों अकेले मे बैठकर गाने लगी। गौरी गाते गाते रो पड़ी।

'यह क्या ?' अम्बिका ने उसे गले लगाकर कहा,—'कभी तो मैं तुम्हारे घर आऊँगी। तुम्हारे ब्याह में—'

गौरी तुरन्त सचेत हुई,— क्या कह रही हो अम्बिका !'

'अरी वह भी पखवारे-अठवारे मे अयोध्या पहुँचेंगे।'

'सो ?···कैसे जाना ?·· फिर ?···'

'सो और फिर की तो तुम जानो। पर यहाँ किसी से तुम्हारे प्रेम की बात नहीं छिपी है।'

'उसकी चर्चा ही क्या···कौन किसको पूछता है। बड़े लोगों को छोटों की क्या पड़ी ?'

'अरे ! मैं अब समझी !!'

'क्य: ? बतलाओ अम्बिका यदि बतलाने योग्य हो तो···'

'तुम्हें नही मालूम ?'

'क्या ? बतलाओ भी न...'

'बहुत दिन हुये गुरु ने उनको निषेध कर दिया था—तुम्हारे राज कुमार को...'

गौरी ने उसे झझोड़ डाला—'बतावेगी भी या यों ही बके जायेगी ?'

'धौम्य गुरु हैं ही बड़े विचित्र, उनको निषेध किया था कि गाँव में भिक्षा मागने के समय किसी से सिर उठाकर न बोला करो, और न जाने क्या क्या।'

'और क्या क्या भली सी अम्बिका ? तुमने पहले कभी नही कहा !'

'कोई बड़ी बात न थी, क्या कहती। विचार ही नही उठा। तुम्ही ने क्यों नही पूछा ?'

'मैं भला क्या पूछती ?'

'तो मैं यों ही बक बक करती फिरती ! गाँव में सुना था। उनसे तो पूछने मैं गई नही। तुम्ही से न बोले होगे। गाँव में कुछ नर-नारियों से बात करते तो मैंने सुना है।'

'एक बार जङ्गल मे मिले तो मुंह मोड़कर ऐसे भागे जैसे मैं प्रेतिनी हूँ !'

'उनके माथे के भीतर कुछ गड़बड़ हो गई होगी। बहुतेरो के हो जाती है।'

'इसी की शङ्का मुझे है। मैं तो कल जाऊँगी। मिलें तो नमस्कार या जो कुछ ठीक समझो कह देना।' गौरी ने लम्बी सास छोड़ी।

[४५]

पानी तो फिर कई दिन नही बरसा, किन्तु रोमक को मार्ग अपनी यात्रा के योग्य नही जान पड़ा। जब सूखे के छः सात दिन निकल गये रोमक ममता को ले आने के लिये बाहर निकल सका। इन दिनों भुवन उसकी सेवा में रहा।

जब रोमक चला गया, धौम्य ने भुवन से कहा, 'अब तुम गांव में जाकर लोगों को धन्यवाद दे आओ जिनके कल्याण की कामना करते हुये भिक्षा के लिये जाते थे।'

भुवन चाहता ही था। आज सिर उठाकर बात कर सकूँगा, अकेले मे सब बातें समझा सकूँगा-नही अकेले में बात तो दीक्षान्त संस्कार के उपरान्त ही करूंगा, तो भी, तो भी—

भुवन अपने उसी पुराने वेष मे धौम्य खेड़े मे गया। कल्याण कामना के वे ही शब्द। आज उसके उल्लास का ठिकाना न था।

गौरी के घर के सामने गया तो किवाड़ बन्द! पड़ौस की कुछ स्त्रियाँ खाद्य सामग्री लेकर अपने अपने द्वार पर आ गईं। वह सांस भर कर उसके सामने पहुँचा, परन्तु उसने भीख नही ली।

सिर ऊंचा करके बोला, 'बहिनो, आज तो आप सबकी असीस लेने ही आया हूँ। मैं स्नातक हो गया हूँ। अब भीख नही लूंगा।'

एक ने पास आकर कहा, 'तुम्हारा कमण्डल तो रीता है भैया...'

'उसमे आप सब की असीसें भर ले जाऊंगा जिनके सहारे जनपद की सेवा कर सकूं।'

'ठहरो। हम कमण्डल में कुछ तो डालेंगी।'

घर मे एक दौड़ी गई। थोड़े से फूल ले आई और कमण्डल में डाल दिये।

'सदा सुखी रहो भैया भुवन।'

अम्बिका कुछ दूर से देख रही थी।

जब उसके सामने पहुँचा तो उसने एक गजरा भुवन के कमण्डल को पहिना दिया और धीरे से बोली, 'आज गौरी यहाँ होती तो तुम्हारे गले में न जाने काहे का हार डालती !'

'कहाँ गई ?' बहुत दवे स्वर मे भुवन ने पूछा।

'कल अपने माता-पिता और चार गायो के साथ अयोध्या। तुम्हें नमस्कार कह गई है, भैया।'

'और कुछ बहिन अम्बिका ?'

'और न जाने कुछ'' ' वह आगे नही बोल सकी, क्योकि गाँव के स्त्री-पुरुष और बालक उसे घेरने आ गये थे।

भुवन अपने भीतर की उदासी को ऊपर की प्रसन्नता और हँसी से ढकने का प्रयास कर रहा था। कभी अकेली प्रसन्नता रह जाती थी, कभी अकेली हँसी। और कभी वह खोया खोया-सा लगता था।

सव का आशीर्वाद-लेकर भारी पैरों आश्रम की ओर लौट पड़ा। आगे उसे इस गाँव मे नही आना था।

[४६]

भुवन सीधा आश्रम को नही गया । स्वच्छन्द हो गया था । उस स्थान का मूक आशीर्वाद लेने की मन मे लालसा उत्पन्न हो गई जो उसके मन मे बसा हुआ था। वह उस टेकड़ी पर गया, परन्तु अधिक समय तक न ठहर सका। फिर उस झाड़ी के पास पहुँचा जहा से उसने गौरी को पहले पहले टेकड़ी की ओर आते देखा था।

उस झाड़ी पर कमण्डल के सब फूल डाल दिये और उसके सिर को माला पहिनादी जो उसे अम्बिका ने दी थी। आँख मूँदकर एक दो क्षण कुछ सोचता रहा। फिर तुरन्त चला आया।

उस दिन सन्ध्या समय फिर पानी बरसा।

गौरी और उसके माता पिता नैमिषारण्य के कष्ट साध्य मार्ग को धीरे धीरे पार करके एक गाँव के पास आये जिसके आगे एक नदी थी। नदी चौड़ी न थी। बीच बीच मे छोटे छोटे वृक्षाच्छादित द्वीप थे। दो तीन पतली सी धारें थी। उस पार दूर एक गाव था।

इस किनारे के गांव के निकट आये तो देखा कि नदी के उद्गम की ओर घूमरे घने बादल उठ रहे हैं और उनमे बिजली कोंध रही है। गौरी के पिता ने सोचा गाँव में पानी पीकर नदी पार करके उस ओर के किसी गाँव मे रात भर विश्राम करेंगे और भोर चल देंगे। पानी बरसा तो रात को बरसता रहे, वैसे बहुत बरसने के लक्षण हैं नहीं। और आगे कोई ऐसी नदी जो अयोध्या की यात्रा मे बहुत बाधक हो सके। गाँव वालों ने समझाया तो गौरी का पिता नही माना। होते करते सांझ आई। बादलो के पर्त पर पर्त पड़ने लगे पर बरस नहीं रहा था।

एक ने कहा, 'बूढे बाबा, ऊपर की ओर बहुत बरस रहा है। हमारे गाव में ही अतिथि रह जाओ।'

गौरी के पिता ने नही माना। वे सब चल पड़े।

उसी छोटी सी नदी की धारा में फेन पर फेन आ रहे थे। बूंदें टपटपा उठी। गायें इधर उधर होने लगी। उन्हें कभी गौरी सम्भालती कभी उसकी मा। तीनो के सिर पर सामान का एक एक बोझ था ही। जब बीच के टापू के पास ज्यो त्यो करके पहुँचे तब धार में यकायक बाढ़ आ गई। पानी गले गले तक हो गया। टापू पर पहुंचे कि वहां भी प्रवाह जा पहुँचा। गायें हाथ की न रही। गौरी की माँ बहुत जोर जोर से सहायता के लिये चिल्लाई। कुछ गांव वाले नदी के किनारे तक दौड़े आये, परन्तु सन्ध्या हो गई और अन्धेरा फैल गया था। नदी ने दोनों किनारे दाव लिये। पानी मूसलाधार बरस उठा। रात लग गई। फिर उन गाँव वालो को टापू पर से कुछ नही सुनाई पड़ा। और न कुछ दिखलाई पड़ा। बिजली की कड़क कोध मे भी वे सिवाय मेह और नदी की धार के और कुछ नही टटोल पा रहे थे। निराश होकर लौट आये।

बेचारी गायें बह गईं। सामान पहले ही जा चुका था।

गौरी ने टापू के एक पेड की डाल पकड़ी बाढ मे जो चल विचल हो रही थी। उसके माता पिता बहने और डूबने उतराने लगे। पिता के केवल ये शब्द कान मे पड़े,—'रिन चुकाना बे··टी·· ई—।' फिर उसे न माँ दिखलाई पड़ी और न पिता।

उस डाल को पकड़े अटकी हुई थी। कमर को चक्कर काटता हुआ बाढ़ का पानी चला जा रहा था। पानी बरस रहा था। बादल कड़क रहा था। बिजली चमक रही थी।

धौम्य के आश्रम की ओर भी बूंदाबादी हुई, किन्तु थोड़े ही समय बादल मंडलाते तो रहे, वैसे घनघोर नही बरसे। चौथे दिन रोमक ममता को लेकर आ गया। साथ मे कुछ अनुचर भी थे।

उसी दिन समावर्तन और दीक्षात संस्कार हुये। समारोह निकटवर्ती कुञ्ज के नीचे था। भूमि कही गीली थी कही सूखी। विद्यार्थी और अध्यापक तो एकत्र हुये ही, आसपास के गावो की जनता भी उत्सव देखने के लिये आई। कुछ लोग पलाश के पत्ते बिछा-बिछाकर बैठ गये,

बहुत से खड़े रहे। प्रसन्नता छाई हुई थी। केश–क्षौर, स्नान, वस्त्र परिवर्तन इत्यादि के उपरान्त स्नातकों ने वादरमणि* बांधी। होम और मन्त्रपाठ हुआ। आरुणि और भुवन को अर्घ्य मिला। उन्होने अर्घ्यप्राप्त करने के पहले अलग अलग कहा,—'मुझे प्रजाजन का प्रिय और पशुओं का अधिपति वनाइये। मैं जीवन के संघर्षों को सहने और उनपर विजय प्राप्त करने की शक्ति पाऊँ।'

धौम्य एक ऊंचे मञ्च पर जा वैठे जो एक सिरे पर लगा दिया गया था। उनके हाथ मे एक छोटी-सी पोटली थी। उन्होने अपने पास मञ्च पर रखली। बोले,—'मैं थोड़ी बात कहना जानता हूँ। वहुत वकवास का मूल्य ही कितना ? एक जोड़ी कान ही न ? एक कान ने सुनी और दूसरे ने निकाल दी ! केवल इतना ही कहना है कि विवेक के साथ प्राचीन को जानो–पहिचानो और समझो; वर्तमान को भलीभाति देखो-परखो और उसमें चलो; और, भूत तथा वर्तमान दोनों की सहायता से भविष्य को प्रवल वनाओ। भय और वाधाओ के सामने कभी न झुको। जीवन की लहरों पर दृढता के साथ आरूढ रहो। जो कुछ आश्रम में सीखा है उसे पुरुषार्थ के साथ सत्य शिव और सुन्दर की दृष्टि से कार्यान्वित करो। आरुणि और भुवन, तुम स्नातक हो गये। तुम्हे वीर सन्तान, संग्रामों में विजय और जीवन मे प्रचुर सुख मिले।'

फिर उन्होने भुवन को अपने निकट वुलाया और उस पोटली को खोला। पोटली मे से छ वरस पहले के वने कुर्ते और कन्चुक उसे दिये। मुस्कराकर कहा,—'पहिनो।'

'जी गुरुदेव', – भुवन सङ्कोच के साथ हँसने लगा,—'ये तो बहुत ओछे पड़ गये हैं।'

भुवन ने वस्त्रों को फैला–फैलाकर दिखलाया।

---

*वादरमणि = वेरी की लकड़ी का गुरिया।

रोमक एक पोटली लिये धौम्य के पास आया और बोला, 'भुवन की माता ने ये हाल ही बनाये हैं। इसकी बढ़ी हुई देह के लिये ये उपयुक्त बैठेंगे।'

'इन्हें पहनो भुवन, 'धौम्य ने मुस्कराकर कहा।

समारोह के पेटे मे व्याप्त उत्साह ने भुवन को कुलबुला दिया मन में सङ्कोच और हँसी का सङ्ग चलने लगा। भुवन ने नये वस्त्रों को भी एक एक करके पहिना। कोई ओछा वैठा कोई ढीला। दर्शक हँस रहे थे। वह भी हँस जाता था। जनरव बढ़ा। धौम्य ने हाथ के सकेत से शान्त किया और बोले,—

'पुराने कुर्ते और कन्चुक इत्यादि देखने में तो अच्छे लगते हैं और पुराने होने के नाते पुरानी स्मृति को सुहावना भी बना देते हैं, परन्तु बढ़ी हुई देह के लिये ओछे पड़ जाने के कारण पहिने नही जा सकते—या तो फट-फटकर तार तार हो जायेगे या देह को जकड़ते दुखाते रहेगे। हा, उनमे बुने हुये सोने-चाँदी के तार और पिरोये हुये हीरे-मोती नये वस्त्र बनाने के काम में आ सकते हैं। बिना ठीक नाप-तौल के नये वस्त्र भी या तो ढीले वैठते हैं या ओछे पड़ते है। ये भी व्यर्थ जाते हैं और हँसी का कारण बनते हैं। यही बात पुराने और नये शास्त्रों के उपयोग प्रयोग के लिये भी लागू है। समझ गये न ?'

'समझ गई, महर्षि', सबसे पहले ममता ने कहा।

फिर और लोगों ने भी स्वस्ति की।

अन्त मे सब ने मिलकर वह गीत गाया जिसका अर्थ है, 'हम सब सदा नाना प्रकार सत्कर्म करते हुये, स्वस्थ और अदीन बने रहकर सौ-सौ बरस जियें, देखें और सुनें।'

दूसरे दिन रोमक, भुवन, ममता और अपने अनुचरों के साथ अयोध्या चल दिया। धौम्य ने वेद को अयोध्या तक पहुंचा आने के लिये साथ लगा दिया।

चलते समय धौम्य ने रोमक से फिर कहा,—'सौ हाथों इकट्ठा करो और सहस्र हाथो बाटकर जनपद की कठिनाइयों को दूर करो…'

[४७]

उस रात गौरी पर क्या और कैसी बीती यह या तो नदी की भड़भड़ाती फनफनाती बाढ जानती थी या बादलो की तड़क चमक, मेह की बौछारे, सनसनाती और ठिठुराने वाली आधी, सिमिट-सिमिट-कर बह बह आने वाली टूटी डालिया, तिनको के पुञ्ज, प्रवाह के फेन या उस पेड की शाखाओं की गुथी हुई बाहे, जिनमें वह जकड़ी हुई अचेत-सी पड़ी रही, जहाँ उसका जीवन मृत्यु से संग्राम कर रहा था।

आधी रात के उपरान्त बरसना बन्द हो गया और आकाश मे बादल जैसे आये थे वैसे चले गये। प्रातःकाल होते होते नदी का पूर बिलकुल कम हो गया। सूर्योदय के समय गौरी सचेत हुई। जीवन ने मृत्यु पर विजय पाई। वह जिस पेड़ की डालियों में थी उसके नीचे कीचड़ तो था, पर पानी नहीं था उसपर पद-चिन्ह किसी के नही थे। कल्पना असम्भव पर गई—गायें गई, तो गईं, माता-पिता शायद पार लग गये हों, आगे के गाँव मे पहुंच गये हों।

गौरी गठरी की तरह पेड़ के नीचे की कीचड़ पर गिर पड़ी और उसमें लतपत हो गई। कठिनाई के साथ धीरे धीरे बढ़ी और नदी की धार को कमर कमर पार किया। उठती-बैठती उस पार के गाँव में पहुंची। सूर्योदय हो चुका था।

उसकी दुर्गति देखकर गाँव के नर-नारियों को बड़ी दया आई। अतिथि के सत्कार की वैसे भी परम्परा थी, गौरी को एक घर में आश्रय मिल गया। उसके माता-पिता का कोई पता नही चला। गायें मरी गड़ी पाई गईं। गौरी को तीव्र ज्वर हो आया। उसके आश्रयदाता ने पूरी सेवा-सुश्रूषा की। वह दो-तीन दिन में फिर खड़ी हो गई। मोटे-झोटे वस्त्र बदलने पहिनने को मिल गये! अब? आगे? उसका कोई नहीं था! वह अनाथ हो गई थी!! गाँव वालों ने उसे बहिन-बेटी की तरह

रखने का भरोसा दिया। दुर्भाग्य की बात सोचकर वह अपना मन मारने पर लग गई।

गौरी गाँव में किसी का सेंतमेंत नही खाना चाहती थी। श्रम का अभ्यास था ही, जितनी और जो कुछ मजूरी मिली अपना पेट पालने लगी। वह किसी को अपना पूरा हाल नही बतलाना चाहती थी। पूरा वृत्तान्त सुनने का वहाँ बहुत कुतूहल था भी नही। पानी बरस जाने के कारण लोग अपने अपने कामो पर पिल पड़े। लगातार अकालो मे वैसे ही बहुत से नर-नारी और पशु मर चुके थे, दो-चार और यों चल बसे तो किस किस का रोना रोते फिरें ?

[४८]

'नदी तो बहुत छोटी है और धारें भी पतली, सहज ही निकल जावेंगे',—रोमक ने गाँव के उन लोगों से कहा जो उस नदी तक उसे ममता और भुवन को पहुँचाने के लिये तीर पर इकट्ठे हो गये थे। उसके रथ और अन्य जन पिछले गांव मे थे उनको लेकर वह दो दिन में यहाँ तक धीरे धीरे आ पाया था। नैमिषारण्य पीछे दूर छूट गया था।

गाँव-वालों ने अपनी नदी का सम्मान बढ़ाया,—'देखने में तो छोटी सी है हमारी यह नदी, पर है बड़ी भयंकर! जब इसमें बरसा का पूर आ जाता है तब बहुत प्रचण्ड हो जाती है······'

'अभी पाँच-सात दिन ही हुये होंगे कि तीन जन और चार गायें इसकी बाढ़ में बात की बात में बह मरे।'

'कौन-?' भुवन ने तुरन्त प्रश्न किया।

'एक लड़की और बूढ़ा-बुढ़िया। नैमिषारण्य से आ रहे थे बिचारे···'

'नाम?' सहसा भुवन के होठों से छूटा।

'नाम···नाम का क्या पता···हाँ एक का मालूम है···बूढा बुढ़िया लड़की को भोरी···धोरी···गौरी या ऐसी ही कुछ कहते थे···बड़ी भोली थी। उन लोगों को बहुत रोका पर माने ही नहीं। धार में घुस पड़े। पानी यहाँ तो थोड़ा-सा ही था, किंतु ऊपर कहीं बहुत बरसा था। एकदम बाढ आ गई। सांझ हो गई थी। रात भर बरसता रहा···'

'कदाचित बच निकले हों आगे जाकर',—रोमक को आशा थी।

'जी नहीं बूढ़े-बुढ़िया को थोड़ी-सी ही दूर इसी किनारे दूसरे दिन दोपहर के समय मरा पाया तो हम लोगों ने उनका दाह कर दिया।'

'और वह लड़की?' वेद ने पूछा।

'लड़की भला बच सकती थी! कहीं आगे जाकर मर गई होगी, जंगली जानवर खा गये होगे।' भुवन को लगा जैसे कलेजे में छुरी जा छिदी हो।

'और इतना तड़कता-गरजता रहा जैसे अकालों के दैत्य की छाती फोड़ने के लिये इन्द्र अपना वज्र चला रहे हों', उस गांव के एक मुखिया ने कहा।

भुवन तिलमिला कर पीछे हट गया। कुछ लोग रथो के आगे आगे नदी मे धँस गये। धार उथली थी। पार करने में कठिनाई नही हुई। भुवन पीछे रह गया। वेद ने उसके निकट जाकर धीरे से कहा,—'इतना खिन्न होना व्यर्थ है। जो हो गया सो हो गया।'

'हूँ।' भुवन कुछ और न कह सका।

वेद उसे साथ लेकर आगे बढा। इस गाँव के लोग पीछे लौट गये। जब ये सब कुछ घण्टे पीछे उस गांव के पास पहुंचे जहां गौरी को आश्रय मिला था, गाँव के बाहर जनता की भीड रोमक का स्वागत करने के लिये इकट्ठी हो गई। मोटे कपड़े पहिने गौरी स्त्रियों में सबसे पीछे खड़ी थी। स्त्रियां सिर पर कलश धरे मङ्गल गीत गा रही थीं। गौरी चुप थी।

भुवन रथ पर अनमना बैठा था। गौरी उसे देख रही थी इन्हें अब क्या है? भुवन देखते हुये भी कुछ नही देख पा रहा था।

रोमक ने चलते समय गाव वालो से कहा,—'तुम सबकी भलाई के लिये कोई कसर नही लगाऊँगा। किसी दिन यहां फिर आकर अपने किसानों की वज्र छातियो पर फूल बरसाऊँगा।'

गाव वालों के स्वागत-सत्कार को देखकर रोमक को लगने लगा कि राज्य की पुनः प्राप्ति मे बहुत कठिनाई नही पड़ेगी। धौम्य का उपदेश भी उसे स्मरण था।

[४९]

रोमक इत्यादि के चले जाने पर गौरी को अयोध्या की और भी कही की,—याद पर याद आई। जीना तो है ही, अयोध्या से क्यो इतनी दूर पडी रहूँ ? गांव मे दूसरे के घर पडी रहकर कितना और क्या कर पाऊँगी ? भोजन चाहिये, कपड़े चाहिये—काम सदा मिल नही सकेगा। नैमिषारण्य मे लौट कर नही जाऊँगी चाहे अम्बिका ही क्यो न बुला रही हो। अयोध्या में अपना घर है। मजूरी भी मिल जायगी। और ? और—उनके माथे का चक्कर कभी तो ठीक होगा। चक्कर ही था या कुछ और ? इतनी दूर से कभी न जान पाऊँगी। अयोध्या मे रहकर देख सकूंगी—न भी देख पाऊँ तो उनके विषय मे सुनती तो सब कुछ रहूँगी। दो तीन दिन पीछे गौरी ने अयोध्या जाने का निश्चय कर लिया।

जिसके यहा ठहरी हुई थी उससे विनती की,—'भैया, यहां से अयोध्या बहुत दूर है। घर जाना चाहती हूँ। क्या वहा तक पहुंचा देने की कृपा करोगे ?'

किसान ने तुरन्त उत्तर दिया,—'हा बहिन, पहुंचा दूंगा। अपनी बैलगाड़ी से ले चलूंगा।'

'मैं तो पैदल ही चल सकती हूँ।'

किसान हँसा—

'मैं तो पैदल नही चल सकता।'

'यहाँ बैलो के बिना काम नही रुका रहेगा ?'

'जितना करना था कर लिया। तुम्हे अयोध्या पहुंचा आना भी तो एक काम है', किसान की स्त्री ने कहा।

किसान अपनी बैलगाड़ी से गौरी को अयोध्या ले गया। मार्ग अच्छा नही था। अयोध्या पहुंचने मे सात-आठ दिन लग गये। रोमक पहले ही आ चुका था।

गौरी ने जब अपना घर देखा तो विकल हो गई। घर के चिन्ह भर रह गये थे। केवल एक कोठरी टूटी-फूटी हालत में बची थी।

'घर मे तो कुछ नही रहा। खण्डहल हो गया है', गौरी कठिनाई से मुह खोल सकी।

किसान बोला, 'लौट चलो बहिन। यहां से तो अपना वह गांव अच्छा।'

'नही भैया, लौटूंगी नही। तुम जाओ। कहीं न कही कोई नौकरी चाकरी मिल जायगी।'

किसान अछताता-पछताता चला गया। गौरी ने अपनी पोटली—उसमे दो-तीन कपड़ों के सिवाय और था ही क्या—उस टूटी-फूटी कोठरी में रख दी और एक कोने में बैठ गई। घुटनो पर सिर टेक लिया और टेके रही। अब कहा जाऊँ? उनके पास? भिखारिन बनकर! छि:!! नौकरी के लिये? नौकरी के लिये उनके घर! उन्होने एक प्रतिज्ञा मेरी माँ के सामने की थी। अब माँ नही रही। और उस, उतनी बड़ी प्रतिज्ञा के बाद ही उनका वह हाल हो गया था! मेरा उन्होने जान-बूझकर तिरस्कार किया था। कई बार। क्या जान-बूझकर? ऐसा तो नही हो सकता। तब माथे भीतर का कोई रोग होगा। धौम्य के निर्दय आश्रम ने उनका वह हाल कर दिया! अब समझी। पास पहुंच जाऊँ तो सेवा, बहुत सेवा कर सकूं। पर मैं तो वैद्य हूँ ही नही। अयोध्या मे अनेक वैद्य हैं। वह एक दिन अवश्य ही स्वस्थ हो जायेंगे। परन्तु अभी उनके सामने जाऊँ तो फिर तिरस्कार होगा। वह न भी करें तो उनके माता-पिता करेंगे। ऐसी फटियल लड़की को घर में घुसने तक न देंगे। तो क्या दुर्भाग्य सदा मेरे पीछे पड़ा रहेगा? असम्भव। असम्भव। मेरे भी अच्छे दिन लौटेंगे। तो इस समय क्या करूं? आज के खाने भर को अन्न पोटली मे है। इधर-उधर कभी इसकी और कभी उसकी मजूरी करने से कोई बंधी नौकरी कर लेना अच्छा होगा। किसकी करूं? ढूढ़ते फिरना पड़ेगा। किसी ऐसे-वैसे की चाकरी तो करूंगी नही। कोई बड़ा घर मिल

जाय तो अच्छा रहेगा। कई महाशाल और साहूकार होंगे। इन सबमें बड़ा नील है। अरे हां, यहा से बहुत दूर भी नहीं। उसे नौकरों की आवश्यकता रहती ही होगी। पहले उसी के यहां चलूं। उसके एक लडकी थी—उसका नाम...नाम हेमा हिमौरी या कुछ ऐसा ही था। थी तो बहुत कड़वे स्वभाव की। पर जब मैं काम में बराबर लगी रहूँगी तो उसका कड़वा स्वभाव मेरा क्या कर लेगा ? पानी से तो पत्थर तक छिल जाते हैं। कही मर न गई हो। तो भी नील के घर मे कोई न कोई स्त्री तो होगी ही। और वहां राजा के और उनके समाचार भी नित्य सुनने को मिलते रहेंगे। उसके यहाँ नौकरी न मिली तो किसी अन्य बड़े घर में मिल जायगी। कही भी रहूं गुमसुम होकर अपना काम करती रहूँगी। फिर एक दिन—एक दिन—अच्छा भाग्य अवश्य सामने आवेगा। धन्य भगवान !

गौरी तुरन्त उठ खड़ी हुई। उनके मलिन मुख पर एक आभा छिटक आई। पोटली वही खंडहल के पुराने छान छप्पर से ढककर गौरी बाहर निकल पड़ी। नील के भवन का मार्ग जानती थी। वहाँ पहुँचकर उसे मालूम हो गया कि नील की लड़की—हिमानी—जीवित है और नौकरी मिलने की आशा करनी चाहिये। एक की क्या कई नौकरो की वहां आवश्यकता थी।

गौरी साहस के साथ हिमानी के सामने पहुँच गई। हृष्टपुष्ट देह की, स्वच्छ सुन्दर बहुमूल्य वेषभूषा में। गोरे सुरूप मुख पर आतङ्क। गौरी नमस्कार करके खड़ी हो गई।

'नौकरी करना चाहती हो ?'

'जी हां।'

'अभी तक क्या करती थी ? कहा थी ?'

'नैमिषारण्य मे खेती किसानी के लिये अपने माता पिता के साथ चली गई थी। वहा खेती मजूरी करती रही। मां बाप नही रहे। अनाथ हूं।'

'अच्छा, नौकरी दूगी अपनी ही चाकरी मे रखूगी।'

'जो आज्ञा। बहुत धन्यवाद।'

'पढ़ी-लिखी हो ?'

'जी···थोड़ी सी···'

'हमे नौकर-चाकर तो बहुत सस्ते मिलते हैं, लेकिन तुम्हारे ऊपर मुझे दया है। खाना कपड़ा मिलेगा और···और···ताम्बे के थोड़े से पण···जब देखूगी कि काम तुम्हारा बहुत अच्छा है और मेरे मन के अनुसार चलती हो, तब बढा दूंगी। कभी कभी थोड़ा बहुत पुरस्कार भी दूंगी।'

'जी बहुत अच्छा।'

'और काम ऐसा कुछ बहुत नही है।'

'काम के लिये दिन-रात एक कर दूंगी।'

'ठीक, लेकिन चोरी-चपाटी मत करना, नही तो—'

'कभी नही, जी कभी नही। मैं क्षत्रिय कन्या हूँ।'

'ओह, अच्छा। मेरे इस कमरे के पास ही गैल की उस कोख मे एक छोटी-सी कोठरी तुम्हे रहने को दूगी। वहाँ से तुम्हे जब चाहे तब बुला सकूगी।'

हिमानी ने गौरी को वह कोठरी दिखलाई। उसकी पूर्व वाली दीवाल मे एक छोटी-सी खिड़की थी वहाँ होकर काफी उजेला आ रहा था। हिमानी के कमरे के सामने जो गैल थी उसके दोनो ओर छोटे-बड़े कमरे थे। किसी मे कोई सामान किसी में कुछ। सिरे पर वह कोठरी थी। बहुत छोटी-सी ही थी, परन्तु गौरी को अपने लिये काफी बड़ी जान पड़ी। गौरी को लेकर हिमानी अपने कमरे मे लौट आई।

'तुम्हारा सामान ?' हिमानी ने बातचीत आरम्भ की।

'जी, है ही कितना ? एक पोटली बाहर कहीं है सो उठाये लाती हूँ।'

'मैं तुम्हें अपने कुछ उतरे-उतराये कपड़े दूंगी। तुम्हारे इन कपड़ों से तो बू आती है।'

'जी।'

हिमानी मन ही मन अपने सौंदर्य की तुलना गौरी की सुरूप और बहुत सुन्दर रूप-रेखाओं के साथ कर रही थी। उसके मन मे कभी हीन भावना आई और कभी अपने लिये महान—अरे मैं, मैं ही हूँ!

हिमानी ने नाम पूछा। गौरी ने बतलाया। गौर्! मेरी टक्कर का नाम!! नाम में बराबरी करेगी!!! कभी नहीं, कभी नही।

'गौरी! मुझे तम्हारा नाम बिलकुल भद्दा लगा। किसी के मुँह से गौरी भी निकल सकता है। हिश! रेवती कहूंगी। क्या कहती हो?'

'जी, बिलकुल ठीक है। रेवती ठीक है।'

'ले आओ अपनी पोटली और इसी घड़ी से अपना काम सँभालो।'

गौरी झटपट वहाँ से चली गई और पोटली उठा लाई। हिमानी ने उतारन के कुछ रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े दिये जो उसे अपने मोटे-झोटे कपड़ों के सामने बहुत घटिया जान पड़े। पर करती क्या? एक पुरानी-धुरानी खाट भी मिल गई। काम हिमानी और नील के कमरो की झाड़ू-बुहारू का, रसोईघर का और जब जिस काम के लिये हिमानी बुलावे तब वह। हिमानी ने उसका परिचय नील से भी उसी दिन करा दिया। दिन कटने लगे।

[५०]

रोमक के नैमिषारण्य से चले आने के उपरान्त धौम्य ने कल्पक द्वारा कपिञ्जल को बुलवाया। कपिञ्जल बरसात लगते ही पास के छोटे से गांव में चला गया था जहां अधिकांश जङ्गली वर्ग के लोग रहते थे। सीधे भोले और बड़े श्रद्धावान। वह उनकी श्रद्धा से बचना चाहता था, परन्तु वे नही मानते थे। ढूंढते ढूंढते जब धौम्य का एक शिष्य उसके पास पहुंचा बडे चैन की सास ली, और एक दिन धौम्य के सामने आ गया।

धौम्य ने उससे कहा, 'मैं तुम्हारे योगाभ्यास से सन्तुष्ट हूँ, परन्तु यह पर्याप्त नही है। बिना कर्मशील बने निरा योगाभ्यास बहुत काम का नही। तुम अभी तक पढ-लिख भी नही पाये हो। अब समय आ गया है।'

'जी गुरुदेव, मैं आश्रम को लौट आना चाहता हूं। यही रहकर आज्ञा का पालन करूंगा।' कपिञ्जल हर्ष मग्न था।

'यहाँ नही। तुम्हारा कर्मक्षेत्र अयोध्या होगा। जितना इकट्ठा करो उससे अधिक बांट दो यह बात योगियो के लिये भी लागू है। कर्त्तव्य का पालन करो फिर यहाँ लौट आओ।'

'चला जाऊँगा गुरुदेव। नीलपणि का रिन मेरे सिर पर है। उसको चुकाऊंगा, अन्य सेवा भी करूगा।'

'तुम्हे नील पहिचान लेगा तो सतावेगा।'

'त्रास से नही डरूंगा।'

'कदाचित न पहिचान पावे क्योकि तुम्हारे बाल इतने बढ़ गये हैं और देह कुछ ऐसी हो गई है कि छ बरस पीछे गहरी जान-पहिचान वाले लोग भी जब तुम्हे देखेंगे तो भ्रम मे पड़ जावेंगे। जाओ और अपने सहवर्गियो को चुपचाप सयम का मार्ग दिखलाओ। विना प्रदर्शन के जो सेवा करता है वह शीघ्र ऊंचाई पर पहुंच जाता है। उपयुक्त अवसर आने पर तुमको यहां बुलवा लूँगा।'

कपिञ्जल ने धौम्य के चरण पकड़े।

'सुखी रहो। आरुणि को भेजते जाना।' धौम्य ने कहा।

कपिञ्जल चला गया।

थोड़ी देर बाद वेद आ गया। वह रोमक को पहुंचाकर लौट आया था। उसने अयोध्या का समाचार दिया—

'अयोध्या की यात्रा में रोमक का कई गांवो मे स्वागत हुआ। अयोध्या मे भी उनके पक्ष में अनेक लोग हैं। रोमक ने कहलाया है कि गुरुदेव की आज्ञा का अक्षर अक्षर पालन करूँगा।

आरुणि आ गया।

'आज्ञा गुरुदेव?' आरुणि बोला।

'वेटा, तुम पञ्चाल जनपद के हीरे हो। जो कुछ तुमने यहाँ सीखा है और किया है उसे देश की उन्नति के काम में लाओ। पञ्चाल से अवकाश पाकर अयोध्या जाना और शुभ कार्यों मे रोमक, भुवन तथा कपिञ्जल की सहायता करना। सम्भव है मेघ और उसके साथी उपद्रव ठानें तो जहा तक बन पड़े रक्तपात न होने देना। सदा स्मरण रखना कि जो व्यक्ति कर्म का ज्ञान की उपेक्षा करके सेवन करते है वे गहरे अन्धकार मे चले जाते हैं, और जो कर्म की उपेक्षा करके केवल ज्ञान में रमते हैं वे उससे भी अधिक अन्धकार मे खप जाते हैं। ज्ञान और कर्म का सामंजस्य जीवन का पर्याय समझो।'

'जो आज्ञा गुरुदेव',—आरुणि के गले में कुछ जा अटका। चुप्प था ही. कुछ और न कह सका।

गुरु भी स्नेह-मग्न थे क्योंकि वे आरुणि को बहुत प्यार करते थे। वेद मुग्ध था। क्या मैं भी कभी आरुणि भुवन बन पाऊँगा या कपिञ्जल बन पाऊँगा?

[५१]

रोमक ने अयोध्या पहुंचते ही अपना घर और चिट्ठा सम्भाला। राजभवन छोड़ने के बाद नगर का जो घर उसे भायं-भायं करता-सा दिखता था, अब प्रिय लगने लगा। चिट्ठा बांधा तो कितनी भूमि और कितने प्रचुर मणि मुक्ता और सोना चाँदी! उनसे उसे कुछ डर-सा लगा। मैं इनका वितरण करूँगा। इन सबके सब का मैं क्या करूँगा? भुवन ही क्या करेगा? गुरुदेव ने जो कहा था। फिर उसने अपने और भुवन की ओर से मेघ के पास क्षमा प्रार्थना का सन्देशा भेजा। सोचता था मेघ के मन की क्रूर वासना शासन की नाली मे होकर बह गई होगी। मैं भी अपनी सशंकता या भीति को क्यों न धो-पोछ डालूं और आगे का काम शान्तचित्त होकर करूं? मेघ ने सन्देश-वाहक को फटकार देकर उल्टे पांव लौटा दिया।

रोमक ने अपने अनमने मन से पूछा, मैं स्वयं जाऊँ? परन्तु मर्म को चोट लग गई थी। उसने विचार अनिश्चय के झूले में डाल दिया।

अयोध्या जनपद भर में जो वर्षा हुई थी उसके समाचार बाहर भी फैले। जो लोग घर-द्वार छोड़कर इधर-उधर निकल पड़े थे और किसी प्रकार जीवन यापन कर रहे थे फिर लौटने लगे। दास नहीं आये और शूद्र भी थोड़े।

रोमक ने अपने लाखों निवर्तनों की भूमि को भूमि-हीन कृषकों मे बाटना आरम्भ कर दिया। इसका समाचार जङ्गल की आग की तरह फैला। वेगारी लौट पड़े और अब बड़ी संख्या मे शूद्र भी। रोमक ने इन्हे भूमि दी। भूमि के बाँटने का काम वे तीनों करते रहते थे, परन्तु ममता और भुवन अधिक। साधारण जनता मे रोमक, ममता और भुवन बहुत प्रिय हो उठे।

'इस घर मे तुम्हारे काम के लिये स्थान कम है, भुवन। राजभवन मे होते तो बड़ी सुविधा रहती', रोमक ने कहा।

'राजभवन के विस्तार की मुझे थोड़ी सी भी चाह नही है पिताजी। काम करने वाला तो पेड के नीचे भी रह कर बहुत कुछ कर सकता है,'—भुवन ने उपेक्षा प्रकट की।

अरे, यह वही भुवन है! कितना बदल गया है!! धन्य है गुरुदेव को जिन्होंने इसे प्रकाश दिया और मेरी भी आँखें खोली।

मेघ और उसके साथी, विशेपकर नील, रोमक के आगत स्वागत और बढते हुये प्रभाव को आरम्भ से ही शङ्का की दृष्टि से देखने लगे थे। जब भूमिहीनों—शूद्रो—और वेटवेगारियों को भूमि बाँटते देखा तो उन्हें बहुत अखरा—रोमक फिर से राज्य-प्राप्ति की साधना कर रहा है।

नील के भवन मे अविलम्ब बैठक हुई। सोम तो उस शासक-मंडल को बहुत पहले ही छोड़ चुका था, उस दिन वहाँ मेघ, नील, हिमानी और दीर्घबाहु ही थे।

बातचीत के क्रम मे मेघ ने कहा, 'तुम और तुम्हारी श्रेणी के लोग जो बर्ताव ब्राह्मणों और उच्च जाति वालों के साथ करते आये हैं—भोजन वसन, कम ब्याज पर ऋण का देना—उससे ये बड़े लोग सब हमारे तुम्हारे साथ रहेगे। और उन्ही के प्रभाव में ये साधारण जन है और रहेगे। और फिर मेरा शाप कहाँ जायगा? भुजाओं का बल तथा धार और नोक वाले हथियार सेवा करेंगे। रोमक के सर्वनाश की कामना वाले मेरे यन्त्र विफल नही हो सकते? कभी नही। समिति उसे फिर से कभी अभिषेक नही करेगी। अपना प्रभाव व्यापक है। जिस जनपद को मैंने उस समय चेता कर रोमक के विरुद्ध खड़ा कर दिया था वह मेरे साथ रहेगा। मैं अपने उस गाँव में बैठे बैठे ही वह काम करता रहूँगा कि रोमक को सदा के लिये अयोध्या छोडकर वानप्रस्थ आश्रम मे जाना पड़े। अटक पड़ी तो जनपद की मैं यात्रायें भी करूँगा।'

'आपका ही सहारा है आचार्य,—नील घिघियाया,—'आपके आशीर्वाद से व्योपार कुछ चेता बढ़ा है। अच्छे सलूकों के बढाने का

भी संकल्प है, रोमक अपनी भूमि बाँटने लगा है इससे कुछ शङ्का हुई है।'

'इसी का डर मुझे भी है—।' हिमानी ने समर्थन किया।

'मैं और मेरे इतने योधा कहाँ जायेंगे जो बहुत-सा देशाटन भी कर चुके हैं? जब कहिये तब रोमक को बिछा दू।' दीर्घबाहु ने हाँकी।

मेघ ने पुचकारा,—'अभी नही, अभी नही महाशाल। जब अवसर आवेगा बतलाऊँगा।'

'मैं तैयार रहूँगा।' दीर्घबाहु ने तुरन्त मान लिया।

मेघ ने अन्त मे कहा, 'मुझसे बाप-बेटे क्षमा माँगना चाहते थे तो मैंने फटकार कहलवा भेजी। उन पापियों का मुंह तक नही देखूगा। उस छोकरे भुवन को देखो, ऋषियों की जैसी बाते बनाने लगा है। सौम्यता का अभिनय रचता है!'

हिमानी ने और भी सुलगाया,—'इनको तो मिटाना ही पड़ेगा आचार्य। मुझे जब कभी जो कुछ भी काम दिया जायगा करने मे कभी आनाकानी नही करूँगी।'

गौरी किवाड़ के पास आकर झाँकी। आँख गड़ाकर मेघ और दीर्घबाहु को देखा और सिर नीचा करके बोली,—'जलपान तैयार है।'

'ले आ रेवती।' हिमानी ने कहा। गौरी चली गई।

दीर्घबाहु ने पूछा, 'यह कौन है?'

हिमानी ने उपेक्षा के साथ बतलाया,—'है एक सीधी सूधी दासी मेरी। थोड़े दिन हुये तब नौकर रक्खी है।'

'इनके भवन मे दास-दासियो की क्या कमी।'—मेघ जरा हंसा।

गौरी ने पाव घड़ी मे ही जलपान की सामग्री उन चारों के सामने परोस दी। वह नीचा सिर किये ही दीर्घबाहु को कम और मेघ को अधिक सूक्ष्मता के साथ परख रही थी। उसे भीतर भीतर न जाने क्यों लग रहा था कि यह कोई भयंकर जन्तु है और इससे सावधान रहना

चाहिये। दीर्घबाहु कभी इस सामग्री के लिये और कभी उसके लिये गौरी को देखने का बहाना निकालता जा रहा था। हिमानी को दो एक बार चुभा। उहँ कोई बात नही। केवल कुतूहल है। दीर्घबाहु को तो ऐसा वश मे कर लिया है कि चीं तक नही कर सकता। कही कोई कसर रह गई होगी तो ठीक करना कुछ कठिन न होगा।

जलपान के अन्त मे गौरी जूठे बर्तन उठा ले गई।

नील ने कहा, 'आचार्य जी, गाँवो की ओर अधिक ध्यान देते देते कही ऐसा न हो कि अयोध्या पर चिन्ता कम हो जावे।'

'नही, मैं आता जाता बना रहूँगा,'—मेघ ने आश्वासन दिया,—'परन्तु यह नही भूलना चाहिये कि जनपद समिति बड़ी है और नगर सभा छोटी नगण्य सी। यहाँ तुम साहूकार लोग, व्योपारी और कुछ महाशाल भी हो। समस्या को साधे रहोगे। परन्तु बहुत से शाल, महाशाल, योधा और मेरे अनुयायी ब्राह्मण ग्रामीण क्षेत्र मे ही बसते है। अकाल पीड़ित जनता इन गाँवों से ही बाहर के जनपदों को भागी थी। अब लौटकर जहा की तहा आ रही। गाँवों और खेड़ो के मुखियो को हाथ में रखना बहुत अभीष्ट है। भेड़ बकरियो के यज्ञ बलिदानों मे ग्रामीण क्षेत्रों के विश्वास को मेरे मन्त्र बहुत प्रभावित करेंगे।'

मेघ अपने दूर गाँव चला गया।

[५२]

सन्ध्या के पहले कपिञ्जल नील के सामने आ गया। सूखा कीचड़ पैरों मे, फटे मोटे कपड़े मैले-कुचैले। सिर के बाल काट काट कर कुछ छोटे कर लिये गये थे, पर दाढ़ी-मूछ वैसी ही लम्बी और घनी। पसीने भरी धूल से छाई हुई। वह नौकरी मागने के लिये नील के सामने वैसे ही जा खड़ा हुआ था। सिर पर छोटा सा मुड़ासा बांधे था जिसमे होकर बाल इधर उधर निकल रहे थे।

नील ने ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर तक देखा। यह कौन है? वह नही हो सकता। नाक तो वैसी ही हैं, पर आँखें बिलकुल वे तो नहीं हैं? छरेरा है, लेकिन उतना तगड़ा नही जितना कपिञ्जल था।

'नाम ?' नील ने पूछा।

'जी दास।'

'जी दास ! जी दास कोई नाम होता है ?'

'जी केवल दास, दास।'

स्वर वह नही है। यह तो कोई दूसरा ही व्यक्ति है। वह तो योगी हो गया है! यहाँ आवेगा ही क्यो ?'

नील बोला,—'नौकरी चाहने वालो की तो इतनी भरमार है कि जैसे पृथिवी कही फट पड़ी हो और उन्हे उगलने लगी हो। काम हमारे यहाँ कुछ ऐसा वहुत नही है। कहाँ से आ रहे हो ?'

'जी, अकालो के मारे बाहर निकल गया था अब लौट रहा हूं।'

'कब चले गये थे ?'

'जी, दस साल हुये तब चला गया।'

'पहले कहाँ रहते थे ?'

कपिञ्जल ने दूर के एक छोटे से अप्रसिद्ध खेड़े का नाम बतलाया।

नील ने कहा, 'हमारे बड़े नाम को सुनकर न जाने कितने आये हैं। किसी को किसी काम पर लगा दिया और किसी को किसी पर। तुम कौन कौन-सा काम जानते हो ?'

'जी, शूद्र हूं । कोई सा भी काम अंगेज लूंगा ।' वैसे रसोईघर का काम और भी अच्छा कर लूंगा ।'

'अस्तु, तुम्हे रक्खे लेता हूं । रसोईघर और बगीचे का काम करना । मन लगाकर भला, नही तो तुरन्त निकाल बाहर करूंगा ।'

'जी, बहुत अच्छा ।'

'खाना कपड़ा और ताम्बे के पन्द्रह पण हर महीने ऊपर से ।'

'जी, बहुत है । पल जाऊंगा ।'

जब नील हिमानी से मिला और कपिञ्जल के सम्बन्ध में बात आई तो हिमानी ने कहा, 'यह वह नही है ।' नील का मत था ही ।

कपिञ्जल के पूर्व परिचित कोई भी नील के यहां नही मिले ।

[५३]

जब कपिञ्जल रसोईघर में पहुँचा तब गोरी तीन नौकर-नौकरानियों के साथ काम कर रही थी। हिमानी पीछे से आकर बोली'—'रेवती, तेरे साथ दास अकेला काम किया करेगा। चार चार छ: छ: नही।' हिमानी की नाक का नथना थोडा सा ऊपर को सिकुड़ गया था। कपिञ्जल ने वह नाक पहले भी देखी थी। नीचा सिर और भी नीचा कर लिया।

गोरी ने कहा,—'जी हाँ। मेरे काम के लिये ये अकेले ही बहुत हैं।'

कपिञ्जल ने समर्थन किया,—'जी, मैं इनका सब काम करा दिया करूँगा और फिर बगीचे की भी पूरी देखभाल कर लिया करूँगा।' उन तीनों नौकर–नौकरानियों को हिमानी दूसरा काम बतलाने के लिये साथ ले गई।

कपिञ्जल ने गोरी को नही पहचाना। गोरी अपनी शङ्का का समाधान करने के लिये उसे जब तब परखने लगी।

काम करते करते कपिञ्जल को कुछ परिचय स्थापित करने की अनिवार्यता अवगत हुई।

'तुम यही की रहने, वाली हो, वहिन ?'

'हां, भैया। नैमिषारण्य मे चली गई थी थोड़े दिन हुये तब लौटी हूं।'

'नैमिषारण्य' ! कपिञ्जल को कुछ आश्चर्य हुआ।

'हा, भैया। वहां अपने माता-पिता के साथ धौम्य खेड़े मे रहती थी।

'धौम्य खेड़ा !' कपिञ्जल को कुछ आश्चर्य, शङ्का और सावधानी ने यकायक फुरेरू दी।

गोरी की आँखो के सामने उसके माता–पिता के बह जाने का भयानक दृश्य घूम गया। विश्वास के साथ उसने दृश्य को मन में कहीं

दबा दिया। कपिञ्जल ने एक क्षण ध्यान के साथ उसे देखा। फिर आखें नीची कर ली। क्या इसे वहा कभी देखा है ?

'क्या तुम वहां कभी गये हो ?' गौरी ने अपनी शङ्का को प्रश्न का रूप दिया।

अब क्या कहे ? कपिञ्जल रसोईघर से बाहर की आहट लेने लगा कि गौरी बोली, 'मैंने वहा बड़े बड़े योगी और महात्मा देखे हैं। आठ-नौ बरस रही धौम्य खेड़े में। महर्षि धौम्य के आश्रम के निकट एक टेकड़ी के आसपास गायें चराती थी—'

कपिञ्जल को रसोईघर के बाहर कुछ आहट मिली। 'बहिन, तुम्हारा चूल्हा अच्छी तरह नही जल रहा है। थोड़ा-सा सूखा ईंधन उठा लाऊँ, कपिञ्जल ने कहा और बाहर चला गया। बाहर कोई नौकर एक काम से आया था।

गौरी सोचने लगी— बहुत सम्भव है यह वही होगे जो उस टेकड़ी पर अभ्यास किया करते थे जहां फिर वे मिले थे—वे !

यदि वही हैं तो एक बड़ा हितू मिल गया; देखूं भाग्य कितना साथ देता है।

कपिञ्जल लकडी लेकर आ गया। चूल्हा धायँ धायँ जलने लगा और रसोई का काम जल्दी जल्दी चलने लगा। गौरी की उत्सुकता बढ़ चुकी थी और कपिञ्जल के भीतर गुप्त रहने की वाछा।

'क्या तुम वहां कभी गये हो ?' गौरी ने प्रश्न दुहराया। कपिञ्जल कह तो कुछ नही सका, पर हाथ की उङ्गली उसके होठों पर जा पहुँची। धीरे धीरे बात करो, चुप रहो या कुछ भी मत पूछो इनमें से उङ्गली का यह वर्जन किस बात का संकेत कर रहा है ?

गौरी की शंका दूर होने को हुई। धीरे से बोली,—'ऐसा लगता है जैसे उस टेकड़ी पर ध्यान करते देखा हो। वहा कभी कभी फल फूल चढा आती थी।'

कपिञ्जल को स्मरण हो आया, यह वही लड़की है जिससे भेंट किये फल फूलों को मैं अपने माथे से छुलाकर आश्रम में दे देता था। इसके माता-पिता थे। इन सबके साथ मैंने नैमिषारण्य की यात्रा की थी। इन लोगों ने मुझे पकड़े जाने से बचाया था। अब यह सयानी हो गई है। समझ भी बढ गई होगी। हम एक से दो हुये। भेद नही खोलेगी, खुल भी जाये तो क्या। परन्तु नही, गुरुदेव ने जहाँ तक निभे, गुप्त रह कर सेवा करने का आदेश दिया था। रोमक और भुवन की सहायता गुप्तरूप ही अधिक अच्छी हो सकेगी।

कपिञ्जल ने धीमे स्वर मे कहा, 'हां बहिन मैं ही हूं वह। चाहता हूं कि मेरा नाम, व्यक्तित्व इत्यादि प्रकट न हो अर्थात जब तक कि प्रकट होने की ठीक घड़ी नही आई।'

न जाने कितने समय के बाद गौरी के मन को उतना हर्ष मिला था। मुर्झाया हुआ चेहरा खिल गया। तुरन्त बोली, 'नहीं भैया, मैं किसी से भी नही कहूँगी। तुम न रोकते तो भी प्रकट नही करती। मेरा स्वभाव ही नही है। अपने काम से काम।'

कपिञ्जल ने पूछा, 'माता पिता कहां हैं?'

गौरी के सिर पर जैसे गाज गिरी हो। रो पड़ी, हिलकी आ गई। कपिञ्जल समझ गया। उसने प्रश्न को नही दुहराया।

सान्त्वना देने लगा,—'एक दिन तो सभी के माता पिता को जाना पड़ता है।'

रोते रोते गौरी ने कहा, 'नदी की बाढ़ में बह गये!'

कपिञ्जल शान्त करने लगा। रसोई घर के बाहर किसी के जल्दी जल्दी आने की आहट मिली। गौरी ने आंसू पोंछ डाले। हिमानी आ धमकी और कड़की,—'कितनी देर और है?'

'तैयार है', कांपते गले से गौरी ने कहा। उसकी आंखें लाल थीं और आंसू सबके सब नही पोंछे जा सके थे।

'ओह, गीले ईंधन ने तुम्हारी आखों में पानी भर दिया है। दास, तू रेवती को सूखा ईंधन दिया कर।' हिमानी थोड़ी-सी पसीजी।

'जी इन्होने ही सूखा ईंधन दिया, तब काम कुछ जल्दी हो पाया,' गौरी बोली।

'खाना भेजो,'—आज्ञा देकर हिमानी चली गई। थालों में व्यञ्जन सजाये-जाने लगे।

कपिञ्जल ने धीरे से कहा,—'यह बड़ी दुष्ट है। इससे सावधान रहना।'

'मैंने-पहले ही दिन समझ लिया था। कोठरी से कभी कभी जो बातें सुनती हूँ उनसे जान पड़ता है कि यहा और भी कई निर्मम हैं। एक कोई मेघ है बड़ा डरावना सा—'

'वह रोमक और भुवन के शत्रुओ का नायक है। इन सबका कोई षड़यन्त्र उन दोनो को किसी किसी सङ्कट मे डालने का चल रहा होगा या चलेगा। सावधानी के साथ सब देखना और सुनना है जैसी और जितनी बने हमे रोमक और भुवन की सहायता करनी है।'

गौरी ने हामी का सिर हिलाया, मुंह से कुछ न कह सकी।

× × ×

काम से निवृत्त होकर जब गौरी अपनी कोठरी में जा लेटी तब गर्मी थी। पानी धीरे-धीरे बरस रहा था और हवा नही चल रही थी। थकी होने पर भी उसे नीद नही आ रही थी मन कभी इधर और कभी उधर दौड रहा था। कपिञ्जल का साथ पाना उसने अपने भाग्य का उदय समझा। पर हैं तो बिचारा अकेला। लेकिन योगी जो है। तो वहां से यहाँ नौकरी करने क्यों चला आया? कभी अवसर पाने पर पूछूंगी। कोई बात अवश्य है! नही तो रोमक और भुवन की सहायता करने की चर्चा क्यो की? किस सङ्कट मे होगे ये? कपिञ्जल को कही कोई मार न दे। और उन—बाप बेटे पर कोई संकट? मेरा दुर्भाग्य कही मुझे फिर न आ-घेरे। अनाथ हूँ माता पिता...उस...रात कैसी बाढ़ आई थी... पानी बरस रहा था...गौरी को नीद आ गई। पानी पड़पड़ाकर बरसने लगा। गौरी ने स्वप्न देखा—उसके माता पिता बहती धार पर

खड़े खड़े लाठियां लिये एक मगर से लड़ रहे हैं। मगर बड़ा भारी। गौरी चीख पड़ी उसने जोर से दो तीन बार चीखा। जाग पड़ी। देखा तो कमरे के बाहर हिमानी एक बड़ा दीप लिये खड़ी है—'क्या है री रेवतिया? क्या बात है?'

गौरी खाट पर से हड़बड़ा कर खड़ी हो गई। कहना कुछ चाहती थी, मुंह से उसके कुछ निकला,—'मेरे माता पिता की अकाल मृत्यु हुई थी। अभी अभी ऐसा लगा जैसे प्रेतलोक से आकर मुझे घर दबाया हो। मुझे दिखलाई पड़ा कि एक बड़े मगर को लाठियों से मार रहे हैं।'

हिमानी का विश्वास भूत-प्रेतों मे था। घबराई, परन्तु गौरी के सामने हीन नही पड़ना चाहती थी।

'हमारे बड़े देवता वालदेव का भजन पूजन किया करो। भवन मे ही उनका मन्दिर है।'

'जी, सब देवता एक से। उनकी भी करूँगी। अभी अपने परमात्मा का भजन करलूं।'

हिमानी सोचती-चली गई,—इसके साथ प्रेत रहते हैं!

गौरी ने खिड़की की ओर मुंह कर ध्यान लगाया और नैमिषारण्य मे सीखा हुआ एक भजन आस्था के साथ जपा। उसके मन को थोड़ी देर मे शान्ति मिली और वह गहरी नीद सो गई।

[५४]

दिन चढ़ आया था। किरणें चारों ओर फैली हुई हरियाली के साथ हँस खेल रही थी। सूखी झाड़ियों के मरे सिरों के नीचे पत्ते और कोपलें सघनता के साथ छा गई थीं। मरे सिरों की मुर्झाई हुई डालियों के जोड़ों में से लाल धूमरी घुण्डियाँ फूट निकली थी। अकालो से जो ढोर बच गये थे मक्खियों मच्छरों से पीछा छुटाने के लिये पूंछ डुलाते फटकारते बढ़ती हुई दूवा पर मूह पर मुह घाल रहे थे। नदी नाले बहते चले जा रहे थे। उनमें धार के किनारे बारीक मिट्टी के पर्त और सपाट रेत की तहों के कण चमक रहे थे। बरसो पहले छोड़ी हुई जन्म भूमि को किसान जथे के जथे बाँधकर लौटे। सिर पर सामान होठों पर मुस्कान और बीच बीच आशा के गीत। बहुत से नर-नारी पुरुषार्थ भरे गाने गाते चुनौती सी दे देकर नदी-नालों को पार करते हुये चले आ रहे थे।

कोई कहता था,—'अब तो अपना गाँव थोड़ी सी ही दूर और है।'

कोई,—'बरसों के बाद जन्मभूमि देखेंगे।'

तो कोई,—'जन्मभूमि की जय हो।'

× × ×

जिनको भूमि मिल गई थी और जिनकी पहले से अपनी थी वे हल चलाने पर जुट पड़े। पसीना बह रहा था, परन्तु वे उसे गा गाकर ठंडा कर लेते थे।

जहाँ कही होम-हवन हो रहा था वहाँ के मन्त्रो का साथ किसान के गीत दूर से ही मन में गुथ गुथकर दे रहे थे।

अयोध्या मे जहाँ रोमक, ममता और भुवन अपनी निजी निवर्तन भूमि को बाँट रहे थे भूमि पाने वाले उनका जयकार कर रहे थे—

'जय किस बात की ? भूमि जनपद की थी, उसी की जनता को वापिस कर रहा हूँ।'—रोमक कहता था।

और भुवन,—'यह सब तुम्हारी है और मैं भी तुम्हारा···'

ममता आशीर्वाद देती थी—'परमात्मा तुम सबको सुखी रक्खें। हम सब एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें।'

किसान आपस में कहते थे और उनके अनेक मुखिया भी कह उठे थे—'रोमक को राज्य फिर से मिलना चाहिये।'

'उन्हें गद्दी से उतारना ही नहीं चाहिये था।'

'जाने भी दो, जो हुआ सो हुआ—आगे की सोचो।'

× × ×

रोमक के पास जब निजी खेतों के लिये बहुत थोड़ी-सी ही भूमि रह गई, तब उसने अपने स्वर्ण, चांदी और मणिमुक्ता के भाण्डार पर हाथ डाला। सोने-चांदी के वितरण से लोगों को अन्न-वस्त्र और अन्य साधन हाथ लगे, परन्तु मणि-मुक्ताओं ने थोड़ी-सी कठिनाई खड़ी कर दी। फिर वह सहज हो गई। बहुत से साहूकारों ने सोने-चांदी और दूसरे सामान के बदले में इन्हें ले लिया। अधूरे छोड़े हुये कामों पर यह सब लगा दिया गया और श्रमिकों का पेट भरने लगा। यह भी जल्दी खर्च हो गया। रोमक ने उदारता इतनी मुक्तता और इतनी आतुरता के साथ वर्ती कि दो-तीन महीने के भीतर रीते हाथ रह गया। मन के भीतर के बांध टूट चुके थे। विवेक और दूरदर्शिता को चिरत्रस्त जनता की प्यासी आखों और कृतज्ञ वाणी ने परास्त कर दिया। अब क्या हो? प्रश्न कुछ कठोर रूप धारण करके सामने आ खड़ा हुआ।

भुवन ने स्मरण दिलाया,—'वे कुर्त्ते और कन्चुक जो माता जी ने मेरे लिये बनाये थे कब काम आवेंगे? मैं तो उन्हें पहिनने से रहा।'

'उनके मणि-मुक्ता और सोना-चांदी दूसरे कुर्तों और कन्चुकों के काम आ जावेंगे।'

भुवन हसा,—'मेरी देह को सजाने के पहले जनता का पेट और सिर सजाना अत्यन्त आवश्यक है। मैं बनावट से दूर रहूँगा।'

उन कुर्तों और कन्चुकों की बहुमूल्य सामग्री भी काम मे आ गई।

× × ×

कपिञ्जल को एक दिन उसके कुछ पूर्व परिचित अयोध्या में मिल ही गये । उसको पाकर वे बहुत उत्साहित और उत्तेजित हुये । कपिञ्जल अभी कुछ समय तक और गुप्त रहना चाहता था ।

'किसी को भी मालूम न होगा । हमे सिखापन देते रहो । हम लोग बहुत हैं । मेघ का वर्ग बहुत छोटा है । उसका अनाचार सहा नही जाता ।'—वे लोग कह रहे थे ।

कपिञ्जल ने उन्हे सचेत किया,—'अपने अपने पल्ले का काम मन लगाकर धीरज के साथ करते रहो । किसी के भी माल पर कभी मन मत डिगाओ । मैं तुम लोगों से मिलता रहूंगा, परन्तु मेरा नाम दास के सिवाय और कुछ भी प्रकट न होने पावे । अभी इतना ही कहना है । फिर जब जैसा समय आवेगा, बतलाऊँगा ।'

'धन्य है योगी ।' कोई मन ही मन कह रहा था, और कोई खुसफुस में ।

× × ×

एक गाँव मे मेघ जल भुन रहा था—'बड़ा दाता बन गया है वह नीच रोमक ! अभी बहुत छिपाये रक्खे है । सब के सब अयोध्या पर टूट पड़ो और उसका सारा छिपाया हुआ धन मांग लो । ऐसा अवसर फिर नही मिलेगा । मत चूको ।'

जब भीड़ की भीड़ रोमक के भवन के सामने मंडला उठी तब रोमक घबरा गया । सोम ने उसकी बात सँभाली । भीड़ को सोम ने समझाया,—'रोमक जो कुछ दे रहे हैं उससे अब बहुत कम उनकी गांठ में बचा है । मैं तुम्हे अपनी आवश्यकता के अनुसार ले लेने से नही रोकता परन्तु भिखमङ्गी मत करो, भिखारी मत बनो । भीख मागना बहुत बुरा है । किसी के बहकावे में आकर राजा रोमक को मत सताओ ।'

'ठीक कहते हैं पुरोहित सोम । किसी किसी को लेने की अटक है, सब किसी को नही ।' सीधी जनता के मन मे जा बैठा । फिर भी बहुत से मंगते आते जाते बने रहे । अब रोमक के सामने दान की समस्या

मुंह फाड़कर आ खडी हुई । हाथ में ममता के आभूषणों के सिवाय और कोई बहुमूल्य वस्तुयें नहीं बची थी ।

× × ×

मेघ ने देखा रोमक के प्रति जनता में आदर बहुत बढता जा रहा है । उसने रोमक के विरुद्ध सिरतोड़ प्रयास आरम्भ कर दिया । उस आदर के विस्तार को तो देख रहा था, परन्तु उसकी गहराई उसे नहीं दिखलाई पड़ रही थी । अपने गांव मे उसने कई स्थानों के मुखियों को इकट्ठा किया । उनसे कहा, 'रोमक के पापो के कारण अकाल पर अकाल पड़े । कितने तप, आत्म-त्याग और यज्ञ-बलिदान करके तुम सबके सामने मैं सुकाल को ला पाया ! अब वही रोमक दान का छल और जाल फैलाकर फिर से राज्य पाने की धुन मे है । भविष्य के अकालों और संकटो से बचना चाहो तो उसकी एक न सुनना ।'

'चर्चा तो हो उठी है ।'

'काहे की ?' मेघ ने प्रश्न किया ।

'रोमक को राज्य लौटा देने की । बहुत से ब्राह्मण कर रहे हैं, जनता कर उठी है ।'

'तुम लोग क्या कहते हो ?'

'सोचकर उत्तर देंगे ।'

'अभी क्या कहते हो ? मैंने जो कहा है उसे गाठ में बाँध लो ।'

एक बोला,—'बहुत दिन गाँठ मे बाँधे रहे । पर अब मध्यम श्रेणी के लोगो, उन ब्राह्मणो और इस जनता का क्या करें जो रोमक को फिर से राज्य देने की बात कह उठी है ?'

इनका यह साहस ! मेघ को आश्चर्य हुआ । उसे क्रोध आ गया,— 'उनके साथ तुम्हारा भी सत्यानाश होगा ।'

एक उनमे बहुत मुंहफट और निडर था । धीरे से बोला,— 'सत्यानाश हो तुम्हारा जो उल्टी पट्टी पढ़ाते फिर रहे हो ।'

मेघ ने नही सुन पाया । भीड़ की हड़बोग मे विखर गया ।

× × ×

दीर्घबाहु को बुलाकर मेघ ने कहा,—'जान पड़ता है कि जनपद कोई एक राजा चाहता है क्योंकि बहुत समय से यहाँ गणतन्त्र की परम्परा न रह कर राज्यतन्त्र की चली आ रही है—'

'रोमक को तो राज्य नही मिलना चाहिये चाहे कुछ हो जाय। वह हम लोगो को बहुत त्रास देगा।'

'वही तो वही तो। तुम राज्य करोगे?'

'यदि आचार्य जी आशीर्वाद देंगे तो अवश्य करूँगा।'

'तुम्हारे नीचे वाले सामन्त और योधा तुम्हारा साथ देंगे? जैसे मैं कहूँ वैसे बिना किंतु परन्तु किये चलेंगे?'

'बिलकुल, आपके प्रभाव में जो सामन्त और महाशाल इत्यादि हैं उनकी आप जानें।'

'तो इन सबको तैयार रखने की घड़ी आती दिख रही है। जनपद समिति की बैठक होने के पहले,—और अभी हाल मे ही उसकी कोई सम्भावना नही दीखती क्योंकि शासन अपने हाथ मे है—भुवन और रोमक से युद्ध लड़ना पड़ेगा।'

'हमारे म्यानो के भीतर खड्ग खड़खड़ा रहे हैं और तूणीरों में बान झनझना रहे हैं, जब आज्ञा होगी तभी निकल पड़ेंगे। बतलाइये कब?'

'अभी नही थोड़ा ठहरो। अयोध्या के बड़े बड़े लोगो को भी साथ लगाना पड़ेगा।'

× × ×

एक दिन आ गया जब रोमक की गांठ में मांगने वालो को देने के लिये कुछ नहीं रहा! भीड़ पर भीड़ तो कम हो गई थी, फ़िर भी मांगने और दान लेने की वृत्ति जो एक बार उमङ्ग कर खड़ी हो गई तो उसने बैठ जाना या धीरज धरना न जाना। ममता के सारे आभूषण चले गये। रोमक की गाठ में देने योग्य कुछ नहीं बचा। प्रभाव बहुत बड़ा शब कुछ हुआ, राज्य लौटा देने की चर्चा ने भी प्रगति पकड़ी परन्तु

जनपद समिति के अधिवेशन के लिये तिथियों का क्या कोई महीना तक नियुक्त नहीं हुआ। सोम प्रयत्न कर रहा था। तो भी बिगडी को बनाने के लिये समय तो चाहिये ही। स्वभावतः ऋण लेने पर ध्यान गया। उतना बड़ा ऋण कौन दे ? थोड़े से थोड़ा देने के लिये तैयार हो गये परन्तु अनेक ने बड़ा ऋण देने के लिये अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। थोडा भी दें वापिस कैसे और कब होगा ? अन्त मे रोमक को अरुचि होते हुये भी नील का नाम याद आया। उसके साथ दुर्व्यवहार किया था ? उसके पास बहुत धन है, मैं फिर से राजा होते ही लोहे ताम्बे इत्यादि की खानों से आने वाले कर की आय से सारा ऋण चुका दूंगा। क्योंकि यह कर तो राजा की निजी सम्पत्ति है। ऐसे नही मानेगा तो उसे कुछ खानें दीर्घकाल तक के लिये लगा दूंगा। मेघ बाधा डाल सकता है। कदाचित लच जावे। पर यह तो नील के व्योपार और लेन-देन की बात है। बड़ा कन्जूस है। मेघ की बात इस विषय मे न मानेगा। बस ऋण का यह धन हाथ में आ जावे फिर विवेक के साथ व्यय करूंगा। तब तक समिति का अधिवेशन हो जायगा। फिर सब कठिनाइयां दूर। और राजा होते ही जन-हित के कार्य सोच-समझकर, दूरदर्शिता के साथ करूंगा। रोमक ने ममता और भुवन से सलाह की। उन्होने रोमक के उत्साह को देखकर निषेध नहीं किया। रोमक ने नील के पास ऋण लेने का सन्देशा भेजा।

[५५]

शरद ऋतु आ गई थी। अबकी बार अयोध्या मे आई भी बड़ी सजधज के साथ। सुगन्धियाँ बांटती फैलाती, धरती की छाती को फुलाती, हँसती,—उस गीत को सार्थक करती हुई, मुस्कराती हुई शरद सौ सौ बरस हमारे सामने आती रहे। ऐसी आई कि भूतकाल के कष्टों को भुला दिया और भविष्य की आशाओ के पुञ्ज आखो के सामने खड़े कर दिये। जन का अधमरा पुरुषार्थ दुगुने चौगुने बल के साथ उठ खडा हुआ।

रात्रि के समय नील के भवन के एक कमरे मे नील के साथ मेघ बैठा हुआ था। कोने मे एक बडा दीप जलकर मोटा धुआँ छोड़ रहा था। खिडकियो मे होकर आने वाला शीतल सोधा पवन उस धुयें की दुर्गन्धि को कम कर देने पर तुला हुआ-सा था।

मेघ उसी सांझ गाँव से आया था। बातचीत एक घड़ी से चल रही थी।

मेघ कह रहा था,—'अनेक लोगो का मन इधर से उचट उचटकर रोमक की ओर बढता जा रहा है। जनपद समिति के अधिवेशन का बुलाना संकट से परे नही है। युद्ध छेडा जा सकता है, परन्तु सैकड़ों सहस्त्रों का रक्तपात हो जायगा। रोमक भुवन इत्यादि कुछ थोड़े से ही मारे जावें तो अच्छा है, किन्तु युद्ध मे यह सम्भव नही। रोमक की मूर्ख दान-शीलता ने समस्या खडी कर दी है। सोच रहा हूं कि साप मारा जावे और लाठी टूटे नही—'

'रोमक के पास जो कुछ था दे चुका। मेरे पास रिन पर सोना-चाँदी इत्यादि लेने का सन्देशा उसने भेजा तो मैंने टाल दिया। आप से बात जो करनी थी, नील ने कहा।

'क्या उत्तर दिया था ? नाही तो नही कर दी ?'

'नाही नही की थी। कहला दिया कि सोचकर उत्तर दूंगा।'

'ठीक किया। मेरे ध्यान मे एक बात आ रही है। बतलाता हूं।'

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। फिर मेघ बोला, 'मैंने एक दूर की सोची है। सुनो।' मेघ देर तक उसके कान में कुछ कहता रहा।

नील ने कहा, 'प्रश्न कुछ टेडा है आचार्य जी। हिमानी की बुद्धि, तेजस्विता और हिम्मत मे कोई बराबरी नही कर सकती। काफी सयानी हो गई है। उसे अनुभव भी अनेक प्रकार के हैं। दीर्घबाहु के साथ व्याह करने की बात बहुत दिनों से चल रही है, किन्तु उसके साथ वह व्याह करेगी या नही करेगी, किसके साथ करेगी, किसके साथ नही, वही जाने। हमारे देश मे रीति—'

'अपने देश की जाने दो। इस देश की सोचो। दीर्घबाहु महाशाल है, सीधा सच्चा अपने हाथ का। उसे राजा बनाने का भरोसा दे आया हूँ अन्त मे व्याह उसी के साथ होना चाहिये। मेरे तुम्हारे कहने को नहीं टालेगी। परन्तु बातचीत चलाओ भुवन के साथ व्याह करने की। हिमानी को इस नाटक मे मेरा तुम्हारा साथ देना पड़ेगा। वह उस दिन कह रही थी कि जब जिस काम के लिये कहा जायगा पूरी तरह करने में कभी नही चूकेगी। उसमे काम करने का हठ बहुत है। भुवन और रोमक से वह है भी, बहुत रुष्ट। उसे भुवन ने कोड़े लगाये थे, याद है न?'

'न मैं भूला और न वह कभी भूल सकती है।' नील के मुह से आह निकली।

'तो इस नाटक के लिये उसे अविलम्ब तैयार करो। नाटक ही तो है। उसको खेल रुचेगा।'

'कदाचित मेरे समझाने पर मान जाय।

'अवश्य मानेगी। जैसे ही वह मान जाय रोमक के पास सन्देशा भेजो कि सदा के लिये सम्बन्ध करना चाहता हूं कुछ सोना चाँदी इत्यादि तो सगाई में अभी दे दूंगा, शेष बहुत सा विवाह मण्डप के नीचे, और फिर तो हमारा सबका सब तुम्हारा ही हो जावेगा! हिमानी को स्पष्ट बतला देना कि विवाह मंडप के ही नीचे बाप बेटे दोनो उस पार उतार

दिये जावेंगे। मैं दीर्घबाहु और उसके योधा तथा अपने अनेक सामन्त युद्ध के लिये भी तैयार रहेंगे। दीर्घबाहु को यदि राज्य देने में इन सब ने आना कानी की तो हम तुम सब मिलकर राज्य करेंगे-जिसमें हिमानी का हाथ सबसे अधिक रहेगा। दीर्घबाहु उसका जन्मसङ्गी हो जायगा और यदि दीर्घबाहु राजा हो गया तो हिमानी रानी बनी बनाई।'

'मैं हिमानी से अभी बात करता हूँ।'

'तब तक मैं यहीं बैठा हूँ।'

नील उठकर हिमानी के सदन में चला गया। गौरी हिमानी की सेवा में थी। नील ने सदन में पैर रखते ही उत्साह के स्वर में कहा, 'रोमक ने जो रिन माँगा था आचार्य मेघ ने कह दिया है कि दे दो। अब अपना काम बनेगा।' नील ने गौरी को नही लखा था।

'जाओ रेवती, अब अङ्ग नही दबवाऊँगी,—'हिमानी ने गौरी से कहा जो झुकेझुके उसकी मालिश कर रही थी।

'हाँ अब तुम जाओ दिन भर की थकी होगी', नील ने आग्रह व्यक्त किया।

गौरी चली गई।

'रोमक को उतना बड़ा रिन देने से अपना क्या काम बनेगा? आचार्य मेघ ने क्या समझ कर आपको सम्मति दी?' हिमानी ने पूछा।

'कुछ लम्बी सी बात है। रेवती को इसीलिये हटा दिया। बतलाता हूँ। रोमक को राज्य न मिलने पावे इस प्रयोजन से रिन देना है।'

'सो कैसे? मेरी समझ में तो नही आ रहा है।'

'धीरे धीरे सब समझ मे आ जायगा। तुम अपने लिये एक तिरा—पुर्रा—बनाया था वह लगाती क्यों नही?'

'यों ही। इस देश में चलन मुकुट पहनने का है।'

'तिरा सिर पर रखकर निकली तो अपने ही कई लोगों ने कहा कि इसको मुकुट के रूप में बदल दो इसलिये फिर रख दिया। मुकुट में बदल देने का अवकाश ही नही मिला, पर इससे—'

'कहाँ है तुम्हारा वह तिरा ?'

'भीतर एक पेटी मे बन्द है—'

'निकाल लाओ उसे।'

'अभी ? क्या करूँगी उसका इस समय ? उलझन मे रक्खा हुआ है।'

'रेवती को बुला लो। सहायता कर देगी।'

हिमानी ने पुकारा,—'रेवती ! ओ रेवतिया !! '

'जी आई',—गौरी ने वही से उत्तर दिया।

जब गौरी आ गई, हिमानी ने कहा, 'मेरे साथ दीप लेकर भीतर के कमरे में चलो।'

गौरी ने दीप उठाया और हिमानी के साथ भीतर के कमरे में चली गई। थोड़ी देर में पारिश देश के ढंग का मुकुट—तिरा या तुर्रा—हाथ में लेकर आ गई। तिरा सिर के पीछे की तरफ खाली-सा ढलवां और बहुत नीचा था, आगे की तरफ बहुत ऊंचा। सोने चादी का बना। उसमे मणि मोती गसे हुये थे। तड़क-भड़कदार।

'इसको अपने सिर पर रक्खो।' नील ने दुलार के साथ कहा।

हिमानी ने अल्हडपन के साथ रख लिया। छुटके हुये केशों पर दीप के हिलते हुये प्रकाश मे तिरा गौरी की आंखों में चकाचोंध-सी लगने लगा।

'दीप को कोने में रख कर जाओ रेवती।' नील ने कहा।

गौरी दीप को दीवट पर रखकर सिर झुकाये चली गई।

उसके जाते ही नील बोला, 'तुमको एक दिन रानी बनी देखलूं तो मेरी आखें जुडा जांय और फिर मर जाऊं तो इससे बढ़कर कुछ नही।' नील के गले मे कम्प आ गया।

'मेरी समझ मे कुछ नहीं आ रहा है।'

गौरी जब हिमानी के कमरे से निकल कर अपनी कोठरी की ओर गैल से जा रही थी तब नील के कुछ शब्द कान में पड़ गये,—'तुमको रानी बनी देख लूं।' कुतूहल बढ़ा और उसके पैर धीमे पड़ गये।

'रोमक को राज्य का न मिलना और तुम्हारा रानी बनाना एक ही बात के दो रूप है। दोनो रूपों को एक ही होना चाहिये।' नील ने अपने गले को सँभालकर कहा।

'ऊँ ? कैसे ?'

'ऐसे लक्षण दिखलाई पड़ते है कि रोमक को एक दिन गद्दी मिलेगी। उस बुरी घड़ी के आने के पहले ही रोमक का कांटा निकाल बाहर करना होगा।'

गौरी आगे की बात सुनने के लिये ऐसे रुक गई जैसे किसी ने उसके पैर जकड़ दिये हो। नील ने बात बहुत धीमे स्वर मे करदी। कुछ पल पीछे उसने नील को अपेक्षाकृत ऊँचे स्वर में कहते सुना—

'दीर्घबाहु कुछ बुरा नही है...फिर भी, आगे जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करना, परन्तु उसके मन में विश्वास जमा रहना चाहिये, जैसे ही रोमक को...'

इसके बाद उन दोनों मे धीरे धीरे बातें होने लगी जिन्हे गौरी न सुन सकी। गौरी का मन गिरने लगा। वह अपनी कोठरी मे जाकर खिड़की की ओर मुंह करके प्रार्थना करने लगी। जब उस रात बुरे सपने से अपनी एक प्रार्थना द्वारा उसे छुटकारा मिला था और गहरी नीद सो गई थी तब से उसकी श्रद्धा बहुत बढ़ गई थी। प्रार्थना की ध्यान-मग्नता मे भी उसके कान में जैसे पत्थर पड़ा,—'और भुवन को भी।' स्वर नील का था। उसी पर उसने हिमानी के कण्ठ से कुछ ऊँचे स्वर मे सुना,—'भुवन को उससे भी पहले।' गौरी उचटकर अपनी कोठरी के बाहर आई। गैल में कुछ डग बढ़कर रुक गई और सावधानी के साथ इधर-उधर ताकती हुई सुनने लगी। नील कह रहा था—

'रोमक की अन्धी उदारता हम सबको चौपट कर डालने के लिये भी लपलपा उठी है। नौकर मजूर ऐरे-गैरे—बस—वेतन बढ़ाने की लहर में हैं हमने उसे रिन न दिया तो रोमक दूसरो के पास दौड़ेगा। कही न कही उसको मिल जायगा। न भी मिले तो बहुत से ब्राह्मण

उसका साथ देकर फिर से अभिषेक कर देंगे। हम हर तरह से मरे… तो अपने शत्रुओ को पहले ही क्यो न समाप्त कर दें ?'

हिमानी वेग पर चढ गई,—'सबसे पहले भुवन को, दुष्ट भुवन को !'

गौरी के शरीर की नसें जैसे ठण्ढा गई हो।

'तो उपाय उसका केवल यही दिखलाई पडता है। आचार्य मेघ ने सुझाया है। सहज और सीधा है। तुम मान जाओ हिमानी तो काम को चटपट कर डालें।'

'और यदि रोमक या भुवन ने नाहीं कर दी तो ?…तो हमारा बहुत अपमान होगा।'

'ऐसा नहीं हो सकता हिमानी, और यदि हुआ तो दीर्घबाहु और आचार्य मेघ के सामन्त, योद्धा, कर्मकाण्डी ब्राह्मण और हम सबका धन—ये, कहां जायेंगे ? तुरन्त युद्ध शुरू कर दिया जायगा। रोमक का समर्थन करने वाले शाल, सामन्त, योधा, ब्राह्मण और व्योपारी उतने नही हैं जितने अपने वर्ग के। परन्तु बहुत सा रक्तपात और अपने धन का नाश बच जाय तो अच्छा है। बावुल पर आर्यों के शासन और आतङ्क के मारे हम लोगो को किसी युग में अपना बाबुल देश छोड़ कर पणिश देश बसना पड़ा था। अब इस जनपद मे हम मिटने के लिये नही आये हैं।'

'मैं ' मैं मान गई भुवन और रोमक को जैसे बने मार मिटाना है। आचार्य मेघ से कह दीजिये—'

'मैं बहुत प्रसन्न हूँ। रोमक के पास कल की सूचना भेजता हूँ कि वह यदि भुवन के साथ तुम्हारा व्याह करने के लिये तैयार हो तो कुछ धन अभी दे दूगा, फिर बहुत सा व्याह मण्डप के नीचे ··हां ··'

'जी ·'

'जैसे ही रोमक की स्वीकृति आई···'

'और भुवन की भी··'

'हाँ उसकी भी—एक ही बात है । जैसे ही स्वीकृति आई आचार्य मेघ थोड़े ही समय का मुहूर्त रख देंगे। रोमक को आतुरता पड़ी ही है तुरन्त मान जायगा। बस फिर···फिर जो—कुछ जैसे करना है आचार्य मेघ और हम तै कर लेंगे।'

'तै करिये कि बाप बेटे और उनके हितुओं को···'

'हाँ यही कहो। तै हो जायगा। तुम्हें दीर्घबाहु के मन पर अपने इस नाटक की छाप बिठलानी पड़ेगी।'

'पहले आप उनसे बात करना। फिर—फिर कह सुन लूंगी।'

'ठीक है, दीर्घबाहु सीधा सच्चा है और अपना पक्का मित्र। इस खेल में अपना हाथ पूरी तरह बँटायगा।'

'आशा तो है ···हां विश्वास है।'

'एक छोटी सी बात और। अपने नौकर नौकरानियों को भलीभाँति अपनेपन में कसे रहना चाहिये।'

'कुछ कठिन नही। ठीक कर लूंगी। दो इन सब में बहुत अच्छे हैं—रेवती और दास। वेतन बढाने की बात कभी नही करते। चाहे जैसा खाकर सन्तुष्ट रहते हैं और जो काम कहूं चुपके चुपके करते रहते हैं।'

शायद इनसे कुछ काम किसी समय लेना पड़े।'

फिर गौरी को कुछ नही सुनाई पड़ा।

थोड़ी दूर पीछे उसे नील के शब्द सुनाई पड़े,—'देर हो गई। आचार्य उकता रहे होंगे। मैं उनसे जाकर बात करूं।'

गौरी तुरन्त अपनी कोठरी में चली गई।

उसका हृदय धुकधुका रहा था पूर्व की ओर की खिड़की के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। देह कांप रही थी। ठण्डे गालों पर गरम गरम आँसुओं की धारा झर पड़ी। उस रात की प्रार्थना ने उस बुरे सपने को भगा दिया था, अब इस सजीव क्लान्ति को दूर कर दो प्रभो! उनको बचाओ। उनके बदले में यमराज चाहे मुझे ले लें। क्या

दुर्भाग्य मेरा पीछा करता ही रहेगा ? माता-पिता गये तो क्या······?
गौरी की प्रार्थना की निष्ठा और श्रद्धा का स्थान उस रात के दृश्य ने ले लिया जब उसके माता-पिता बाढ़ में बह गये थे। गौरी और अधिक सहन न कर सकी, बहुत थक गई थी। खाट पकड़ ली और सो गई। उसने तुरन्त वही स्वप्न फिर देखा—उसके माता-पिता नदी की बाढ़ पर खड़े हुये डण्डो से एक भयंकर विशाल मगर पर प्रहार कर रहे हैं।'

'रेवती! रेवती!! ओ रेवती!!!' गौरी के कान में शब्द पड़े। आखें खुल गईं। न वह नदी, न प्रवाह, न वह और कुछ। लेटे लेटे ही उसने निर्बल स्वर मे कहा,—'जी ?'

'कितनी बार बुलाया! आओ तो इधर—',हिमानी के स्वर मे उतना तीखापन न था।

अबकी बार गौरी ने ऊँचे स्वर मे उत्तर दिया,—'जी आई।'

जब गौरी हिमानी के सामने पहुँची तो देखा कि वह उस तिरे को अब भी सिर पर रक्खे है। गौरी नीचा सिर किये हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।

'क्षमा कीजियेगा, मैं सो गई थी।'

'अरी सो तो कह दिया था कि जा सोओ। कोई अपराध नही किया तुमने। आओ इधर। उदास क्यों हो ?'

गौरी दो-एक पग बढी।

'जी···जी, वही सपना फिर देखा।'

'तो अपने किसी देवता की पूजा कर डाल, या हमारे बालदेव की। बालदेव सबसे बड़े हैं।'

'जी।'

'अरे भाई ऐसे नही। मैं तुम्हें चाहती हूँ। नौकरों मे दास को और नौकरानियों मे तुम्हें सबसे अधिक। खुलकर बातें किया करो, ऐसी मरी मरी-सी मत रहा करो।'

'जी'—गौरी ने सिर उठाया जैसे बतला रही हो कि मैं बहुत कुछ जीवित हूं। चेहरा उसका कुम्हलाया हुआ था।

'अरी मैं तुम्हे जल्दी अपने भवन मे ऊंचा पद दूगी। तुम हमारी सखी बनकर रहोगी। अच्छा भोजन, बढिया वस्त्र, कभी कभी कुछ पुरस्कार इत्यादि मिला करेगा। मेरे साथ हँसा -खेला करो। एं।'

गौरी बरबस मुस्कराई—जैसे घने घूमरे बादलों के भीतर सन्ध्या के समय बिजली की पतली-सी रेखा कौंधी हो।

'तुम भी क्या हो रेवती, खूब हँसा करो—लेकिन हाँ केवल मेरे सामने।'

'जी।'

'मेरे सिर पर जो मुकुट है इसे हमारे देश में तिरा कहते हैं। तुम्हें कैसा लग रहा है?'

गौरी ने तिरे पर धीरे धीरे आँखें घुमाई,—'जी, ऐसा पहले कभी नही देखा।'

'गाना जानती हो?'

'जी, यो ही थोडा-सा।'

'मुझे सुनाया करो। नाचना जानती हो?'

'जी नही। छुटपन मे कुछ सीखा था। भूल गई।'

'वहुत जल्दी सीख लोगी। मैं स्वयं सिखलाऊँगी। गाने-नाचने के बहुत से अवसर आते रहते है और आवेगे।'

'जी।'

'जी जी के सिवाय और भी तो कहा करो। बहुत कम बोलती हो। मुझसे बातचीत किया करो।' हिमानी हँस रही थी।

'मैं किस योग्य हूं। स्वभाव ही मेरा कम बोलने का है।'

'सो तो वहुत अच्छा है—दूसरों से कम बोला करो मुझसे बहुत। तुम्हे बहुत योग्य बना दूगी। मेरे कहे पर चली चलो बस।'

'जी अवश्य।'

'तुम्हें एक बहुमूल्य वस्त्र, पेशगी इनाम, अभी देती हूँ।'—हिमानी अपने सदन के एक कोने में रक्खे हुये सन्दूक की ओर मुड़ी। गौरी ने सिर ऊँचा किया। उसकी आखो में स्थिरता और दृढता थी।

हिमानी ने सन्दूक मे से एक रङ्गबिरङ्गी रेशमी साड़ी निकालकर गौरी को दी। गौरी ने बिना निरख-परख किये कृतज्ञता के साथ ग्रहण कर ली।

हिमानी ने कहा, 'और कही पहनो या न पहिनो, मेरे सामने बराबर इस साड़ी को पहिना करो। मुझे प्रसन्न किये रहो, इससे भी बढ़िया दूगी और, और अभी कुछ नही कहती'' तुम्हारे अन्य काम कर दिये जायेंगे, मेरे पास अधिक रहा करो। अब जा सोओ। अपने देवता से प्रार्थना करना और हमारे बालदेव का भी जप करना तो जो प्रेत तुम्हे अभी सताते हैं वे ही तुम्हारी सेवा कर उठेंगे।'

गौरी चली गई।

उसके पास सन्दूक तो था ही नही, मोटे बिस्तर के नीचे सिरहाने उस साड़ी को रख लिया। फिर प्रार्थना करने लगी। अबकी बार न तो उसकी देह थरथरा रही थी और न आँखो मे आँसू थे। आकाश मे छिटपुट बदली थी। चन्द्रमा से दूर डरती हुई सी। खिड़की मे होकर किरणें आ रही थी। गौरी की आँखो मे जो कुछ था उन किरणो ने देखा—या गौरी ने देख पाया हो। वह प्रार्थना मे चुपचाप कह रही थी—दुर्भाग्य, मुझे ले लेना, पर उन्हे बचा देना उनके पास तक न जाना।

गौरी को विश्वास था कि लेटते ही सो जाऊँगी, परन्तु वह देर तक करवटें बदलती रही।

नील ने मेघ को हिमानी की स्वीकृति जा सुनाई। मेघ को हर्ष हुआ। सफलता की पहली सीढिया दिखलाई पड़ने लगी। अब केवल दीर्घबाहु के चित्त मे बात विठलाने की समस्या रह गई। उँह उसका समझ लेना तो बायें हाथ का खेल है। कपिञ्जल के द्वारा उसे तुरन्त बुलाया गया। मेघ ने सब बातें उसके गले उतारकर कहा,—'खेल बहुत

चतुराई के साथ खेलना है। इसमें तुम हिमानी का पूरा साथ देना। बराबर यही समझना कि जो मनुष्य भुवन के ब्याह के लिये तैयार किया जा रहा है वह वास्तव मे तुम्हारे लिये है। और, तुम होगे अयोध्या के राजा, हिमानी रानी।'

'मैं कोई भूल नही करूँगा, आचार्य, मैं शिकारी खिलाड़ी जो हूँ',—दीर्घबाहु बोला।

'तुम मान गये, मुझे बहुत अच्छा लगा। इस प्रसङ्ग की कुछ बातें ये कर लेंगे। मैं अब जाता हूँ। कल या किसी समय हिमानी से मिल लेना', कह कर मेघ चला गया।

'अच्छा ही हुआ, भाग्य की ही बात कि जो छः सात बरस ठहरे रहे, यदि तुम्हारा विवाह पहले ही हो गया होता तो आज क्या कर पाते ?'—नील ने दीर्घबाहु को और भी दृढ किया।

दीर्घबाहु ने स्वस्ति की,—'जो कुछ होता है भले के लिये ही होता है···आचार्य मेघ का शाप व्यर्थ थोड़े ही जावेगा। बड़े मन्त्रविद हैं।'

'हिमानी का भी बदला चुक जावेगा।'

'सारे काम एक साथ निबटेंगे। वाह क्या घड़ी आ रही है!' दीर्घबाहु हँस पड़ा।

'हिमानी बड़ी कठिनाई से मानी है',—नील ने कहा।

दीर्घबाहु प्रसन्न था।

[५६]

दूसरे ही दिन नील रोमक के भवन पर सगाई की बात करने के लिये स्वयं गया। रोमक ने उसकी आवभगत की। मेरे प्रति जिसके मन मे जो आँस गड़ी हो वह दूर हो जावे तो बहुत अच्छा, रोमक की धारणा थी।

नील ने एकान्त पाकर बात की। रुपये देने का प्रश्न और भुवन हिमानी की सगाई के पक्की होने पर घूमने लगा।

'महाराज, मेरा जो कुछ है सब आपका हो जायगा। बड़ा सुहावना दिन होगा वह! आपके शत्रु और मित्र सब उस दिन एक होकर घुलमिल जायेंगे—मित्र ही मित्र दिखलाई पड़ेंगे।' नील ने कहा।

'और आचार्य मेघ?' रोमक ने शङ्का प्रकट की।

'आचार्य मेघ वैसे भी उतने कठोर नही रहे। कन्या-पक्ष की ओर से विवाह की रीतियों को वे ही निभायेंगे। उस समय जैसे ही आपने उनका चरण स्पर्श किया कि पुराना सब समाप्त। इतने ही के तो भूखे है वे।'

'मैंने उनके पास क्षमा प्रार्थना का सन्देशा भेजा था तो उन्होंने ठुकरा दिया।'

'कहते थे मुझसे। परन्तु जो कुछ मैंने कहा है मान गये है। आप पुछवा सकते हैं।'

'नही, नही मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ।' रोमक के मन मे विश्वास घर करता जा रहा था कि मेघ अब बिना दांत का साँप हो गया है।

'तो व्याह की स्वीकृति देकर मुझे कृतार्थ कीजिये,' नील ने विनय की।

'मुझे कोई इनकार नहीं। मैं हामी भरता हूँ...'

नील ने तुरन्त उत्साह के साथ बात काटी,—'सगाई के उपलक्ष में कुछ रुपया मैं अभी भेजता हूँ—शेष—'

रोमक ने अपनी बात पूरी की,—'भुवन से मुझे बात करनी पड़ेगी।'

'हिमानी में कोई कमी तो है नही, महाराज ?'

'सो तो नहीं है। हमारे यहा स्वयम्वर के साथ कई प्रकार के विवाहों की भी प्रथा है। भुवन से बात करके शीघ्र आपके पास उत्तर भेजूंगा।'

'तो जो कुछ भी विलम्ब है वह आपकी ओर से है। चाहता हूँ कि आपका दान-कार्य अविलम्ब फिर अपनी उसी गति से चल पड़े और विवाह के उपरान्त शीघ्र ही जनपद समिति का अधिवेशन हो जावे, और आपका अभिषेक। सगाई पक्की होते ही कुछ सोना-चादी तुरन्त भेज दूंगा। आप राजकुमार से कब बात करेंगे ?'

'भुवन कही चला गया है। थोड़ी देर में आ जायगा। आज ही बात करके सूचना भेजता हूँ। विश्वास है कि मान जायगा।'

'जैसे ही आपका समाचार आया कि बहुत थोड़ी अवधि का मुहूर्त रखवा के मैं आपको सूचना दूंगा। फिर मेरी जन्म भर की कमाई सुफल और मैं जीने-मरने की चिन्ता से दूर', कहकर पुनः पुनः नमस्कार करता हुआ नील चला गया।

रोमक को भुवन से बात करने का अवसर शीघ्र मिल गया। सुनते ही नाना प्रकार के दृश्य भुवन की आंखो मे चक्कर काट गये,—बरसों पहले उसके रथ पर हिमानी का अपने रथ को चढा देना, हिमानी के नटखट और उसके लफङ्गपन और अन्त मे—मैंने उसकी पीठ पर चाबुक झाड़े थे ! चीख पड़ी थी, तिलमिला गई थी !! जान-समझ कर नही पीटा था, फिर भी शासन का चाबुक अटक आ पड़ने पर फिर उठ सकता है। क्रूर स्वभाव की है। जीवन भर का साथ! इसके हृदय के किसी कोने मे कुछ ही कोमलता हो तो हो। और एक वह! अरे वह!! कोमलता, स्नेह, सौन्दर्य और निर्मलता की मूर्ति। जिसे जीवन-सङ्गिनी

बनाने का शपथपूर्वक वचन दिया था। मेरे दुर्भाग्य ने उसे मुझसे छीन लिया।

भुवन का माथा जलने लगा। वह उस पर हाथ फेरने लगा।

'क्या सोच रहे हो, भुवन ?'

'जी'—'रीती आँखो भुवन ने देखा, जैसे प्रश्न को सुना ही न हो।

रोमक ने कहा 'मेरे भीतर राज्य पाने की लालसा उतनी नही है जितनी निस्सहाय दुखियों की सहायता करने की।'

'सो तो बराबर देख रहा हूँ, पिता जी।'

'लोगो को देते-देते, देते रहने का स्वभाव ही बन गया है।'

'परोपकार से बढ़कर और कुछ है भी नही।'

'सोने-चांदी की घोर आवश्यकता बहुत आंस रही है। तुम्हारी हां पर हम सब का भविष्य निर्भर है, इस जनपद का भी। मेघ और उसके साथी भी अपने हो जायेंगे। हिमानी रूपवती और गुणवती है।'

भुवन की कल्पना में किसी और के रूप और सौन्दर्य का चित्र खड़ा था।

'अब क्या सोच रहे हो ?'

'कुछ नही पिता जी। नैमिषारण्य के जीवन और दृश्यों पर ध्यान चला गया था—'

'अरे पागल',—रोमक हँसकर बोला,—'स्नातक होने के उपरान्त नैमिषारण्य दूर चला गया है और अयोध्या नाक के नीचे है।'

नैमिषारण्य दूर चला गया! वह नदी की धार में बहकर दूर धाम को सिधार गई!! और मैं पत्थर-सा यहां खड़ा हूँ!!!

'जैसा आप उचित समझें पिता जी, वैसे मेरा विचार विवाह करने का नही है।' भुवन ने अधमरे से स्वर मे कहा।

'अरे ऐसा नही बेटा! हमारे वंश की बेल आगे कैसे फूले-फलेगी ?'

'आपने नील से क्या कहा है ?'

'आर्य लोग पणियों की सुन्दर कन्याओं के साथ विवाह कर सकते हैं इसलिये और इस कारण भी कि सोने-चांदी की अपने अनिवार्य कार्यों के लिये अत्यन्त आवश्यकता है। मैंने अपनी तरफ से हामी भर दी, किन्तु यह भी कह दिया है कि तुमसे बात करूँगा।'

बात करूँगा ! सोने-चांदी के लिये मेरा व्याह उसके साथ किया जाना है और ये नील को हां भर चुके हैं !! भुवन को क्षोभ हो आया। रोमक की ओर आंख फेरी। तुरन्त स्मरण हो आया—कितनी विपत्तियाँ। सही हैं इन्होंने। क्षोभ हिल गया।

धीरे से बोला, 'यदि उचित समझें तो मुझे सोच-विचार करने के लिये तीन-चार दिन का समय दे दें। नील के पास ऐसा सम्वाद भेजने में क्या कोई हानि है ?'

'नही है। कहलाये भेजता हूँ।'

[५७]

नील के पास रोमक ने तुरन्त समाचार भेज दिया—भुवन इन दिनों कुछ अस्वस्थ है। तीन चार दिन में उसका उत्तर पहुँच जायगा, लक्षण आशाप्रद हैं। ये तीन चार दिन क्यो ? नील को शङ्का हुई। उसने हिमानी को समाचार सुना दिया, पर अपनी शङ्का प्रकट नही की। हिमानी उस योजना को चलाने के ही नही प्रत्युत दौड़ाने के फेर मे थी। भुवन अस्वस्थ नहीं है। टाल रहा है। उसे हामी भरनी पड़ेगी। नाही कर ही नहीं सकेगा। उसके मनमें मेरी तरफ से एक भय लगता होगा—मेरे उस स्वभाव से जो उसने बरसों पहले देखा था। उसके भय को दूर करूँगी। इन तीन चार दिनों के भीतर वह जाँचना चाहता होगा कि अब मेरा स्वभाव उतना ही कड़वा है या नही। पैतरे बदलने वाले शत्रु को अपने दाँवपेच में चित्त करना विजय को दुगुना मोहक बनाता है। मैं उस पर विजय पाऊँगी। मैंने जहाँ उसकी शङ्का दूर की कि स्वीकृति आई। फिर—मुहूर्त और बस। हिमानी सोच रही थी किससे क्या काम लेना पड़ेगा, परन्तु कब और क्या होगा इसका निर्धार तो हुआ ही नहीं है। हो ही जायगा। तो अब अपने हथियार तो शीघ्र हाथ में करूँ।

चौथे पहर का समय था। उसने गौरी को बुलाया। 'तुमने वह साड़ी क्यो नही पहिनी जो मैंने कल रात दी थी ?'

'जी किसी अच्छे अवसर पर पहिन लूंगी।'

'और भी दूगी। अच्छा अवसर भी जल्दी आयगा। क्या कर रही थी ?'

'रसोई घर की तैयारी के लिये जाने को थी।'

'थोडी देर बात करलो। कल से किसी और के हाथ में उस काम को दे दूंगी। चूल्हा कोई और फूंकेगी तुम देखभाल भर कर लिया करो।'

'जी बहुत अच्छा।'

'बैठ जाओ।'

गौरी भूमि पर बिछी दरी पर बैठने लगी।

'वहां नहीं रेवती। एक चौकी उठा लाओ। उस पर बैठो।'

गौरी एक चौकी उठा लाई और सङ्कोच के साथ उस पर बैठ गई।

'मैं तुम्हारे सङ्कोच को तोड़ना चाहती हूं- तोड़कर रहूंगी,'—हिमानी ने कहा और हँसी।

गौरी भी मुस्कराई। उस मुस्कान में भोलापन अधिक था, बनावट कम।

'तुमने कभी प्रेम किया ?' हिमानी ने आंख गड़ाकर पूछा।

गौरी ने आँखें नीची करली। उठती हुई साँस दबा ली।

'जी कैसा ?'

'यह लो! प्रेम कैसा ? जानती न हो जैसे।'

'मैं क्या जानूं - आप ही बतलाइये। मैं तो वहां जङ्गल में ढोर चराती थी।'

'मैं बतलाती हूँ—तुम भुवन को जानती हो ? राजकुमार भुवन विक्रम को ?'

गौरी को कपकपी आने को हुई—

'नाम तो सुना है।'

'हा तुमने उन्हें देखा न होगा। वड़े अच्छे हैं, बहुत सुन्दर। उनके साथ मेरी सगाई होने वाली हैं। अब बतलाओ तुमने कभी किसी पुरुष से प्रेम किया है ?'

गौरी नीचा सिर किये खांसने लगी और कुछ क्षण खांसती रही।

हिमानी ने दया दिखलाई,—'रसोई घर मे काम करते करते तुम्हें खाँसी आने लगी हैं तुमको धुयें से दूर रक्खूगी।'

गौरी की खांसी बन्द हो गई। उसने सिर उठाया। आंखें लाल थीं और माथे पर पसीना।

'बतलाओ रेवती,' हिमानी ने प्रश्न दुहराया।

गौरी के मुंह से निकला—'नही तो।' और पीठ फेर ली। उसकी त्योरी पर करालता आ गई।

'तब तुम क्या जानो—कौन किसकी चिन्ता मे रात-दिन एक करता रहता है—सोते भी जागता रहता है और जागते भी सोता रहता है। मेरे तो प्राणो पर कभी कभी आ बनती है।'

गौरी को फिर खांसी आई। खाँसते-खासते वह कमरे से बाहर चली गई। वहा भी खासती रही। खासते-खांसते या जैसे भी हो उसकी आँखों मे आँसू आ गये। बगल से कपिञ्जल आ रहा था। गौरी ने तुरन्त आँसू पोंछ डाले।

कपिञ्जल ने कहा, 'बहिन तुम्हे खासी बहुत आ रही है! कोई दवा लाऊँगा। रसोई-घर का प्रबन्ध—'

'हाँ भैया', फटे से स्वर मे गौरी ने कहा,' आगे कुछ और कहने का संकेत मे वर्जित कर दिया।

कपिञ्जल उल्टे पैरो गया। गौरी कमरे मे लौट गई।

'कौन था?' हिमानी ने पूछा।

'जी दास···काम के लिये बुलाने आये थे।'

'थोड़ी देर मे चली जाना। बैठ जाओ।'

गौरी बैठ गई।

'कुछ गाओ न।'

'खाँसी बहुत आ रही है।

'अच्छा, अच्छा। काम करवा के जब आओ तब सही।'

कुछ क्षण दोनो चुप रही। गौरी कुछ सुनने के लिये उत्सुक थी।

हिमानी ने कहा, 'राजकुमार भुवन से कोई ऐसी-वैसी चर्चा आमने-सामने—प्रेम की तो नही हुई है, पर शीघ्र होगी। अरी तुमको फिर खांसी आने लगी!

गौरी ने फिर खासते खांसते कपड़े मे अपना मुह छिपा लिया था। पर अब खांसी नही आ रही थी, दम फूलने लगा था।

'इधर देखो', हिमानी ने कहा। गौरी ने पीठ फेर ली थी और कमर झुका ली थी जैसे किसी बड़े बोझ को सहकर संभाल रही हो।

गौरी को उसके सम्मुख होना पड़ा। चेहरे पर भोलेपन और करालता का रङ्ग रच सा गया था। हिमानी को कुछ और भासा—

'तुमने अवश्य कभी प्रेम किया है। छिपा रही हो, बात दबा रही हो। तुम्हें अपने प्यारे की याद आ गई है। सच बतलाओ, तुम्हे अपने उसी की सौगन्ध है।'

कितनी निर्मम है यह स्त्री ! गौरी ने सोचा।

उसने आंख नीची किये कांपते हुये स्वर में कहा,—'किया था।··· चला गया।'

'ओह ! मेरा अनुमान गलत नही निकलता। किसी बाढ़ में वह भी विचारा डूब मरा ! यह दुष्ट पानी जब बरसा तो इतना बरसा !!' हिमानी की कल्पना मे किसी के मरने जीने के सम्बन्ध में उतना बड़ा चित्र नही आया था जितने चित्र उतना पानी बरस पड़ने के कारण रोमक, भुवन और उनके बहुत से स्नेहियो के लौट पड़ने के उतरा गये थे।

गौरी यकायक उठ खड़ी हुई—'मैं अब रसोई-घर में जाऊँ ?'

'अच्छा रेवती, रसोई का प्रबन्ध करके जल्दी आ जाना फिर बातें करूंगी; तुम्हारे उस घाव की छेड़छाड़ नही करूँगी जो अभी अच्छी तरह पुरा नही है। जल्दी भर जायगा तुम्हारा वह घाव। और देखो वह नई साड़ी पहिनकर आना भला।'

'थोड़ी देर में मैं आ जाऊँगी',—गौरी चली गई।

इतनी सी ही बातो और उस साड़ी के देने से रेवती कितनी जल्दी अपने को मेरे निकट सम्पर्क मे समझने लगी है ! हिमानी इस निर्धार पर पहुँची।

[५८]

रोमक से ममता को सब बातें मालूम हुईं । भुवन के लिये इतने सोच-विचार की क्या बात है ? तीन-चार दिन की अवधि का अनुरोध गर्वीली हिमानी को उचटा सकता है और उस हठी कन्जुस नील के आवेदन को डिगा सकता है । हिमानी रूपसरूप की है । भुवन को तुरन्त निश्चयात्मक उत्तर दे देना चाहिये था । माता का हृदय अपने बेटे के मन के दूसरे कानों की खोज मे नही गया ।

'यों ही अनमने से हो । आश्रम की बातें जब चाहे तब करने लगते हो जैसे अब भी गुरुकुल में हो ! जनपद की जितनी सेवा कर रहे हो आगे उससे भी अधिक करने के दिन आ रहे हैं । व्याह तो किसी दिन तुम्हारा होगा ही । तो—'ममता समझाते समझाते रुक गई ।

भुवन ने कहा,'सोचता हूँ माताजी की कैसे निभेगी हिमानी के साथ—'

ममता हँस पड़ी ।

'वाह ! आश्रम से पुरुषार्थ लेकर लौटे हो । वह तो तुम्हारी उँगलियो पर नाचती फिरेगी ।'

'आपको स्मरण होगा माता जी कि मैंने उसे कोड़े लगाये थे ।'

'बात बहुत पुरानी पड़ गई है । अब उसपर फूल बरसाना । जो कुछ किया था उसका यह प्रायश्चित हो जायगा । और देखो बेटा, हिमानी के साथ व्याह कर लेने से कितने काम बन जायेंगे—मेघ के सारे साथी अपने हो जायेंगे । इतनी धन-सम्पत्ति मिल जावेगी कि सारे जनपद को निहाल कर दोगे । तुम्हारे पिता का फिर अभिषेक हो जावेगा—'

'बुरे दामो हाथ लगेगा यह सब ।'

'तो क्या मेरी बात नही मानोगे ?'

'आपकी आज्ञा की अवज्ञा नही कर सकता माता जी', फिर हाथ जोड़कर बोला,'आरुणि आ रहा है । उसने पञ्चाल से सम्वाद भेजा है । आज-कल मे आता ही होगा । सम्भव है धन-सम्पत्ति की सहायता उससे मिल जाय । आश्रम मे वह मेरा आदर्श हो गया था । जङ्गल में उसके साथ घुमा करता था । धौम्यखेड़े के नाबदान तक स्वच्छ किया करता

था वह। एक दिन जब मैं गांव में भिक्षाटन के लिये गया तब उसकी टेहुनी तक नाबदान का कीचड़ रचा हुआ था। मैंने उससे अभ्यर्थना की कि मेरी भी थोड़ी सी सेवा उस काम मे ले लो तो उसने हँसकर नाही करदी–' भुवन ने उस हँसी के अनुकरण का प्रयास किया। होठों पर थोड़ी सी आई। साथ ही गला काप गया और आखो मे आसू छलक आये।

माँ द्रवित हो गई,—'अच्छा बेटा अच्छा। तीन चार दिन में उत्तर दे देना।'

'जङ्गल और जङ्गल के फूलों को अब भूल जा। जैसे भय, क्रोध, हिंसा और ईर्षा तामसी वृत्ति के लक्षण है वैसे ही विषाद भी। वहां के फूल नही अब अयोध्या के उद्यानों के फूलों पर आँख पसार जिन्हे परमात्मा ने बारह वर्ष उपरान्त पानी बरसा कर दिखलाया है।' ममता चली गई।

नैमिषारण्य के जङ्गली फूल! उस दिन वह मुझे दे रही थी और उसकी गाय गर्दन उझका कर हम दोनो की ओर देख रही थी! भुवन ने मोटी उँगलियों अपने आँसू पोछ डाले। मैंने उसको कितना कष्ट दिया था! भोले सौन्दर्य की उस प्रतिमा को!! साक्षात गौरी को!!! वह चली गई और मैं यहां खड़ा खड़ा रो रहा हूँ। निर्मम! पत्थर!! नही यह कुछ नही। गुरु का आदेश था। उन्होने मुझे पशु से मनुष्य बनाया। माता जी ठीक कहती हैं कि विषाद तामसी वृत्ति का लक्षण है। गुरुदेव ने एक दिन कहा था कि मनुष्य का अपना मानसिक सन्तुलन ही उसके लिये सँसार में सबसे अधिक बहुमूल्य और महत्वपूर्ण पदार्थ है। परन्तु अभी तो वह संतुलन मेरी गाँठ में नही है। तीन चार दिन में कर लूंगा। तब तक आरुणि भी आ जायगा। महापुरुष है वह इसी निजी सन्तुलन ने उसे महापुरुष बनाया है। लेकिन क्या कभी उसने प्रेम किया है? ओफ! फिर वही!! अपने आपको तीन चार दिन में अवश्य ठीक कर लूगा आज की दशा मे तो हामी की ठोकर नही ओढ़ सकूगा। देखूं आरुणि कब तक आता है। वह सचमुच महापुरुष है। परन्तु—भुवन फिर विचलित हो गया।

[५६]

हिमानी के सदन मे हिमानी और दीर्घबाहु। एक कोने मे ऊँची चौकी पर दो तिरे रक्खे हुये थे। एक तो वही जिसे गई रात हिमानी ने अपने सिर पर रक्खा था और दूसरा उससे कुछ छोटा, परन्तु वैसा ही जड़ाऊ और तड़क-भड़क वाला। उसी चौकी पर दीवार के सहारे एक बड़ा कांच टिका हुआ था।

'मैं आज सवेरे से ही जो जुटी तो दोपहर बीता कि तैयार करवा के रही। सुनारों ने बड़ा परिश्रम किया',—हिमानी ने दीर्घबाहु के कन्धे को छूकर कहा।'

'तिरे बड़े विचित्र हैं—जैसी तुम,'—दीर्घबाहु बोला।

'यह लो ! कैसी विचित्र हूं बतलाओ। बतलाओ न।'

'यहीं बतलाऊँ ? या बगीचे मे चलकर ?'

'अरे नही। न यहा न वहां। अभी नही। उस दिन तक नही।'

'जानता हूँ। याद है। ये तिरे किसलिये बनवा डाले हैं ? बहुत मूल्य वाले होगे ये तो।'

'एक तुम्हारे लिये। एक अपने लिये। एक राजा के लिये एक रानी के लिये।'

'लगाओ जरा कैसी फबती हो।'

'इसी उद्देश्य से तो वहां उन्हे ला रक्खा है।'

'रक्खो एक अपने सिर पर और देखो कांच मे तुम कैसे जँचते हो।'

'मैं नही जानता कैसे पहिना जाता है यह। हमारे यहाँ के मुकुट से भिन्न है।'

'अरे वाह ! लो मैं बतलाती हूं।' हिमानी चौकी के पास गई। सहसा उसका हाथ छोटे तिरे पर गया। उसी को उठाकर दीर्घबाहु के हाथ मे दे दिया।

'लो रक्खो इसे सिर पर।'

दीर्घबाहु ने बिना झिझक के लेकर सिर पर रख लिया—रक्खा पीछे का भाग आगे ! आगे के भाग में होकर सिर के बड़े बड़े बालों की खीसें सी निकल पड़ी। पीछे का भाग बहुत ऊँचा होने के कारण बहुत बेडोल दिखाने लगा। हिमानी हँस पड़ी,—'बहुत दिप रहे हो !'

'क्यों क्या बात है ? सोना और हीरे मोती कहीं भी रख दो अवश्य दिपेंगे।'

'काच मे देखो।'

'दूसरे को तुम भी रक्खो। फिर दोनों मिलकर कांच में देखेंगे।' हिमानी ने बड़ा तिरा उचित ढङ्ग से रख लिया। दीर्घबाहु प्याजी आंखों सा हिमानी को देखता हुआ काच की ओर बढा। हिमानी पहले ही उसके सामने पहुंच गई थी और अपने बढ़े चढ़े गौरव को देखकर प्रसन्न हो रही थी। उस प्रसन्नता में दीर्घबाहु ने मादक आकर्षण का उल्लास अवगत किया। अपनी आकृति को कांच में न देखकर हिमानी को निरख रहा था। हिमानी उसकी छवि (!) को देखकर फिर हँसी।

दीर्घबाहु के मुंह से यकायक निकला, वाह मेरी···वाह मेरी ही··· वाक्य पूरा नही हो पाया। गौरी कमरे मे आ गई थी। वह हिमानी की दी हुई नई साड़ी पहिने थी।

एक क्षण खण्ड में ही हिमानी का रङ्ग आया और गया। दीर्घबाहु के चेहरे पर कोई चढाव उतार नही आया। वह मुड़कर गौरी की ओर देखने लगा। यह दासी तो बहुत सुन्दर है ! बहुत ही सुन्दर !! किन्तु है तो दासी। दीर्घबाहु के मन मे उठा। गौरी भूमि को देखने लगी। उसके पैर लौट पड़ने के लिये उठे। हिमानी ने अपने को तुरन्त संभाला।

बोली, 'तुम इन्हे नही जानती हो रेवती। अर्थात् केवल नाम जानती होगी इनका। ये मेरे छुटपन के साथी हैं और बड़े मित्र।'

'जी···मैं थोड़ी देर में आई जाती हूं।' गौरी कमरे के बाहर जाने को हुई।

'ठहर भी रेवती इधर आ।'

गौरी को लौटना पड़ा। सिर नीचा किये रही।

हिमानी ने कहा, 'ये तिरे जिन्हें यहाँ मुकुट कहते हैं कैसे दिख रहे हैं?' हिमानी अपनी कलेजे की धड़कन को गले तक नहीं आने देना चाहती थी। दीर्घबाहु गौरी को टकटकी सी लगाये देख रहा था।

'जी, बहुत अच्छे हैं',—गौरी ने ऊपर न देखकर कहा।

'अरी वाह! ऊपर देखो फिर बतलाओ।'

गौरी ने विरक्ति की, रीती, आँखों देखा। दीर्घ की टकटकी को भी देखा। भूमि पर दृष्टि घुमाती हुई बोली, 'जी, बहुत अच्छे हैं।'

'रसोई का काम निबटा आईं?' हिमानी ने पूछा।

गौरी वहाँ से तुरन्त चली जाना चाहती थी। उत्तर दिया,—'थोड़ा सा और रह गया है।'

'उसे भी निबटा लो। भोजन-ब्यालू के बाद आना।' हिमानी ने कहा। गौरी तुरन्त चली गई।

अब हिमानी का रङ्ग कुछ फीका पड़ा। इधर-उधर देखने लगी। उसको चुपके देखकर दीर्घबाहु बोला, 'यह रेवती अपनी नौकरानी है और तुम्हारे हाथ की। बड़ी अच्छी मालूम होती है।'

हिमानी ने दीर्घबाहु की टकटकी के एक अंश को अपने मन की उस गड़बड़ मे देख लिया था।

'हाँ आं, सो कोई बात नही। एक दिन उसके सामने सब बातें वैसे भी प्रकट होनी हैं। परन्तु तुमसे कहती हूँ कि वह वाक्य जिसका आधा तुम्हारे मुंह से फूट पड़ा था आगे न निकले। बड़ी ही सावधानी की आवश्यकता है। बगीचे में चलो वहां बात करूँगी।'

तिरों को यथास्थान रखकर हिमानी दीर्घबाहु के साथ बाहर चली गई।

[६०]

गौरी अपनी बन्द कोठरी में उस नई साड़ी को उतार कर पुरानी पहिन रही थी। कितने नीच और निर्लज्ज हैं ये दोनों! और वह दीर्घ-बाहु? भेड़िये की जैसी आँखे हैं उसकी। मुझे कहा से कहाँ आना पड़ा! नौकरी कही भी कर लूंगी; नही कुछ दिनों के लिये यही स्थान अच्छा है, बहुत अच्छा। कही और होती तो वह सब कैसे जान पाती? वे कैसे बच पायेंगे इन हत्यारों के हाथ से? ये लोग किस समय क्या करने जा रहे हैं? हिमानी बातों बातो में कदाचित कह जाय। उसके ढङ्ग से मालूम होता है। निकट सम्पर्क मे उसी दिन से मुझे लाने की धुन में है जब इन सब ने वह षड़यन्त्र रचा। अम्बिका साथ मे होती तो कितनी बड़ी बात होती। क्यों होती—सुखी रहे वह धौम्य खेड़े में या जहां ब्याही जावे हे भगवान वह सुखी रहे। उन्होने तीन चार दिन की अवधि क्यो चाही है? हामी भरने के लिये? हामी न भरें तो बहुत अच्छा होगा। उसके भीतर न जाने क्या हो गया है। मुझे तो भूल ही गये होगे। सोचते सोचते गौरी को चक्कर आ गया और वह खाट की पाटी पर बैठ गई। खिड़की की ओर देखा तो सूर्य की किरणें तिरछी-लम्बी हो गई थीं। सन्ध्या होने मे थोडा सा विलम्ब था। उसने फिर अपने देवता से प्रार्थना की। मन मे एक उत्तेजना उठी। तो मैं क्या यह चाहती हूँ कि उसके भीतर का विकार बढ़ता जावे इसलिये वे नाही कर दें? नही बिलकुल नहीं। हे भगवान वे हामी भर दें और वह दिन आवे जब मैं पहले मर जाऊँ और फिर—चाहे जो कुछ हो। यह मेरा दुर्भाग्य नही होगा, सौभाग्य होगा। तुम्हारी कृपा से दुर्भाग्य मेरे सामने नही आयगा—नही आने दूगी। गौरी उठ खड़ी हुई और एक नई स्फूर्ति लेकर रसोई-घर में चली गई। वहाँ दो नौकरानियो के साथ कपिञ्जल काम कर रहा था।

नौकरानियों से गौरी ने कहा, 'तुम लोग कोई दूसरा काम देखो। आज मैं ही सब करे देती हूं।'

थोड़ा सा शिष्टाचार करके दोनों नोकरानियां चली गईं। गौरी काम करने लगी।

कपिञ्जल ने कहा, 'बहिन, तुम्हारे लिये खासी की औषध ले आया हूँ।'

'चूल्हे में अब धुआँ नही है। औषध नही खाऊँगी। वैसे भी मौत से डरना क्या भैया।'

कपिञ्जज को आश्चर्य हुआ। गौरी के स्वर और शब्दों मे प्रखरता थी। वह बात करना चाहता था।

'व्याह की बात चल रही है, पर यहां व्याह की तैयारी कोई नही।'

'उस षडयन्त्र की तैयारी हो रही है जिसका अपने कानों सुना हाल तुम्हे बतलाया था,'—गौरी ने धीरे से कहा स्वर मे अब वह उत्तेजना नही थी।

'तुमने उस समय बात करने में संकेत मे वर्जित कर दिया था। ऐसा क्या था?'

'वैसे ही रोक दिया था। एक बात पूछूं?'

'हा बहिन, कहो।'

गौरी ने रसोई की सामग्री इधर-उधर करते हुये पूछा, 'उनका... ...राजकुमार का तन-मन कैसा है-अर्थात् अभी यही सुना कि मस्तिष्क मे कुछ विकार हो गया है कुछ अस्वस्थ है।'

'बहुत समय से नही मिला। उनके निवास की ओर से कभी साझ-सवेरे निकला तो देख नही पाया। सुना अवश्य है कि अनमने बने रहते हैं।'

क्यो अनमने बने रहते हैं, कब से यह दशा है वह पूछ ही कैसे सकती थी?

'उनके पास यदि इस षडयन्त्र का समाचार पहुँच जाय तो वे सावधान हो जायेंगे।'

'परन्तु मेघ इत्यादि ये सब सचेत हो जायेंगे। यह षड़यन्त्र तो गड्ढे में चला जायगा पर सम्भव है कोई दूसरा रचा जावे जिसका पता ही न लगे। ये लोग दूसरा षड़यन्त्र न रचकर खुला युद्ध भी छेड सकते हैं। फिर बहुत रक्तपात होगा और अपने पक्ष की विजय की पूरी आशा नही, क्योंकि इधर पूरी तैयारी हो रही है और उधर केवल दान पुण्य का संकल्प बढ़ रहा है। अपने पास कोई भरा-पूरा प्रमाण नही, क्योकि तुम्हारी बात का वे लोग विश्वास करें या न करें और तुम यो ही सङ्कट मे पड़ जाओ।'

'नही भैया, नही। मैं राजा या राजकुमार के सामने कदापि नहीं जाऊँगी। जो कुछ बन पड़ेगा यही करूँगी। चार-छः दिन में इन नीच दुष्टों की योजना भी कदाचित पूरे ब्योरे में मालूम हो जाय।'

'हाँ बहिन, बहुत सतर्क रहकर सब देखना सुनना है। समय आने पर और आवश्यकता पड़ने पर मैं और मेरे साथी अपना सिर कटवा देने के लिये तैयार रहेगे।'

एक जो मेरा भाई हो गया है और मुझे इतना मानता है, क्या यह मारा जायगा? उस समय न मालूम क्या से क्या हो जाय। मैं अपना प्राण देकर भी उन्हे कैसे बचा पाऊँगी? तो अभी क्यों न वे सचेत कर दिये जावें? फिर युद्ध छिड जायगा। रक्तपात होगा और युद्ध मे न जाने किसका क्या हो। न जाने युद्ध कहा होकर होगा। उनके पहले ही मर जाने का सन्तोष भी मुझे प्राप्त न हो पायगा। गौरी की आँखो मे वही दुर्भाग्य फिर आ खड़ा हुआ। उसकी आँखों मे आँसू आ गये।

'बहिन, तुम चूल्हे पर से हट जाओ। आँसू आ गये हैं और अब खाँसी आ जावेगी।'

'नही भैया, मैं बड़ी अभागिन हूँ।' गौरी के होठो तक आ गया कि कह दूं—मैं भुवन से प्रेम करती हूँ, वह चाहे या न चाहे मैं उसकी रक्षा मे अपने तन के खण्ड-खण्ड करा दूंगी। मैं उस अवसर पर दूर नही रह सकती। हूँगी भी तो दौड़ पडूंगी और जलती आग में कूद पडूंगी। प्रेम

की बात अम्बिका को ही ठिकाने से नही बतला पाई तो भैया कपिञ्जल से कैसे कह दूं गौरी के होठो को जैसे किसी ने जकड़ दिया हो।

कुछ क्षण उपरान्त बोली, 'भैया, तुमने जो कहा कि अपना सिर कटवा दूंगा तो बुरा लगा। मां बाप की याद आ गई। एक भाई मिला सो क्या वह भी चल देगा?'

कपिञ्जल हँसने लगा। प्यार के साथ बोला, 'मेरी बहन कुछ पगली सी है।'

भाई के उस प्यार के स्वर और सम्बोधन ने गौरी के आंसुओं को थोड़ी सी हँसी दी जैसे वर्षा रोना झीना सा इन्द्रधनुष उदित हुआ हो।

देखो बहिन, एक बहुत बड़े महापुरुष ने, योगियों के पराग ने कहा है कि अपने धर्म के निभाने में मर मिटना बहुत श्रेयस्कर है। ये आंसू कैसे?'

गौरी ने आँसू पोंछ डाले और दृढ स्वर मे कहा,—'आगे अपनी बहिन को मरियल नही पाओगे। पगली तो वह है ही नही!'

[६१]

सन्ध्या की किरणें आकाश के बीच में जड़े हुये से छठवीं-सातवीं के चन्द्रमा को सजीव करने के लिये पश्चिम में बटुरती जा रही थी। नील के उद्यान में जो उसके भवन के पीछे लगा हुआ था तरह तरह के शीतकालीन फूल खिलकर मुद रहे थे—और रात में खिलने वाले खुल रहे थे। ठिठुराने वाला जाडा अभी नही आया था, परन्तु सन्ध्या की ठण्डी हवा भविष्य का संकेत दे उठी थी।

उद्यान के एक कोने से हिमानी के मुर्गे बांग दे रहे थे मानो अपने रात के विश्राम को पुकार पुकार कर बुला रहे हो।

दीर्घबाहु के साथ थोड़ी देर टहलकर हिमानी ने कहा, 'मैं तो थक गई हूं।'

'इतने में ही !'

'दिन मे उस तिरे के बनवाने मे घोर परिश्रम जो किया था।'

'तो चलो पत्थर की उस चौकी पर बैठ लें थोड़ी देर।' वे दोनों पत्थर की एक चौकी पर जा बैठे जो एक विशाल वृक्ष के नीचे रक्खी थी।

'अब करें कुछ बातें।' हिमानी ने प्रसन्नता के साथ कहा।

'इस मुर्गे का क्या नाम रक्खा है जो सबसे ऊँचा बोल रहा है ?'

हिमानी हँस पड़ी।

'इस समय मुर्गों की वात नही करूँगी। वे सामने नही हैं, तुम सामने हो। तुम उस समय क्या कहना चाहते थे जब रेवती यकायक आ गई ?'

रेवती आ गई थी और दीर्घबाहु ने उसे कुछ घूर घूर कर देखा था। पहले पहल जब आचार्य मेघ को खाना परोसने की बात कहने आई थी, तब भी कुछ वैसे ही देखा था, मैं उसकी अपेक्षा कही अधिक रूप वाली हूं। वह फटियल है और मैं बहुत ऊँची। मेरी उपेक्षा के कारण दीर्घबाहु कही ऊब तो नही उठा है ? मैं इस पर विजय प्राप्त

करूँगी। सम्भव है जीवन भी इसी के साथ बिताना पड़े। मूर्ख है। पुरुष अधिकतर होते ही ऐसे हैं। किसी अन्य दुष्ट मूर्ख के साथ से तो ऐसे सीधे सरल मूर्ख की सङ्गिनी बनना कही अच्छा। यह राजा होगा और मैं रानी। फिर राज्य तो मैं हीं करूँगी। रेवती! रेवती बहुत सीधी है, परन्तु सदा इसको अपने यहां रखना कदाचित् कभी सङ्कट खड़ा कर दे। काम हो जाने के उपरान्त अच्छा-सा पुरस्कार देकर विदा कर दूगी। पुरुष की मूर्खता कुछ का कुछ करा सकती है।

दीर्घबाहु बगलें झाँककर बोला, 'तुमने रोक दिया था। कहती थी कि वह शब्द मुंह से कभी न निकले।'

'मैंने यह तो नही कहा था कि कभी मुँह से न निकले।'

'मैं कहना चाहता था—मेरी ही रानी हिमानी।'

हिमानी ने मोहने वाली हँसी के साथ कहा, 'सो अब कह लिया।'

दीर्घबाहु उसकी ओर रिपटा। हिमानी हँसती हुई खड़ी हो गई। दीर्घबाहु भी खड़ा हो गया।

'अभी नही, अभी नही। पहले अपना काम हो जाने दो। फिर हमी-तुम दोनों तो हैं।'

'तुम्हारी थकावट कहा गई?'

'तुम्हारे उस शब्द ने सब हर ली।

दीर्घबाहु को वहुत अच्छा लगा।

'वरसो के बाद आज इतना देखने सुनने को मिला। कितनी प्रतीक्षा की! ओफ!!'

'थोड़ी और। बस थोड़ी सी ही और। देखो उस नाटक को बहुत ही अच्छी तरह खेलना है। भुवन से मैं कितने और कैसे भी शृङ्गार के शब्द कहूं जिन्हे तुम सुनो या न सुनो पर विश्वास रखना कि वे सब वैसे ही हैं जैसे तुम किसी जङ्गली जानवर को मारने के पहले प्रयोग करते होगे।'

'मैं कभी भूल नहीं करूँगा। तुम मेरी हो और मैं पूरा समूचा तुम्हारा। एक बार केवल एक बार उस शब्द को कह लूं ?'

थोड़ी दूर हट कर हिमानी हँसती हुई बोली, 'कौन-सा शब्द मेरे ?' हिमानी के भाव और प्रश्न में प्रोत्साहन था।

'बस बस बहुत हो गया। अब चलो रात होने आ रही है। योजना की कड़ियों को तुरन्त बना कर काम में लाना है,—हिमानी ने सावधान किया।

[६२]

भोजन ब्यालू के उपरान्त गौरी हिमानी के पास उस साड़ी को पहिनकर आई जिसे उसने तीसरे पहर उतार कर रख दिया था। नत मस्तक खड़ी हो गई।

'रेवती तुमसे आज बहुत बातें करनी हैं—अर्थात् थोड़ी होते हुये भी बड़ी बातें करनी हैं', हिमानी ने मृदुलता के साथ कहा।

'जी बहुत अच्छा। आपके अङ्ग दूख रहे होंगे, मलदूं?' गौरी उसकी ओर देखती हुई बोली।

हिमानी ने देखा उसके चेहरे पर वह उदासी नही है, कुछ ओज है। क्या कारण हो सकता है? उहं मेरी शङ्का निराधार है। दीर्घबाहु बिलकुल नही हिलडुल सकता। अरे स्मरण हो आया—मैंने ही तो कहा था इससे कि मरियल सी न रहा करो। इसके हृदय की तली आज थथोलनी है। बहुत काम निकालने हैं इससे।

'अच्छा अङ्ग दाबती जाओ और बातें सुनती जाओ,'—हिमानी ने कहा।

वह पलङ्ग पर जा लेटी और गौरी उसकी सेवा करने लगी।

'रेवती, तुम मुझे प्यारी लगने लगी हो?'

'जी आपकी बड़ी कृपा है मुझ पर।'

'तुम्हारा ब्याह हो गया था?'

'जी नही।'

'ओ हो बहुत दुःख झेलना पड़ा। तुम चिन्ता मत करो। मेरा सारा काम मेरी इच्छा के अनुसार पूरा हो जाय—बलदेव पूरा करेंगे फिर तुम्हारे लिये बहुत अच्छा वर ढुंढवा दूंगी। मेरे पिता का बहुत प्रभाव है।'

गौरी ने अपनी निश्वास को दबाया। बोली कुछ नहीं हिमानी ने सुन लिया।

'विषाद मत करो। तुम ऐसी ही नहीं बनी रहोगी । सोन -चांदी भी दूंगी। बस मेरे कहने पर चली चलो।'

'जी, अक्षर अक्षर पर।'

'अपनी गुप्त से गुप्त बातें तुम्हें शीघ्र बतलाऊँगी।'

गौरी गला साफ करके बोली, 'जी, जब इच्छा हो। जो कुछ करने के लिये कहेंगी, करूंगी, हो मेरे वश का।' उसके स्वर में कम्प नहीं था।

आतुर हिमानी के मन मे विश्वास बैठ गया।

'नगर के मार्ग तो तुम्हें मालूम होगे ?'

गौरी सावधान हुई।

'जी बहुत थोड़े। बरसें हो गई जब नगर छोड़कर बाहर चली गई थी।'

'राजकुमार भुवन के भवन का मार्ग तो जानती होगी ?'

'जी, राजभवन का मार्ग ?'

'अरी नही। जब से राजा रोमक गद्दी से उतारे गये तब से वे लोग नगर के एक भवन मे रहने लगे हैं। तुम्हे मालूम नही है। खोजने से बिना कठिनाई के मिल जायगा। कल उन्हे मेरा एक पत्र जाकर देना है तुम्हें। दूसरे किसी के हाथ नही भेजना चाहती।'

'मैं अकेले कहा फिरूंगी ?' गौरी के गले मे कपकपी आ गई।

'अरी रेवती डर मत। दास बतलाकर लौट आवेगा। अब तो अकेली नही भटकना पड़ेगा ?'

'जी',—इससे अधिक गौरी और कुछ नही कह सकी।

'तुम्हें बहुत-सी बातें बतलानी है, पर आज नही। नींद आ रही है। गाना भी फिर कभी सुनूंगी।'

[६३]

दूसरे दिन हिमानी ने गौरी को एक छोटी-सी रङ्ग-बिरङ्गी रेशमी थैली देकर कहा, 'वह पत्र इसी मे है। दास से कह दिया है। वह तुम्हें मार्ग दिखला देगा। थैली राजकुमार को दे देना। तुमने उन्हे पहले देखा ही होगा।'

जी क्या जानूं—छुटपन मे देखा होगा...'

'फिर वही मरी मरी सी ! कह दिया कि डरो मत। तुम्हे तो न जाने कितने बड़े-बड़े काम करने हैं। क्या साहस की इतनी कच्ची हो ?'

गौरी को फुरफुरी-सी आ गई। जैसे भीतर कुछ भभक पड़ा हो।

'आप मुझे कच्ची नही पायेंगी।'

'तो चली जाओ दास को लेकर। उत्तर देंगे। लेती आना।'

गौरी ने अपनी कोठरी मे जाकर किवाड़ बन्द कर लिये और चिन्ता मे डूबने उतराने लगी—

सामना होने पर क्या होगा ? पहिचान तो लेगे ही। उन्होने फिर पीठ फेर ली और न बोले तो ? तो मेरा कितना अपमान न होगा। कैसे सह पाऊँगी ? तत्काल मर जाने को जी चाहेगा। अरी हिश ! वह सब कोई विकार था जो उनमे अब भी सुना है। वहां तत्काल क्यों मरूँगी ? कदापि नही। उनकी रक्षा करते-करते मरूँगी। फिर चाहे वे भले ही रोवें, मैं तो मृत्यु के साथ हँसती-हँसती जाऊँगी। और जो मस्तिष्क मे विकार न हुआ और उन्होने कुछ वैसी बातें करनी चाही तो कह दूगी, मेरे प्राणों के स्वामी तुम्हारे विरुद्ध यह और वह जाल बिछाया जा रहा है। हिमानी के पास लौटकर नही आऊँगी। युद्ध होगा तब उनके सामने ही लड़ती लड़ती मर जाऊँगी। पर ऐसा क्यों सोचूं ? मरे मेरा दुर्भाग्य। और यदि वहां साक्षात्कार न करके कपिञ्जल भैया के हाथो पत्र भिजवा दूं तो ? अरी नहीं। उन्होने स्पष्ट कहा था कि सामने प्रकट होने का अभी समय नही आया है।

मैं स्वयं जाऊँगी। मेरे भीतर साहस है। परमात्मा उसे बढ़ायेंगे। इस चिट्ठी में क्या है ? देखूं ? पराये पत्र क्यों पढ़ू ? यह चोरी होगी। वाह ! वाह !! पराया क्यों ? मेरा अधिकार है। पढ़ूंगी।

थैली का मुंह रेशम की डोर से बँधा हुआ था। गौरी ने थैली खोल कर चिट्ठी पढ़ी। भोजपत्र पर थी। उसमें लिखा था—

'अत्यन्त प्यारे भुवन, मुझे कब अपनाओगे ? हामीं भरने में क्यों विलम्ब कर रहे हो ? हिमानी देवी।'

गौरी ने दांत भीचे—अत्यन्त प्यारे भुवन ! हूँ—हिमानी देवी !! छिः !!! गौरी ने पत्र थैली में रख दिया और उसका मुंह जैसे का तैसे कस दिया।

[६४]

गौरी ने पहले अपनी मोटी मैली धोती पहिनकर जाने की बात सोची। नही। मैं जिस स्थिति मे हूं उसे क्यों छिपाऊँ ? गौरी ने हिमानी के उतारन की साड़ी पहिनी और कपिञ्जल के साथ चल दी। आगे वह था। नगर के मार्ग उसके देखे हुये थे। बाजार भरा हुआ था। मुझे लोग देख रहे होंगे। कौन है ? कहां की है ? किसके पास जा रही है ? उतारन के कपड़े पहिने जा रही है ! उसे शायद ही कोई लख रहा हो। सब अपने अपने काम में उलझे थे। गौरी आंख नीची किये हुये कई मार्गों को पार करके एक ऐसी मोड़ पर पहुंची जहां कपिञ्जल रुक गया।

'वह रहा राजकुमार और उनके पिता का स्थान जहां तीन-चार लोग उसारे के नीचे चबूतरे पर बैठे हैं। मैं लौट पड़ूंगा। तुम चिट्ठी देकर आ जाना',—कपिञ्जल ने एक दुखण्डे भवन की दिशा में संकेत करके कहा।

'मैं अकेली···', गौरी का साहस खिसकने को हुआ।

'अकेली नही हो बहिन, भगवान तुम्हारे साथ है। दिन की बात है, लौटने पर मार्ग नही भूलोगी।'

'अच्छा भैया···', गौरी ने हृदय की धड़कन को सँभाला। कपिञ्जल उधर चला गया, गौरी उस भवन की ओर बढ़ी—या उसके पैर बढ़े।

उसारे के पास पहुंचकर सड़क पर खड़े खड़े उसने धीरे से पूछा, 'राजकुमार कहाँ हैं ?'

'भीतर हैं। उनसे क्या माँगने आई हो ? हलका-फुलका-सा दान तो मिल जायगा पर बड़े दाम अठवारे-पखवारे में ही खुलने की आशा करो', एक ने उत्तर दिया।

वे सब रोमक के पहरेदार थे।

गौरी ने आँखें नीची किये दबे स्वर में कहा, 'एक चिट्ठी लाई हूं।'

'एक ही बात है। मुंह से न मांगा, लिखवाकर मांगा।'

'कुछ भी मांगने नहीं आई हूँ। नीलपणि की पुत्री हिमानी की चिट्ठी राजकुमार के लिये लाई हूँ।' गौरी का साहस उठ खड़ा हुआ।

'अच्छा! अच्छा!!' उन सबों के मुंह से निकला। 'लाओ चिट्ठी। राजकुमार को स्वयं दोगी या मैं दे आऊँ?'

'आप दे दो',—गौरी के मुह से निकला और अपने वस्त्रों से वह रेशमी थैली निकाल कर प्रहरी के हाथ मे दे दी।

'तुम कौन हो? यदि राजकुमार ने पूछा तो क्या कहूँ?' उसने प्रश्न किया।

गौरी ने धीरे से उत्तर दिया, 'हिमानी जी की नौकरानी।' गौरी का हृदय फिर धुकधुकाया। सड़क की ओर से इधर-उधर देखने लगी, पर दिखलाई उसे कदाचित् कुछ नहीं पड़ रहा था था। यह क्या! मैं अपने को सम्भालूंगी, अब जो कुछ भी हो।

प्रहरी भीतर चला गया।

प्रहरी ने थैली भुवन के हाथ मे देदी,—'हिमानी देवी की चिट्ठी है।'

'कौन लाया है?'

'उनकी एक दासी।'

वहीं ममता भी थी।

ममता ने प्रहरी से कहा, 'उससे कह दो उत्तर थोड़ी देर मे मिल जायगा।'

प्रहरी चला गया।

'पढ़ो क्या है उसमें', ममता बोली।

भुवन ने पत्र पढ़कर थैली मे रख दिया।

'क्या कहती है हिमानी?'

'और क्या कहेगी, माता जी वह निर्लज्ज जो है।'

'तो अब तुम्हारे सामने कौनसी कठिनाई है? हिमानी भी एक वर्ग विशेष की नारी ही है। निर्लज्जता की इसमें क्या बात हुई? तुम तीन

चार दिन की अवधि चाहते थे सो दो दिन और रह गये हैं। जो कुछ आज समक्ष है वही दो दिन उपरान्त भी रहेगा'

'मैं हामी नही भरूँगा माता जी। गले मे पत्थर को नही बांधूगा। राज्य हम लड़ कर लेंगे।'

'उस नारी का यह अपमान! धन सम्पत्ति निरीहो की सहायता से उनके रक्त की नदी बहाकर!!'

भुवन सन्न रह गया। क्या यह वही माता है जो सदा पुचकार-पुचकार कर बोला करती थी।

ममता दूसरे कमरे में चली गई। भुवन के कानों मे सायं सायं हो रही थी। नथनों से सासें तीव्र गति से आ जा रही थी। क्या मैंने अपनी मां के साथ अशिष्ट व्यवहार किया है? ऐसा तो मैंने कुछ नहीं कहा। फिर वे इतनी क्षुब्ध होकर क्यों चली गईं? मैं उनके पैरों मे गिरूँगा और मना लूंगा। इतने मे वहा भीतर से रोमक आ गया। उसने भुवन की पीठ पर हाथ फेरा—

'बेटा हम क्षत्रिय हैं। लड़ाई में मरने से हमे स्वर्ग मिलता है परन्तु इस समय यह युद्ध तो उचित नही होगा। जैसे तैसे अकालों से पीछा छूटा तो युद्ध की आग से जनता झुलस जायगी।'

भुवन चुप रहा।

रोमक ने आग्रह के स्वर मे कहा,—'उस दिन एक बात मैंने तुम्हारी मानी थी, क्योंकि उचित थी—मैंने अपना खड्ग फेंक दिया था और पुण्य कमाया था। आज मेरी एक तुम मानो और, दूसरा बड़ा पुण्य कमाओ। राज की लालच मुझे नही है। जनपद का कल्याण मन में सबसे ऊपर है।'

भुवन के ध्यान में रोमक के उस थके हुये चेहरे का चित्र घूम गया जो उसने आश्रम में छः वर्ष पीछे पहले पहल देखा था।

मैं हां करता हूँ पिता जी',—भुवन के कण्ठ से कांपते हुये शब्द निकले।

ममता दूसरे कमरे के किवाड़ों के पीछे से आ गई । आकृति गम्भीर थी ।

'तुम्हारा भुवन कितना अच्छा है ! मान गया । नील को मैं स्वयं संदेश भेजता हूँ ।'

माता की मुस्कान विकसित हुई और गम्भीरता चली गई ।

'उत्तर भुवन ही भेज देगा या आप ही कह देना—कोई बात नही ।'

भुवन को 'नारी के अपमान' वाली बात का स्मरण हो आया । बोला, 'मैं उत्तर लिखे भेजता हूं ।'

ममता ने कहा,—'ठीक है । उस दूसरे कक्ष मे लिखने की सामग्री रक्खी होगी । लिख दो ।'

भुवन दूसरे कमरे में गया । लेखनी और स्याही मिल गई तो भोजपत्र नही मिला । प्रहरी को बुलाया ।

'हिमानी देवी की दासी बाहर है या चली गई ?'

'जी बैठी है ।'

'कह दो कि थोड़ी देर में उत्तर देता हूँ ।'

प्रहरी ने गोरी से कह दिया । वह चबूतरे के एक छोर पर पीठ फेरे गठड़ी बनी सी बैठी थी । तीसरे पहर की धूप थी, परन्तु उसका तीखापन ठन्डी हवा के कारण हलका पड़ गया था । तो भी मुंह पर पसीना आ आ जाता था जिसे वह अञ्चल से पोंछ पोंछ डालती थी । जी चाहता था कि यहाँ से उठकर कही जा छिपूं ।

जब उत्तर बड़ी देर तक नही आया तब गोरी उठ खड़ी हुई । पहरेदार से कहा, 'उनका उत्तर वही भिजवा देना ।' और सोचा कि मेरा वास्तविक कार्य यहाँ नहीं वहाँ है, वही ।

पहरेदार ने भुवन को गोरी की बात भुगता दी ।

'ठहरो, मैं स्वयं उससे जाकर कहे देता हूँ क्योकि लिखने की सामग्री नही मिल रही है ।' भोजपत्र सुरक्षित रक्खे जाते थे और थे भी वही कही, परन्तु भुवन की आँखें कही थी और ध्यान कही ।

भुवन बाहर आया । उस क्षण गोरी मार्ग के उस मोड़ पर पहुँच गई थी जहाँ से कपिञ्जल लौट गया था । गोरी की चाल और ठगन

को देखकर भुवन के मन में तुरन्त प्रश्न उठा—यह कौन है? ऊँचाई उतनी ही, गति भी वैसी ही। देखूँ। भुवन चबूतरे से उतर कर उसकी ओर बढ़ने को ही था कि यकायक रुक गया—आश्रम का संयम, राजकुमार का पद, भीतर की लालसा और गौरी का चित्र एक दूसरे से जा टकराये। यह वह नही है। हो ही नही सकती। गौरी तो चली गई! सास भर के भुवन भीतर चला गया।

रोमक ने भुवन की स्वीकृति का सम्वाद नील के पास भेज दिया और कहला भेजा कि विवाह का मुहूर्त थोड़ी सी ही अवधि का चाहते हैं। भुवन के मन मे फिर कोई हेरफेर न हो जाय! धन-सम्मत्ति शीघ्र हाथ लग जाय जिससे आगे का काम बने। मेघ वहाँ था। तुरन्त सातवें दिन का मुहूर्त रक्खा गया—दो पहर रात गये नील के भवन मे मण्डप के नीचे पाणिग्रहण और परिक्रमा। रोमक के पास मुहूर्त की सूचना भेज दी गई।

हिमानी के मन मे शङ्का उठी—भुवन ने स्वयं उत्तर क्यों नही दिया? लिख सकता था, कहलवा सकता था। रेवती इतनी देर वहाँ बैठी रही, फिर भी उसे वैसे ही लौट आना पडा! क्या बात है? भुवन का पूर्ण निश्शस्त्रीकरण अत्यन्त आवश्यक है। कल ही करके रहूंगी।

रोमक ने पुरोहित सोम से बात करके मुहूर्त स्वीकार कर लिया। शीघ्र विवाह हो जायगा और अविलम्ब बहुत सी धन-सम्पत्ति मिल जावेगी, जनपद का काम प्रचुरता और कुशलता के साथ चलेगा—फिर राज्याभिषेक और थोड़े से ही वर्षो के उपरान्त वानप्रस्थ! सोम को भी अच्छा लगा। टंटा टूटा, किसी तरह भी टूटा।

नील ने सगाई पक्की करने के उपलक्ष मे थोड़ा सा सोना-चाँदी, मोती और वस्त्र रोमक के यहाँ भेज दिये। बहुत नही आये तो कोई बात नही—भविष्य तो उन्ही-उन्ही से भरा हुआ है!

कब क्या करना है इसके ब्योरे को नील और दीर्घबाहु के साथ तै करके मेघ अपने अन्य अनुयायियो को साधने-सम्भालने के लिये गाँव चला गया।

[६५]

पञ्चाल से उसी दिन आरुणि आ गया। भुवन को लगा जैसे आश्रम का बल और उल्लास उसकी एकान्तता को भगा देने के लिये आ पहुंचा हो। कहीं वेद और कल्पक भी यहाँ होते। उनको शीघ्र बुलवाऊँगा।

आश्रम की और आश्रम से बाहर की, अयोध्या की और पञ्चाल की, अर्थ की बातें और व्यर्थ की ऊल-जलूल भी, उन दोनो में होती रही। आरुणि को होने वाले सम्बन्ध का ब्यौरा सुनने को मिला—गौरी की चर्चा हो ही कैसे सकती थी ? आरुणि प्रसन्न था। मितभाषी आरुणि को अधिक बोलने के लिये नई भाषा मिली।

'अच्छा हुआ तुमने हामी भर दी···रक्तपात बचा, कठिनाइयाँ सहज हुईं, वैरी मित्र हो जायेंगे, जनपद का काम अच्छा चलेगा', आरुणि ने कहा।

'हामी भरनी पड़ी। अपने हाथ मे काफी सामन्त, सैनिक, हथियार और जनता है; धन-सम्पत्ति की अवश्य कमी है। कर्त्तव्य का पालन करना पड़ा।'

'भुवन के स्वर मे उदासी आ गई थी।

'तो अब उदास क्यों हो ? ब्याह करने जा रहे हो या श्मशान मे ?'—प्रश्न आरुणि के योग्य ही थी। भुवन के होठो पर फीकी मुस्कान आई।

'यह हिमानी बडे कठोर स्वभाव की स्त्री है।'

'और तुम तो बिलकुल भेड-बकरी ही हो !'

भुवन जरा-सा हँसा। आरुणि से बात करके भुवन उस दिन जितना हँसा उतना महीनो से नही हँसा था।

'भैया आरुणि, कहीं तुम जैसा पत्थर मैं होता·····और तुम जैसा कर्मशील ज्ञानी भी।'

'बस उतना ही कहो—मैं पत्थर ही ठीक हूँ। तुम व्यर्थ ही पत्थर बन जाना चाहते हो। होते भी तो व्याह के बाद तुम पानी हो जाते और वह कठोर स्वभाव वाली स्त्री मोम। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा है।'

भुवन ने लम्बी सांस भरी निकाली—

'आरुणि, मैं दो एक दिन में ही पत्थर होने वाला हूं। पत्थर का व्याह आँधी के साथ होना है।'

× × ×

दूसरे दिन लगभग एक पहर दिन चढे हिमानी ने गौरी को बुलाया।

'देखो रेवती तुम्हे आगे रसोई घर का काम नही करना है। मैंने दूसरो को सौप दिया है। दास भी उस काम पर नहीं रहेगा। बस अब तुम्हारा काम मैं हूँ। यह अलङ्कार, वह आभूषण, यह वस्त्र वह सामग्री-तुम्हे ये उठानी-धरनी और सँभालनी हैं। काम करने के बाद तालों की कुञ्जियाँ मुझे संभला दिया करो और फिर चैन की बन्शी बजाओ। मेरे साथ बातें होती रहेंगी। बातों से थकी तो गाने लगी। गाने से थकी तो नाचने लगी। घबराओ मत मैं तुम्हे सिखलाऊँगी।'

'बहुत अच्छा। दास के लिये काम ?'

'बगीचे का काम। मेरे पास से जैसे ही तुम्हे अवकाश मिला करे बगीचे से फूल इकट्ठे कर लाया करो। दास इसमें तुम्हारी सहायता करेगा। हार माला गूंथना जानती हो ?'

'जी हाँ—कुछ कुछ।

'अरी उसमे हैं क्या ? दास जानता होगा, न भी जानता हो तो जल्दी सीख लेगा घड़ी भर मे आ जायगा माला का गूंथना।'

'बना लूगी।'

'दास को लेकर बगीचे में चली जाओ और बड़े-बड़े से फूल तोड़कर दो बढ़िया मालायें गूंथ लाओ। एक मेरे लिये होगी, एक राजकुमार के लिये।'

गौरी का चेहरा यकायक फक हो गया।

'अरी यह क्या ? तुम तो राजकुमार भुवन के नाम से इतनी डरती हो जैसे वह तुम्हे काटने दौड़े हों।'

गौरी ने अपने को तुरन्त सँभाला,—'वे तो मुझे मिले ही नही थे, आते ही आपको बतला दिया था।'

'तुम बिलकुल मत डरो, किसी से भी मत डरो। निडरपने के बहुत से काम करने को आगे आने वाले हैं। मैं सब बतलाऊँगी। जानती हो मालायें काहे के लिये बनवा रही हूँ। नही जानती। स्वयम्वर की प्रथा है ही। मैं राजकुमार के गले मे जयमाल डालने आज ही उनके भवन पर जाऊँगी। वर के घर जाना हमारे यहाँ अच्छा समझा जाता है, और तुम्हारे यहां भी कुछ लोग इस रीति को बर्तते होगे। मैंने उनके पास सम्वाद भेज दिया है। अब चली तो जाओ और दास की सहायता लेकर बना तो लाओ बढ़िया रङ्ग-बिरंगे पुष्पहार अविलम्ब।'

गौरी 'बहुत अच्छा' कहकर हिमानी के कमरे से ऐसे गई जैसे गरम अवे के भीतर से बाहर निकल पाई हो।

× × ×

गौरी और कपिञ्जल ने अनेक प्रकार के फूल तोड़कर उद्यान के एक वृक्ष की छाया मे इकट्ठे कर लिये।

वे दोनो माला गूंथ रहे थे और सतर्क भी थे।

'ये लोग सातवें दिन अपने ही घर मे विवाह मण्डप के नीचे वह घोर राक्षसी कर्म करना चाहते हैं!' कपिञ्जल ने धीरे से कहा।

'तो क्या वे लोग सफल हो जायेंगे ?'

'नही हो पायेंगे, मुझे आशा है।'

'मैं तो रहूँगी ही वहाँ।'

'किसी न किसी बहाने मैं भी मण्डप के नीचे बने रहने का उपाय करूँगा।'

'फिर भैया तुम्हारे सहयोगियों के साथ बाहर कौन रहेगा उस घड़ी ? भुवन के भीतर मण्डप के आसपास वे बहुत से होगे और हम तुम थोड़े से ही पर— पर इससे क्या। जब तक देह मे प्राण रहेगे उन पर अर्थात राजकुमार पर—आँच नही आने दूगी।' गौरी की उस असाधारण उत्तेजना पर कपिञ्जल को कुछ विस्मय हुआ।

गूथते गूथते गौरी के हाथों, एक अनायास झटके से माला टूटकर गिर गई।

'अरे भैया, यह तो बिखर गई।'

'कोई बात नही फिर बन जायगी।' माला फिर से गूंथी जाने लगी।

'यह किसी प्रकार मालूम हो जाय कि ये लोग उस दिन क्या क्या करने वाले है तो हम सब का काम सहज हो जाय।'

'भगवान कृपा करेंगे। मैं अपने आँख कान बहुत सजग और सावधान रक्खूगी।'

× × ×

'तुमने बहुत देर लगा दी रेवती !' हिमानी ने कहा। उसकी नाक का नथना जरा-सा ऊपर को सिकुड़ा फिर तुरन्त अपने स्थान पर आ गया।

'जी फूल बीनने और गूथने मे कुछ समय निकल ही गया',—गौरी नत-मस्तक हो गई, परन्तु उसके गले मे कातरता नही थी।

'कोई बात नही, कोई बात नही मेरी रेवती। बनाई अच्छी हैं।' हिमानी हार लेकर उस ऊँची चौकी के पास गई जिस पर काच रक्खा हुआ था। एक माला उसने अपने हाथ को पहना दी और दूसरी गले में डाल ली। कांच मे अपना प्रतिबिम्ब देखकर मुस्कराई—मैं कितनी रूपवती हूँ ! हिमानी ने नही देखा कि गौरी की आँखों मे एक क्षण के लिये कितनी ग्लानि छा गई थी जिसे कदाचित ही कोई कांच सह पाता।

हिमानी ने मालायें उतार कर सावधानी के साथ चौकी पर रख दी। 'तुम्हें हमारे साथ चलना है रेवती।'

'कहाँ ?' गौरी जैसे तिलमिला गई।

'अरी वही रेवती वहीं—राजकुमार भुवन विक्रम के भवन पर! वह देखो, पीली-सी पड गई! धत्तेरी की!! इस देश की स्त्रियो के विकट कामों की मैंने बडी-बड़ी कहानियाँ सुनी हैं, पर न जाने तुम्हे छोटी छोटी-सी बात पर क्या हो जाता है। भुवन कोई भेड़िया या तेंदुआ या रीछ नही है। कह दिया कि न जाने कितने ऊँचे कामों मे तुम्हें मेरा साथ देना है—'

'जी कभी कभी कुछ ऐसे ही हो जाता है। अब नही होगा।' गौरी ने दृढ़ स्वर में आश्वासन देने का प्रयास किया, परन्तु स्वर मे दृढता की कमी थी।

हिमानी ने अपनी पेटी मे से एक बहुत बढिया रङ्ग-बिरङ्गी साडी निकाली, टटोली और उलट-पलट कर देखी। उसे पेटी में फिर से रख देना चाहती थी कि गौरी पर आँख जाकर अटक गई। गौरी की लम्बी काली बरौनियाँ उसकी दृष्टि को अधमुंदी किये थी—जैसे कोई छोटी सी हिरनी सोने के प्रयास मे हो। हिमानी के मन मे उठा—मेरी बादामी आँखो को नही पा सकते इसके बड़े बड़े गटे जो छिपे रहना चाहते हैं।

'रेवती यह साड़ी पहिनकर चलो मेरे साथ तो कैसा रहे ?'

'यह साडी!' गौरी के बड़े नेत्रो की उन बरौनियो ने भौंह को विस्मय के आवेश से छू लिया,—'यह साडी! दैयारे!! यह तो आपके पहिनने योग्य है। क्या करूँगी पहिनकर! मैं नही पहन सकती।'

हिमानी हंस पड़ी। छोटे वर्ग की गँवारिन है न—दैयारे! अच्छा लगा इसके मुह से।

हिमानी ने तुरन्त वह साड़ी जहाँ की तहाँ रख दी। उसे वह देना ही नही चाहती थी। क्षणिक आवेश ने या गौरी को बड़प्पन देने की भावना ने ही हिमानी से उतना कहलवाया था।

'अच्छा तो यह ले लो,'—हिमानी ने दूसरी साड़ी निकाल कर गौरी को दी। यह भी रेशमी थी, परन्तु उस पर हलके रङ्ग के छोटे-छोटे छपके थे और थी भी कम बढिया।

'पहिनकर आ जाओ।'

गौरी चली गई। हिमानी साज सिगार करने मे व्यस्त हो गई। उसकी सजधज अभी पूरी नही हो पाई थी कि गौरी उस साड़ी को पहिनकर आ गई। गौरी के मन में आया कि काँच मे देखूं मैं कैसी लगती हूँ इस साड़ी मे। फिर—उहँ, रहने दो क्या करना है। तो भी वह एक क्षण के लिये काच के सामने पहुंच-गई। मेरे गले में कोई गहना नही। ऐसी जान पड़ती हूँ जैसे जङ्गल की कोई छोटी सी झाड़ी हूँ और हिमानी जैसे कोई रङ्ग-बिरङ्गा झाड़! जब आँधी चलेगी तब यह झाड—?

'रेवती आओ तो इस मुक्ताहार का बँध पीछे से बाँध दो।'

गौरी तुरन्त काँच के सामने से हटकर उसका शृगांर कराने लगी।

[६६]

जब झरप पड़े रथ में गौरी हिमानी के साथ बैठी भुवन के भवन की ओर जा रही थी तब उसके मन मे उमङ्ग कम थी कातरता अधिक। नैमिपारण्य मे वहाँ जब फल फूल देने जाती थी तो कितनी बाट जोह जोह कर कितनी आँखे बचा बचाकर, कितनी गायों को भटकने मे रोक-रोक कर उस ठौर पर पहुँच पाती थी। और हाथ के बुने मेरे उन मोटे कपडो पर जिन पर बछडो के गोबर में वन की धूल सनकर भद्दे छपके ठोक देती थी वे अपनी कितनी मुस्कानें बरसा देते थे! आज इस साड़ी के ये बुन्दके! देखकर क्या सोचेंगे? पहिचान नही सकेंगे। उनका मन कुछ का कुछ हो गया। वही वृत्ति नैमिपारण्य में मेरा तिरस्कार करवा उठी थी। तो मैंने भी मुह फेर फेर लिया फिर मैं उस दिन क्यों झपट दौडी जब वे उस टेकड़ी पर पत्ते चबा चबाकर खा रहे थे? और वे मुझे देखते ही भाग गये। जैसे मैं कोई डायन थी! वैसी विकृति न होती तो कभी नही भागते। क्षत्रिय अपना दिया वचन कभी नही भूल सकता। मैं ही दुष्ट हूँ। मुझे उस प्रकार का वर्ताव नही करना चाहिये था। जब उस दिन मैं पानी के घडे लिये धौम्य खेड़े में उनकी ओर चली आ रही थी बहुत चाहा कि आँखो ही आँखो उनसे पूछूँ कि क्या बात है तो उन्होंने सिर तक नही उठाया। उसमे तो मेरा कोई अपराध था नही।

'इस चौराहे के जितने दूकानदार है वे सब अपने रिनिये हैं',-हिमानी ने झरप के छेदो की ओर मुह किये हुये कहा।

'जी।'

वह सब उसी विकार के कारण रहा होगा। और कुछ हो ही नहीं सकता था। आज फिर इतने दिनों पीछे देखूंगी। वे कदाचित न पहिचाने। पहिचान भी लेगे तो फिर तिरस्कार—नही उपेक्षा-या क्या? करें तो करलें, मुझे क्या। मेरे लिये तो वे ही हैं और रहेगे अर्थात जब

तक मैं मरी नही हूँ। आज से कितने दिन रह गये हैं ? गौरी उँगलियों के सिरो पर अँगूठे को सहसा फेरने लगी । हिमानी ने देख लिया ।

'क्या गिन रही है रेवती ?' हँसकर हिमानी ने पूछा ।

गो्गी चौक पड़ी,—'जी—जी—व्याह के कितने दिन—'

'अच्छा ! ठीक है, ठीक है । गिन ले जिससे भूले नही । कहती थी थोडी-सी पढी-लिखी हूँ ! याद रखना आज से छठवें दिन की रात के दूसरे पहर ।'

गोरी ने झटपट उङ्गलियों पर से अँगूठा हटा लिया था ।

रथ रोमक के भवन के सामने जा खड़ा हुआ । रोमक और ममता ने हिमानी का सत्कार किया । हिमानी की बनावटी लाज और सँवारी हुई बनठन ने उन दोनों को मुग्ध कर दिया । गौरी हिमानी के पीछे थी । उसकी सहज स्वाभाविक लाज कुछ और बोझिल हो गई । यह कौन है ? ममता के मन मे उठा—न कोई बड़ी वेश-भूषा; फिर भी बहुत सुन्दर ! नौकरानी है । रोमक और ममता हिमानी को एक कक्ष के द्वार तक पहुंचा कर दूमरे में चले गये ।

जिस कक्ष मे हिमानी और गौरी ने प्रवेश किया उसमे आरुणि और भुवन थे । सजी हुई चौकिया बिछी थी । आरुणि ने हिमानी को थोड़ा-सा लखा और मन मे निर्धार किया—इस स्त्री मे कठोरता प्रचण्डता का कोई लक्षण नही पाया जाता. भुवन तो यो ही है । गौरी के चेहरे को उसने नही परखा । हिमानी की कोई सेविका है उसे भासा । भुवन ने हिमानी को एक क्षण मे ही ऊपर से नीचे तक निरखा जैसे वह कोई कुतूहल हो । गो्गी हिमानी के पीछे खड़ी थी । भुवन ने उसको केवल छाया की तरह देखा । गौरी ने आरुणि को पहिचान लिया । धन्य परमात्मा ! ये आ गये ! ! गौरी अपनी धुकधुकी के साधने मे लग गई—ओट से, कनखियो भुवन को देखा । नारङ्गी रङ्ग का कोपीन आश्रम मे रह गया, कमण्डल और झोला भी वही । सुन्दर कञ्चुक, धोती और उष्णीष मे है । न दृष्टि नीची है और न सिर । बड़ी बड़ी आंखों

हिमानी को देख रहे हैं ! क्या भीतर छिपे हुये इसके दैत्य को देख पा रहे होगे ? गौरी विचलित हुई।

आरुणि और भुवन ने हिमानी को सम्मान के साथ चौकी पर बिठलाया और वे भी थोडी दूर चौकियो पर बैठ गये । हिमानी की चौकी कक्ष कीं दीवार के निकट थी। गौरी उसके पीछे दीवार से सटी हुई सी मुह फेर कर खड़ी हो गई।

भुवन के भीतर एक ज्वार-भाटा सा उठ खड़ा हुआ—इसने मेरे रथ पर अपना रथ चढा दिया था ! बाण-विद्या अच्छी जानती है, परन्तु है उस मेघ की शिष्या। मैंने उस दिन उसे चाबुक से पीट डाला था जब छद्मवेश में जनता को बहका भड़का रही थी। परन्तु मैंने स्त्री समझकर नही पीटा था। यह बात इससे कह कभी नही पाया । यह विवाह के लिये तैयार ! और मैं ? आज यह वरमाल डालने आई है । पिता जी के उतने दान-पुण्य ने यह दिन न दिखलाया होता तो अच्छा होता जन्म भर कुआँरा रहता। अरे यह क्या ! पिताजी को उतना बड़ा वचन दे चुका हूं। क्या मैं अब पीछे हट रहा हूँ ? पुरुष को सब कुछ सहना चाहिये। पत्थर के साथ आंधी का विवाह होगा तो आंधी उसका क्या कर लेगी ? पत्थर के चारो ओर भँवर बनकर चक्कर काटती रहेगी। भुवन के भीतर भँवर मच रही थी।

सब चुप थे। उस चुप्पी ने कई क्षण ले लिये। आरुणि बिचारा बगलें सी झाँक रहा था—कहें तो क्या कहे ? हिमानी की बनावटी लाज ने वास्तविक सङ्कोच का रूप पकड़ा। मैंने बहुत आतुरता कर डाली ! यह अभागिन रेवती इतनी संकोचिन और निकम्मी है कि कुछ कहती ही नही। और वाचाल दासी होती तो मेरी ओर से बातो का झाड़ खड़ा कर देती। परन्तु कोई और इतनी विश्वसनीय है भी नहीं। भुवन क्यो कुछ नही कहता ? ओह ! शायद पुरानी बातों के लिये मन में अच्छता-पछता रहा है। तो मैं क्यो चुप रहूँ ? जब छठवें

दिन उतना बड़ा काम मुझको ही करना है तो मैं और अधिक लाज-सकोच क्यो करूँ ?

गौरी ने कनखियो देखा भुवन आँखें नीची किये अपने हाथ की उँगलियां चटका रहा है। वही विमनता है या कोई खिन्नता ?

हिमानी को बोलना पडा,—'आप बीती बिसार दीजिये,—मन कैसा है ?'—फिर लजाकर,—'अब तो आपकी होने जा रही हूँ।'

गौरी की आँखो से चिनगारिया-सी छूट पडी।

आरुणि ने सोचा हिमानी कठोर स्वभाव की तो नही पर कुछ लफङ्गी अवश्य है। शास्त्र में इस स्त्री का वर्गीकरण क्या होगा ? होगा। आरुणि ने भुवन की ओर देखा। यह आश्रम मे मुझे अपना बडा मानता था। इसीलिये इतना सकुच रहा है ! मुझे यहाँ बैठना नही चाहिये। कही और चल दूं।

हिमानी ने उसी लाज-लोच के साथ भुवन से एक क्षण उपरान्त कहा, 'किस सोच-विचार में पड़े हैं ?'

'सोच रहा था क्या से क्या करना है',—भुवन के चेहरे पर बरबस मुस्कान आई।

आरुणि खडा हो गया,—'थोड़ी देर के लिये अपने कक्ष मे जा रहा हूं। तब तक तुम दोनों बातें कर लो। अवसर पर बुला लेना।' और बाहर चला गया।

भुवन ने सोचा आरुणि कर्मशील ज्ञानी तो है, परन्तु है ओड़ा। गौरी को लगा जैसे उस सुनसान मे वह अकेली रह गई हो।

हिमानी बोली,—'तब से अब तो आप बिलकुल बदल गये हैं ! तपोवन के आश्रम से जय बाघ लाये है।'

'वही की कुछ स्मृति के साथ यहाँ की पुरानी बातें उमड़ पड़ी थी। कुछ महिने ही तो हुये हैं जब वहा से लौटा हूँ।'

'यहाँ की उन पुरानी बातों को छोड़िये। वहां के जङ्गल के मङ्गल के साथ अब यहा नगर के मङ्गल की बात सोचिये।'

हिमानी एक लचक के साथ मुस्कराई।

भुवन ने सोचा मैं पत्थर तो हो रहा हूँ, परन्तु बात पुरुष की भांति करनी चाहिये—'अब आपके साथ यहां नगर मे ही मङ्गल पर मङ्गल होगा।'

अरे! यह बात तो भीतर के किसी विकार की रचना-सी नही लगती! गौरी के मन मे कौंधा।

'उसी मङ्गल का प्रारम्भ करने के लिये ही इस घडी यहां आई हूं। जयमाल डालूंगी गले में। अरी···ओ · वे गजरे दे दो जो तुम्हारे अञ्चल मे हैं।'

गौरी सिर बहुत झुकाये हिमानी के पार्श्व में आई। जैसे ही उसने हिमानी को हार दिये भुवन ने देखा। नीचे नीचे से ही गौरी ने भी।

भुवन को लगा जैसे उसकी नसों मे रक्त का सचार यकायक रुक गया हो। जैसे उसके हृदय को किसी ने वेग के साथ झटका दिया हो। गौरी ने वहां से हटकर फिर दीवार जा पकड़ी जैसे अचेत होकर गिरने से अपने को साध रही हो।

'ओह! उहँ!! मैं थोड़ी देर मे आता हूं', भुवन कहकर तुरन्त एक कक्ष मे चला गया।

हिमानी का चेहरा तमतमा गया। दांत पीसकर बहुत धीरे से बोली,—'क्या हो गया तुम्हे?'

गौरी दीवार के सहारे को साधती-साधती झुक गई थी। मरे से स्वर में बोली,—'एक रोग है ··कभी कभी हो जाता है।'

'अभागिन! इसी घडी होने को था, यह सब!! यह दशा देखकर वह घबरा गये और वहां चले गये।'

गौरी ने किसी प्रचण्ड शक्ति या प्रबलदेव का स्मरण किया। फुरेरू आई और वह सचेत हो गई।

'कभी कभी उमड पड़ता है यह रोग। आगे न हो पायेगा।'

हिमानी ने अपने को कोमल किया,—'मैं शीघ्र औषधि उपचार का प्रबन्ध करूँगी। जाओ, बुला लाओ उन्हें। तुम्हे तो मेरी ओर से दपादप बातें करनी चाहिये। तुम चुप खड़ी रही, मुझे बोलना पड़ा। जाओ।'

'जी' गौरी के मुंह से ऐसे निकला जैसे किसी पत्थर की मूर्ति के मुह से झाँई आई हो।

गौरी ने साँस साधी। आधे क्षण के लिये किसी का ध्यान किया और पैरों को लोहे जैसा कठोर बनाने का प्रयत्न करती हुई उस कक्ष में धीरे-धीरे गई जिसमे भुवन यकायक चला गया था।

कमरे के किवाड़ खोलते ही गौरी ने देखा कि छाती पर हाथ कसे भुवन कमरे के दूसरे छोर पर कुछ द्रुतगति के साथ टहल रहा है। सिर उससे भी अधिक नीचा किये हुये जैसा उसने नैमिषारण्य मे देखा था। अब यह सब क्या? वहाँ से एक दम उठ आये और अब यहाँ क्या कर रहे हैं! सिर झुकाये गौरी धीरे-धीरे भुवन की ओर बढ़ी। जब कमरे मे आई भुवन को नही मालूम हो पाया था।

'आपको देवी जी बुला रही हैं',—धीमें, कापते, बैठे स्वर मे गौरी ने कहा।

भुवन यकायक रुक गया। यह तो बिलकुल वैसी ही सी है! सिर उठाये तो देखू। पर कैसे कहूँ कि सिर उठाओ, कोई और न हो।

'हूँ'—भुवन बोला,—'तुम कौन हो।'

'दासी···कही ··की·· थी···अब कही···की···नही हूँ···' भुवन ने अपना शब्द स्पष्ट सुन लिया। बाद का शब्द अस्फुट और अन्तिम वाक्य तो जैसे गौरी के होठो के संचरण के नीचे ही कही पिस गया हो।

भुवन ने कुछ और जानना चाहा—

'तुम्हारा नाम?'

'जी दासी',—वैसे ही झुका हुआ सिर, स्वर भी वैसा ही मन्द। गौरी के भीतर घोर द्वन्द्व मच रहा था—इनकी इसी दशा मे अपने को खोल दूं या अभी छिपाये रक्खू? अपने को खोल देने के उपरान्त और भी बहुत कुछ—सम्भवत. सारे का सारा खोल देना पड़ेगा। पर इतना

समय कहाँ है ? अवसर भी नही। वह निकट ही बैठी हुई है। इस विकृति में भी इन्हे क्या मेरा कुछ संशय हो गया है। कहूं तो क्या कहूँ ?

'रेवती ! ओ रेवती !!' हिमानी ने दूसरे कमरे से ऊँचे स्वर मे पुकारा।

'आई।' गौरी ने वही से उत्तर दिया और चले जाने के लिये पीठ फेर ली।

'यह गौरी नही हो सकती', मिलती-जुलती शकल की कोई नौकरानी ही है। भुवन ने निष्कर्ष निकाला और गौरी से कहा, 'कह देना थोड़ी देर में आते हैं।'

गौरी कक्ष के बाहर हो गई।

भुवन ने उसी समय ऊपर की ओर आँखें उठाईं और हाथ जोड़कर प्रार्थना की, 'हे परमात्मा, मुझे उजियाले का मार्ग सुझाओ। मैं अपने वचन से न डिगूं। मुझे कर्तव्यपालन करने की शक्ति दो, मुझे माता-पिता का ऋण चुकाने योग्य बनाओ…'

'क्या कर रहे हैं ?' हिमानी ने धीमे चिन्तित स्वर में पूछा जब गौरी उसके निकट पहुंच गई।

गौरी ने उत्तर दिया,—'कुछ समझ मे नही आया'' कहते थे कि थोड़ी देर में आते हैं।

हिमानी की चिता बढी—क्या बात है वह उस कोठे के द्वार की ओर बार-बार देखती हुई प्रतीक्षा करने लगी।

गौरी उसके पीछे वैसी ही दीवार के सहारे जा खड़ी हुई। उस द्वार की ओर उसकी भी दृष्टि जा-जा अटकती थी। उसके भीतर अब शाति थी, फिर भी डिगमिगाती हुई।

भुवन आ गया। आँखो में तेज था, बालों के नीचे गालों पर फीका-पन, पर दृढता। उसने गौरी की ओर नही देखा—होगी कोई। गौरी ने झांक लिया। उस रात भी कही इनके सन्तुलन में कोई बड़ी हलचल न मच जावे। मन ही मन प्रार्थना करने लगी।

'क्या करने लगे थे, राजकुमार ?' हिमानी ने मृदुलता के साथ प्रश्न किया।

भुवन ने मुस्कराने की चेष्टा करते हुये बतलाया, 'यकायक स्मरण हो आया था कि वरमाल ग्रहण करने के पहले परमात्मा से वचन निभाने की समर्थता के लिये प्रार्थना करूँ—हमारे यहाँ की रीति है।'

ऐसी कैसी प्रार्थना ! ये तो वहाँ उस छोर पर धौड़-धूप सी कर रहे थे। प्रार्थना का यह ढंग तो कभी कही नही देखा-सुना। परमात्मा इनको सन्तुलन दो, मेरा चाहे जो कुछ हो जाय। गौरी मन मे कह रही थी।

'और हमारे यहाँ,'—हिमानी हँसती हुई खड़ी हो गई और बोली,—'हमारे यहाँ भी एक परम्परा है, व्याह की रीति के पहले दूल्हा-दुलहिन बालदेव की पूजा करते है।'

उसमे क्या होता है, गौरी के मन मे प्रश्न उठा।

'उसमे क्या होता है ?' भुवन ने अधिक विकसित मुस्कान के साथ प्रश्न किया।

'फूलो की माला चढाते हैं शंख फूंकते हैं, और कुछ नही। शंख हम लोगो के समुद्र अभियानो का प्रतीक है। बाल देवता का मन्दिर हमारे भवन मे ही है।'

'ठीक है, ठीक है।'

'तो अब—?' हिमानी ने अपनी चौकी पर से दोनो फूलमालायें उठाकर लोच-लचक के साथ भुवन से कहा।

'आरुणि को भी वुला लूं। मेरा सहपाठी और गुरु-भाई है। माता-पिता का भी आशीर्वाद आवश्यक है।' भुवन ने कहा और बाहर चला गया।

माता-पिता का आशीर्वाद ! मेरे सम्बन्ध में मेरी माता को वचन देते हुये भी इन्होने यही कहा था। फिर गौरी की कल्पना मे माता-पिता का उस रात देहान्त और अयोध्या की कोठरी में देखा हुआ वह स्वप्न

आ गया। मेरा दुर्भाग्य ! परन्तु उसे अब पीछा नहीं करने दूगी। मैं अपने दुर्भाग्य के मगर को मिटा कर रहूँगी। परमात्मा मेरी सहायता करेंगे। इन्होने मुझे पहिचान ही नही पाया ! हे भगवान् !! भुवन अपने माता पिता और आरुणि को लेकर आ गये।

हिमानी ने भुवन के गले मे जयमाल पहिनाई। भुवन ने दूसरी माला उसके गले में डाली। हिमानी ने रोमक और ममता के चरणों का स्पर्श किया और आरुणि को नमस्कार।

रोमक ने आशीर्वाद दिया,—'परमात्मा तुम दोनों को सुखी रक्खे, चिरायु करें। तुम दोनो जनपद की सेवा करते रहो।'

ममता और आरुणि ने भी स्वस्ति की।

यह उनमे से किसी ने नही देखा कि गौरी के आँसू आ गये थे जिन्हे उसने वही पोछ डाला था।

हिमानी ने बड़ी नम्रता के साथ ममता से घर जाने की आज्ञा माँगी।

'एक अठवारे के उपरान्त ही यहा आ जाओगी। फिर यही तुम्हारा घर होगा।'

हिमानी लाज के साथ सिर नीचा करके मुस्कराने लगी।

'चलो रेवती',—बड़ी मिठास के साथ हिमानी ने गौरी से कहा।

गौरी उसके पीछे हो गई। वे सब उन्हे रथ पर बिठलाने के लिये सड़क तक आये।

गौरी ने किसी की भी ओर नही देखा। रथ और उसके साथी चले गये। आरुणि ने सोचा हिमानी लफङ्गी भी नही है। बड़ी आयु की होने के कारण ही कुछ लपलप सा कर उठी है, इसमें विनय पर्याप्त है। शास्त्र में उसे किस वर्ग में रक्खा जावे वह नही सोच सका। भुवन से अकेले में कहा,—'यह भयंकर तो अंशमात्र भी नही। तुम मूर्ख ही रहे।' और हँसा।

'हाँ—आँ अ   है तैसी है,'—भुवन भी मुस्कराया।

निश्चय हुआ कि वेद और कल्पक को तुरन्त निमन्त्रण भेजकर बुलाया जावे और गुरुदेव के चरणों में निवेदन अर्पित किया जावे। शीघ्रगामी अश्वारोही और घोड़े भेज दिये गये।

[६७]

रात लग चुकी थी । नील-भवन के हिमानी सदन में ठंड कम थी—बाहर भी तीखी नही थी । हिमानी मौज पर थी और गौरी उत्सुक ।

'मैंने कहा था कि तुम्हारा उपचार करूंगी । यहां एक वैद्य हैं जो बड़े बड़े रोगों को चुटकी में उड़ा देते हैं',—हिमानी हँसकर कह रही थी,—'एक से एक बढ़कर औषधिया हैं उनके पास—महापाचक चूर्ण से लेकर महुआसार, हाथी बटो, ताड़करन, मूर्छाहरन, वसीकरन और न जानें क्या क्या !'

औषधियों के विचित्र नाम सुनकर गौरी के भी होठ खिले ।

'वह वैद्य कहते हैं कि महुआसार और ताड़करन से नरनारी को, महुआ और ताड़ जैसे लम्वे तड़ङ्गे वृक्षो सदृश वना सकता हूँ, और मूर्छाहरन से किसी भी प्रकार की मूर्छा को छूमन्तर कर सकता हूं ।' हिमानी और भी हँसी ।

गौरी को भी फीकी-सी हँसी आई ।

'रेवती, तुम मुझे अब वहुत अच्छी लग रही हो । तुम्हें अपनी सखी बनाऊँगी । नौकरानी नहीं रहोगी । सावधान जो कल से सिवाय फूल इकट्ठे करने और मेरे साथ रहने के कोई और काम किया ।'

गौरी ने सिर नवाकर और हाथ जोड़कर कृतज्ञता व्यक्त की ।

'वहां उस समय तुम्हे क्या हो गया था ? मूर्छा-सी आ रही थी!' हिमानी ने चिन्ता के भाव के साथ पूछा ।

'वात कुछ नही थी । दिन मे काम करते करते थक गई । रात नींद बहुत ही कम आई थी । वह सपना फिर देखा था ।' गौरी जान गई थी कि हिमानी भूत-प्रेतो से डरती है ।

हिमानी की हँसी एक क्षण के लिये तिरोहित हो गई ।

'अपने देवता का भजन-पूजन किया करो और हमारे बाल देवता का भी। मैं तुम्हें अपने मन्दिर में साथ ले जाया करूँगी। फिर भूतप्रेत सतावेंगे नही, उल्टे मेरी तुम्हारी सहायता करेंगे।'

'जी अच्छा।'

'तो आज से तुम्हे नाचना सिखलाऊँगी।'

हे भगवान क्या यह भी भुगतना पड़ेगा? गौरी ने अपने इष्ट को सुमिरा।

बोली,—'जी मुझे नाचना नही आवेगा।'

'अरी वाह! मैं अपने यहाँ का नाच सिखलाऊँगी बड़ा सुन्दर है। देह को स्वस्थ और पुष्ट करने वाला। उस वैद्य की सागोनसार और ताड़करन दवाओं से कही अच्छा।' हिमानी हँसी।

गौरी को भी हँसना पड़ा।

गौरी ने कहा,—'दो चार दिन देख लूं तो समझ लूगी कि आपके देश के नृत्य में कौन-कौन-सी बारीकियां है। फिर सीखने की चेष्टा करूँगी।'

हिमानी ने नाचना आरम्भ कर दिया और कुछ समय तक नाचती रही। गौरी को लगा जैसे बन्दर कूदती हो, भद्दी मटको लचकों से भरा हुआ।

हिमानी ने अन्त में पूछा, 'कैसा लगा?'

'जैसा आपने कहा था, है वैसा ही; परन्तु मेरे लिये बहुत दुस्साध्य है। मेरी देह वैसे भी स्वस्थ और पुष्ट है। इस नृत्य को सीखकर करूँगी ही क्या?' गौरी ने उत्तर दिया।

'नही सिखला कर रहूंगी, पर अभी नहीं। कुछ बातें करें। नीद तो नही आ रही है? कल रात की जागी हो।' हिमानी के स्वर में प्यार की पुट थी।

'नही जी। देर तक बैठ सकती हूँ।' गौरी सावधान हुई।

हिमानी ने कहना आरम्भ किया, —'भुवन से छुटपन मे ही मेरी खटपट हो गई थी और बनी रही।'

'अरे !'

'हां रेवती। आज से तुम्हें रेवती रानी कहा करूँगी।'

'आपकी बहुत कृपा।'

'एक दिन तो बात इतनी बिगड़ी इतनी बिगड़ी कि मेरी पीठ पर उन्होंने बड़ी दुष्टता के साथ चाबुक मारे।'—हिमानी का स्वर प्रखर हो गया और आंखें जल उठीं। गौरी ने दीपक के प्रकाश में देखा।

गौरी को आश्चर्य हुआ,—'ऐं ! बहुत बुरा किया। हम लोगों ने कभी नही सुना।' मन में उसने कहा, भीतर का विकार उन्हें नया नहीं है। परन्तु नैमिशारण्य में पहले दिनों में कई बरस इस प्रकार की तो कोई बात कभी नही देखी पाई। यह भी कुछ कम नही है। अवश्य ही इसने कोई बड़ा नीच व्यवहार किया होगा।

हिमानी बोली, 'किसी से कहने सुनने की बात नही। मेरी पीठ पर अब भी निशान हैं। बरसें बीत गईं पर हृदय के भीतर के घाव तो कभी पुरे ही नही। अब भी—' हिमानी कहते कहते रुक गई।

इसकी प्रतिहिंसा का एक कारण यह भी है, परन्तु यही एक कारण नही हो सकता। मेघ, दीर्घबाहु, नील और न जानें कौन कौन उस षड़यन्त्र में एक हो गये हैं। और भी कई कारण होंगे। गौरी ने सोचा।

'इतनी बड़ी बात कैसे कोई भूल सकता है ? बहुत बुरा हुआ।' गौरी ने कहा।

'तुम्हारे साथ कोई ऐसा बर्ताव करता तो तुम क्या करतीं ?'

'मैं कोई ऐसा काम ही न करती तो मेरे साथ वैसा बर्ताव कोई कैसे कर लेता ? गौरी के मन में उठा, परन्तु उसने उत्तर दिया, 'कह नही सकती उस समय क्या कर बैठती, कर डालती अपने मन का अवश्य कुछ न कुछ।'

'रेवती मेरी, मैं तुम पर प्रसन्न हुई। तुम बोदी तो नहीं हो। तलवार, छुरी, लाठी कुछ चलाना जानती हो ?'

'लाठी, तलवार का चलाना तो नहीं सीखा, परन्तु छुरी चलाना जानती हूं।'

'अच्छा—अब और बातें फिर कभी करूंगी। दास को एक पत्र लेकर कल आचार्य मेघ के पास जाना है। पिता जी से बात करलूं। तुम जा सोओ।'

गौरी चली गई।

अयोध्या नगर में सङ्गीत का कोलाहल-सा मचने लगा। मृदङ्ग, बांसुरी, वीणा और ढोल के साथ कोई गा उठा और कोई नाचने लगा। रोमक और नील के भवनों के उसारों में बधावों के गान की बाढ़-सी आ गई।

नील अपने कमरे में बैठा कुछ लिख रहा था कि कपिञ्जल आकर खड़ा हो गया।

जब नील ने लेख पूरा कर लिया तब कपिञ्जल से पूछा, 'मिले थे ?'

'जी नहीं। वे तो कल दोपहर ही शिकार खेलने कहीं दूर जङ्गल मे निकल गये हैं।'

एक क्षण उपरान्त नील ने कहा, 'तुम घोड़े पर चढ़ना जानते हो ?'

'जी, साधारण से घोड़े पर।'

'अच्छा। तुम्हें एक पत्र आचार्य मेघ के पास ले जाना है। रात तक उनके गाँव पहुँच जाओगे। कल सन्ध्या तक लौट आना।'

कपिञ्जल ने गाँव के मार्ग से अपना अपरिचय प्रकट किया। नील ने ब्योरेवार सब समझा दिया और थैली मे पत्र बन्द करके उसे दे दिया।

'अब यहां से देरदार किये बिना चले जाओ',—नील ने कहा।

कपिञ्जल ने वहाँ से आकर गौरी से उद्यान में अकेले मिलने का अवसर निकाल लिया।

अपने वस्त्र के नीचे छिपी थैली की ओर हाथ का संकेत करके बोला, 'बहिन, मैं आवश्यक काम से बाहर जा रहा हूं। कल सांझ तक लौटूगा। यहां का मेरा भी थोड़ा-सा काम करती रहना। उस कुञ्ज के नीचे की क्यारियों का थोडा-सा काम है। मैं बतलाकर चला जाऊँगा।'

गौरी ने आँख मीचकर हामी भरी परन्तु कहा, 'वाह! मैं इधर-उधर के काम क्यों करने चली। स्वामिनी ने निषेध कर दिया है। पर मेरे भाई हो सो थोड़ा-बहुत कर दूंगी।'

इस सावधानी की आवश्यकता न थी, क्योंकि वहां आसपास कोई भी नही था।

दोनों एक कुञ्ज के नीचे जा पहुँचे। धीरे धीरे बातें होने लगी।

'बहिन, नगर के लोग गाने बजाने पर टूट पड़े है। उन्हे क्या मालूम कि उनके नाचने वाले पैरो के तले की धरती में मृत्यु मुंह बाये पडी है।'

'मेरे तुम्हारे सिवाय और कौन जानता है। कपड़ों में वह क्या है?'

'मेघ के लिये नील का पत्र। इसे पढ़कर मुझे दे दो।'

कपिञ्जल ने सतर्कता के साथ थैली गौरी के हाथ मे दे दी। उसने खोलकर पत्र पढा और कपिञ्जल को सुनाया।

'... हैं तो आज से पांच दिन मुहूर्त के, परन्तु आप अपने सब भक्तों को लेकर पहले ही पधारिये। कौन रीति कैसे निभाई जायगी इत्यादि का पूरा-पूरा ब्योरा आपके पधारने पर ही निर्धारित होगा। साष्टांग प्रणाम स्वीकार करें। नील।'

'इसमे पकड़ की कोई ऐसी बात नही। मेघ के साथ अनेक सामन्त और योधा आयेंगे, और उनके आने पर ही इनके षड्यन्त्र की पूरी रूपरेखा बनेगी इतना निश्चित है।' कपिञ्जल ने पत्र को थैली मे बन्द करके झटपट जहा का तहा रख लिया और वे दोनो कुञ्ज से बाहर निकल आये।

गौरी ने कपिञ्लज को सक्षेप मे बतलाया कि हिमानी के अधिक निकट सम्पर्क मे आ गई है और वह किसी दिन सब बतलावेगी। अन्त मे उसने कहा,—'आरुणि आ गये हैं। मैंने उन्हें कल राजकुमार के भवन में देखा था।'

'आरुणि! आरुणि आ गये हैं!! धन्य भगवान। राजकुमार को बहुत सहारा मिलेगा। राजकुमार स्वस्थ हैं?'

गौरी थोड़ी सी विचलित हो गई,—'वैसे स्वस्थ दिखलाई पड़े, परन्तु माथे में विकार है—'

'तुम्हें तो कदाचित पहिचान लिया होगा, क्योंकि भिक्षाटन के लिये धौम्य खेड़े में आते-जाते रहे हैं ?'

'नहीं—कह नहीं सकती—नही पहिचाना—'

गौरी आगे कुछ नही कह सकी। उसका गला रुँध गया था। कपिञ्जल ने सोचा बिचारी के माता-पिता चले गये और इसका कोई पहिचानने वाला तक नहीं! राजकुमार पहिचान ही लेवे तो कहते भी क्या ?

[६९]

मेघ ने अपने गाँव पहुंचते ही उस मुहूर्त के अवसर के लिये अपने सहवर्गियों का सङ्गठन सतर्कता के साथ आरम्भ कर दिया। इधर-उधर के महत्वपूर्ण समाचार पाने के लिये उसने अपने गुप्तचर छोड़े। रोमक के दान-प्रदान का प्रभाव शूद्रों और निम्न श्रेणी के लोगों पर अधिक पड़ा था। छोटे-छोटे अनेक सामन्त जो बाहर बरसों के लगातार अकालों के कारण त्रस्त हो गये थे रोमक पर प्रसन्न थे। शान्तवृत्ति के ब्राह्मण भी। परन्तु इनमें कई ऐसे थे जिन्हें शूद्रों का वह सत्कार अच्छा नहीं लगा। उनमें ईर्षा, द्वेष या परिग्रह की भावना न थी, परन्तु वे उस परम्परा के उपासक हो गये थे जिसके विरुद्ध धौम्य और उनकी विचार, धारा वाले कुछ और थे। शूद्र की तपस्या उसे किसी दिन ब्राह्मण बना देगी उनके अन्तर्निहित अभिमान को चुपचाप कुदेरती रहती थी। बड़े लोगों के उदार और प्रगतिशील वाक्यों पर उनका माथा तो झुक जाता था, पर भीतर का वंशानुगत पवित्रता-गर्व आहत हो हो जाता था। फिर भी उनके निस्पृह चरित्र का उदार अंग रोमक की सच्चरित्रता और दानशीलता के लिये सद्भावना रखता था। वे रोमक में शूद्रों के प्रति वृत्ति का कुछ परिवर्तन तो चाहते थे, परन्तु उसके किसी भी बड़े अनिष्ट के लिये उनके शांत संयम मन में कोई भी इच्छा न थी।

खुले युद्ध में रोमक का साथ छोटे छोटे अनेक और थोड़े से बड़े-बड़े सामन्त जो शांत संयमी ब्राह्मणों के प्रभाव में भी थे, देते। शूद्र और श्रमिक ऐसे युद्ध में रोमक के लिये कट मरते। रोमक यज्ञ में पशुओ के बलिदान के विरुद्ध था। जो ब्राह्मण और क्षत्रिय ऐसे यज्ञ बलिदानों के विरुद्ध थे वे सब उसका साथ देते। मेघवर्ग का नाश हो जाता। शाप में विश्वास करने वाला मेघ और उसके साथी इस बात को जानते थे। मेघ के पक्ष की यह दुर्बलता थी।

परन्तु मेघवर्ग जानता था कि रोमक भुवन आदि का वध कर डालने के बाद बारह बरसों के अकालों की मार खाई हुई जनता उसके विरुद्ध

हथियार नहीं उठावेगी कुछ ने सिर उठाया भी तो कुचल दिये जावेंगे। कुड़मुड़ा कर रह जावेंगे और फिर जहाँ दो एक बरस सुशासन पाया कि सब भूल भालकर ज्यों के त्यो अपने अपने काम में लग जावेंगे।

परन्तु एक समस्या भीषण रूप धारण करके मेघ के सामने खड़ी हो गई।

दो दिन में उसने अपने वर्ग के विशेष प्रभावशाली मुखियों को इकट्ठा किया। उसके गाव के घर का आंगन लम्बा चौड़ा था। भीतर बड़े-बड़े उसारे थे। वहाँ सब लोग रात के पहले पहर में इकट्ठे हुये। उसारे में चटाइयों पर बैठे थे। एक आड़ में दीपक टिमटिमा रहा था। मेघ एक छोटी सी मञ्चिका से टिका हुआ, अलग सा। उसने त्याग के रूपक और तपस्या के बानक को अपना रक्खा था। घर के बाहर फाटक पर पहरा था।

मेघ के सहवर्गी रोमक और भुवन की समाप्ति के उपरान्त किसको राजा बनाया जावे इस पर असहमत थे।

मेघ समझा रहा था,—'रोमक और भुवन के मार दिये जाने पर उनके साथी सुन्न पड़ जावेगे। कोई भी राजा बनाया जा सकता है। मैं दीर्घबाहु को वचन दे आया हूँ। दीर्घबाहु बहुत बडा सामन्त है। जनपद मे सबसे बड़ा।'

'और कदाचित सबसे बड़ा गधा भी!' एक ने बेखटके कहा। थोड़े से चुपचाप हँसे।

दूसरा बोला, 'आचार्य जी, वह तो यों ही है। देखिये नीलपणि के टाड़ों के साथ महीनों यों ही मारा मारा फिरा किया।'

'ऐसे पशु को राजा बनाने से क्या होना आना है?'

दो तीन दिन के थके हुये मेघ का क्रोध उबला, परन्तु उसने कडवा घूंट-सा पी लिया—

'दीर्घबाहु को राजा बना देने पर राज्य तो हमीं तुम्ही चलावेंगे।'

ऐसे बन्दर की आवश्यकता ही क्या आचार्य जी ? राजा ही किसी को बनाना है तो हम यहां इतने क्षत्रिय तो बैठे हैं, किसी एक को भी बना लीजिये ।'

'दीर्घबाहु क्या कहेगा ? उपद्रव खडा हो जायगा ।' मेघ ने घुटे हुये स्वर मे कहा ।

'दीर्घबाहु को राजा बनाने से प्रत्येक जनपद में हमारी हँसी की जावेगी और दूर पड़ौस का कोई हमारे ऊपर चढ दौड़ेगा ।'

इतने दिनों राज्य चलाते चलाते उन सबको शासन बहुत प्रिय हो गया था । उन्हें चिपक गया था । मेघ को सबसे अधिक । परन्तु अब वह सब अस्त-व्यस्त होता दिख रहा था । इतना किया-कराया सब चौपट ! मेघ को क्रोध पर क्रोध आ रहा था । 'कितने मूर्ख हैं ये सबके सब ! उधर जाता हूँ तो खाई है इधर जाता हूं तो खड्ड ।

द्वारपाल ने आकर निवेदन किया कि अयोध्या से नील का कोई दास समाचार लेकर आया है । कपिञ्जल को भीतर बुला लिया गया । वह जान-बूझकर इतनी देर लगाकर मेघ के समक्ष आया था—ऐसा न हो कि कहीं पहिचान ले । वैसे मेघ उसे दिन मे भी पहिचान न पाता । परन्तु कपिञ्जल को सन्देह था । पत्र देकर वह दूर जा बैठा ।

मेघ के नेत्र और भी निर्बल हो गये थे । किसी दूसरे से पत्र पढवाया गया ।

मेघ का क्रोध उतार पर आ गया था । पूछा, 'पत्र लाने वाला दास कहाँ है ?'

मेघ को बतलाया गया ।

मेघ ने कहा, 'इसके भोजन-विश्राम का ठिकाना कर दो ।'

कपिञ्जल बाहर चला गया ।

एक सामान्त ने दूरदर्शिता की बात की,—'दिन बहुत थोड़े रह गये हैं । यहा हम जितने हैं यदि दीर्घबाहु के अभिषेक के लिए हामी भर भी दें तो बाहर अनेक ऐसे हैं जो उनके लिए तैयार नहीं होंगे ।'

मेघ ने सुझाया,—'तो अयोध्या चलकर निर्णय कर लेंगे। नील और दीर्घबाहु से आमने सामने बात हो जायगी।'

'नही आचार्य जी, जो कुछ भी निर्णय करना हो यही कर लीजिये। अयोध्या में पहुँच कर यदि परस्पर तोड़ फोड़ हो गया तो फिर कुछ हाथ नही लगेगा—संभव है हम में से बहुत से यों ही सेंत मेंत मारे जावें,'—उसी दूरदर्शी ने कहा। एक उतावला बोल पड़ा,—'यदि यहीं निर्णय नही होता है तो हम में से अनेक अयोध्या जावेंगे ही नही। यों भी कई एक नितान्त उदासीन हैं।'

अब मेघ के कान खुले। कई एक उदासीन हैं! अयोध्या नहीं जावेंगे!! मेरी शाप मिट्टी में मिल जावेगी!!! मेरे तन्त्र मन्त्र व्यर्थ जावेंगे? दीर्घबाहु को कौन समझावे? नील और हिमानी को भी जिनके हाथों ही बहुत सा होना है? क्या मुझे अयोध्या जाना पड़ेगा? और दीर्घबाहु, नील, हिमानी को ठीक करके इन सबको अयोध्या साथ ले जाने के लिये लौटना पड़ेगा? मेरे अयोध्या जाने पर यहाँ शिथिलता और उदासीनता बढ़ सकती है और यदि वहाँ रोमक सोम इत्यादि में से किसी को सन्देह हो गया कि मैं क्यों आया और लौट पड़ा तो गये! मेरा यहीं बना रहना अधिक श्रेयस्कर है। यदि कुछ भी न कर पाया तो दूर तो रहे, परन्तु कर क्यों नहीं पावेंगे?

मेघ ने आचार्य-पद निभाने वाले स्वर में कहा, 'हां आं, दीर्घबाहु सीधा तो बहुत है, परन्तु विश्वसनीय और बड़े काम का। यदि तुम मे से किसी को राजा बनाते हैं तो सम्भव है वह बिगड़ खड़ा हो। शासन जैसा चल रहा है यदि वैसा ही हम तुम थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में बना रहे तो कैसा?'

'बहुत अच्छा।'

'हम सब यही चाहते हैं।'

उन सब की यही इच्छा थी और यही निश्चित हुआ।

एक ने कहा, 'नील और दीर्घबाहु को पत्र भेज दीजिये। उन्हें मानना पड़ेगा, मान जावेंगे।'

'पत्र में सब बातें नहीं आ सकती। मैं अयोध्या जा नहीं सकता। इसलिये तुममें से किसी को मेरी ओर से जाना पड़ेगा। लिख दूंगा कि जो कुछ ये कहें मेरा कहा समझा जावे।'

उनमें से जिसे अत्यन्त चतुर और स्फूर्ति वाला समझा जाता था उसको भोर होते ही अयोध्या जाने के लिये नियुक्त किया गया। मेघ की ओर से उसे अधिकार-पत्र दिया गया।

मेघ ने उससे कहा, 'शीघ्र ही लौटना और सफल होकर लौटना, भला। नील के दास को साथ मत लगाना। वह अलग से जावेगा।'

[७०]

दूसरे दिन सन्ध्या समय मेघ का दूत नील-भवन मे आ गया। कपिञ्जल उससे पहले चल पड़ा था इसलिये कुछ पहले जा पहुँचा। मेघ के दूत का स्वागत करने के लिये नील तैयार था।

भोजन के उपरांत रात के एकांत मे बातचीत हुई।

'दीर्घबाहु को ये ही दिन मिले आखेट के लिये ! बड़े ही—'दूत ने कहा।

'बड़े ही भोले अच्छे हैं। कोई कैसा भी हो आचार्य मेघ तो हैं अपने बीच में। मैं उनकी हर एक बात को शिरोधार्य करता हूं। आशा है कि दीर्घबाहु भी मान जावेंगे।'

'मानना पड़ेगा अन्यथा सब मटियामेट हो जावेगा।'

'जैसे ही दीर्घबाहु लौटे पहला काम उन्हें अनुकूल कर लेने का ही होगा।'

'कब तक लौटेंगे ? किस जङ्गल में गये हैं ?'

'सो तो नही मालूम। कहकर नहीं गये। उधर हिमानी रोमक के घर माला पहिनाने गई, इधर वे जङ्गल की ओर चल दिये !'

'क्या बुद्धि पाई है ! इसी पर राजा बनाये जाने वाले थे !! मैं प्रतीक्षा में यहाँ कब तक पड़ा रहूँगा ? आचार्य मेघ ने बहुत शीघ्र लौट आने का आदेश दिया है।'

'ढूंढ़ने के लिये मैं अपने अनुचर भेजता हूं। वे उन्हें लेकर ही आवेंगे।'

दूसरे दिन बाट देखते देखते जब दूत व्याकुल हो गया तब क्षुब्ध होकर उसने नील से कहा, 'मैं और अधिक नही ठहर सकता। उस मुहूर्त के लिये केवल तीन दिन रह गये हैं। ऐसा न हो कि आतुर होकर वे सब यहाँ चले आवें और सब नष्ट-भ्रष्ट हो जावे।'

'पास के जङ्गलों का समाचार मिल गया है कि वे यहाँ नही हैं, एक दूर जङ्गल में हैं। आते ही होंगे।'

'किसी को कहीं मिले भी या नहीं ?'

'मिले तो नहीं, किन्तु मिल जायेंगे ।'

'मैं नहीं ठहरूँगा, ठहर ही नहीं सकता । दीर्घबाहु मान जावें तो स्पष्ट लिख भेजिये या स्वयं चले आवें । न आ सकें तो चिट्ठी भिजवा दीजिये कि बिलकुल पूरी तौर पर मान गये हैं । स्पष्ट लिख देना । हम लोग गोल बात पसन्द नहीं करेंगे । न मानें या तब-तक आवें ही नहीं तो वैसा लिख देना और मुहूर्त को किसी भांति लम्बी अवधि के लिये टाल देना जिसमें दीर्घबाहु मनचाही शिकार खेल लें और हम लोग अपने विवेक के साथ आगे की बात सोच सकें ।'

'नहीं आर्य, वे मान जावेंगे । आवेंगे भी शीघ्र ही । योजना की लगन उनके मन में भी वैसी ही है, जैसी हमारे आपके मन में । मुहूर्त टाला नहीं जा सकता । कुछ धन-सम्पत्ति तो रोमक को दे ही चुका हूं । और भी देनी पड़ेगी । उस पर यदि भेद खुल गया तो मैं कहीं का न रहा और हिमानी यों ही मरी !'

'तो फिर ठीक है । पत्र भिजवा देना । पत्रवाहक वही दास ठीक रहेगा । चुप्पा और सीधा है ।'

नील ने स्वीकार कर लिया । दूत दूसरे दिन चला गया ।

[७१]

दीर्घ इसके एक दिन पीछे लौट पाया। जब जङ्गल में नील का सन्देशवाहक पहुँचा वह बाघों की शिकार के आनन्द में मुग्ध था। एक क्षण के लिये मन ही मन कुड़कुड़ाया—कहाँ की विपद आई यह ! दिन के दिन तो पहुँच ही जाता। न मालूम नील को ऐसी कौन सी आतुरता ने घर दबाया। पत्र मे कुछ भी नहीं लिखा—केवल इतना कि तुरन्त चले आओ !

और वह सीधा नील के पास पहुँचा। सन्ध्या नही हुई थी। नील ने तत्काल बात का भुगतान किया। दीर्घबाहु के माथे में चक्कर आया, गया।

नील ने कहा,—'आज से दो दिन रह गये ! केवल दो दिन !! तुम स्वयं बड़े सवेरे आचार्य मेघ के पास चले जाओ और आश्वासन दे आओ।'

'मैं नही जा सकता बिलकुल थका हुआ हूं',—दीर्घबाहु ने बच्चों जैसी रिस व्यक्त की।

नील एक क्षण के लिये घबराया।

'मान जाओ नहीं तो पूरा सत्यानाश होने वाला है। मेरा धन का धन गया और किसी दिन हम सबका सिर जायगा।'

'मैं नही जानता था कि आचार्य मेघ के साथी इतने नीच निकलेंगे।'

'भैया रे, न हो कोई एक व्यक्ति राजा तो बिगड़ क्या जायगा ? शासक-मण्डल में तुम्हारा स्थान सर्वोच्च रहा है और रहेगा। नाम-मात्र के राजा न कहला कर वास्तव में राजा तो तुम्ही होगे और हिमानी तुम्हारी रानी। तुम्हारे इस त्याग के कारण तुम्हारा पद और सम्मान और भी अधिक बढ़ जायगा।'

हिमानी के उस तिरे को सिर पर व्यर्थ रक्खा था ! हिमानी का स्वप्न भी यों ही रहा !! दोनों तिरे सन्दूक में बन्द पड़े रहेंगे !!! न

रक्खूं सिर पर तिरे को ? कुछ बहुत अच्छा-सा तो लग भी नही रहा था। अरे ! मैंने उल्टा-पुल्टा रख लिया था !! उसे सिर पर बाधकर शिकार नही खेल सकता। अपने यहा का ही कोई मुकुट बांध कर यदि शिकार मे जाऊँ तो कौन रोक लेगा ? राजा का शब्द मेरे नाम के साथ न रहे तो क्या बिगड़ जायगा ? और फिर राजगद्दी पर बिठलावेंगे ये ही सब। सिहासन पर बिना बैठे ही यदि शासक-मण्डली मे सबसे ऊँचा स्थान मिलता रहा तो बुरा क्या ? काम कम और आनन्द मङ्गल तथा शिकार के लिये समय बहुत ! हिमानी को भी शिकार खिलाने ले जाया करूँगा। वह बाण विद्या की जानकार है······'

'क्या सोच रहे हो भैया ? तुरन्त हामी भरने का निश्चय करो।'

'अस्तु, मैं तो खिलाडी हूं। हिमानी को बुरा न लगे कही।'

'नही लगेगा। मैं सब समझा लूंगा। मान गये न भैया ?—राजा मुन्ना मेरे।'

'मानने के सिवाय और करूँ भी क्या ? कदाचित ठीक है भी। सब जो चाहते हैं वही करना चाहिये, परन्तु मैं आचार्य मेघ के पास स्वयं नहीं जाऊँगा। मुझ पर लोगों की दृष्टि रहती है, मैं परखने से नही चूकता। मेरे उस गाँव मे आने जाने पर कही रोमक को सन्देह हो गया तो ?' दीर्घ ने काइयांपन व्यक्त करते हुये कहा।

'बहुत बहुत धन्यवाद भैया। तुम बड़े दूरदर्शी हो। मैं पत्र भिजवाये देता हूं। तुम भी अपने हस्ताक्षर कर देना उस पर।'

अपनी दूरदर्शिता की सराहना पर दीर्घबाहु प्रसन्न हुआ। बोला, 'लाइये अभी कर दूं। फिर जाकर खाऊँ पिऊँ और सो जाऊँ—कई रात पलक नही मारा।'

'अभी लिखे लाता हूं। लिखने की सामग्री यहाँ नहीं है।', कह कर नील चला गया।

[७२]

हिमानी के सदन में गौरी गा रही थी और हिमानी नाच रही थी। गौरी का गीत करुणरस के स्वरों में था, पर बोल भक्ति और निष्ठा से उत्पन्न पुरुषार्थ के थे। हिमानी का नृत्य ताल में चौकस था, परन्तु राग की प्रवृत्ति और शब्द-भाव के प्रतिकूल। हिमानी की उछल-कूद चटक-मटक और थिरक वहीं और भी बढ़ जाती थी जहां गौरी के गीत की करुणता अपनी कोमल गति में आत्मा की चिन्ता और व्याकुलता को आत्मसात कर लेने पर तुल जाती थी। गौरी को कई बार खटका—ऐसी असङ्गति तो कभी नही देखी, बड़ी फूहड़ है। गौरी अपने को हिमानी के और भी अधिक निकट सम्पर्क मे पा रही थी। वह अपनी निष्ठा में से शक्ति पा रही थी, इसलिये उस खटक या अखर को पीती जा रही थी।

उसी समय किसी ने किवाड़ों पर दस्तक दिया। गौरी ने खोल दिये। नील भीतर आ गया।

'एक बहुत आवश्यक चिट्ठी आचार्य मेघ के पास भेजनी है। यहीं होकर लिखूंगा',—नील ने हिमानी से कहा और गौरी को आज्ञा दी,—'तुम दास को बुलाकर अपनी कोठरी में बिठला रक्खो। थोड़ी देर में बुलाऊँगा।'

गौरी तुरन्त चली गई।

नील ने हिमानी को समस्या का पूरा रूप बतलाया। हिमानी को सहमत होने में बहुत देर नही लगी—यों भी रानी से मेरा पद किस बात में कम रहेगा ?

नील बोला, 'बड़ी बात हुई कि दीर्घबाहु मान गये। तुम्हारे विषय में तो विश्वास था ही कि शीघ्र मान जाओगी। लिखने की सामग्री दो।'

'यही गुण तो उनमे बड़ा है—मान जाते हैं,' हिमानी ने कहा और लिखने की सामग्री ढूंढ़ लाई।

नील ने पत्र लिखकर उसे दिखलाया। हिमानी को ठीक जँचा। नील पत्र को दीर्घबाहु के पास ले गया। वह जमुहाइयों पर जमुहाइयाँ ले रहा था—कब छुट्टी मिले। दीर्घबाहु ने पढकर तुरन्त हस्ताक्षर कर दिये। नील उसे विदा करके फिर हिमानी के पास आ गया।

गौरी बुलाई गई। उसने आकर बतलाया,—'दास आ गये हैं।'

'भेज दो।' नील ने कहा।

नील ने पत्र एक थैली में बन्द कर दिया और कपिञ्जल के आने पर कहा, 'यह चिट्ठी बहुत शीघ्र आचार्य मेघ के हाथ में पहुँच जानी चाहिये। अपने उसी गाँव मे मिलेंगे जहां पहिले मिले थे।'

कपिञ्जल थैली लेकर बोला, 'जी, मैं तो रात में ही चल देता, परन्तु मार्ग भूल जाने का डर है, क्योंकि एक ही बार गया हूं। बड़े भोर चल दूंगा।'

'कल सांझ तक पहुंच जाओगे। वहां से आधी-रात गये लौट पड़ो तो परसों दोपहर तक यहां आ सकते हो। चाँदनी रात है। लौटते समय मार्ग नही भूलोगे। जो कुछ उत्तर दें उसका भुगतान मुझे तुरन्त आकर करना। लौटने पर सोना पुरस्कार में दूंगा।'

कपिञ्जल ने बड़ी विनय के साथ उत्तर दिया,—'आपका ही दिया खाता हूं। परसों दोपहर तक लौट आऊँगा।'

हिमानी ने पूछा, 'रेवती क्या कर रही है।'

'जी संध्या कर रही है।'

'संध्या कर चुके तब भेज देना।'

कपिञ्जल गौरी की कोठरी में गया। दीपक जल चुका था। संकेतों मे बात हुई। भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये। कपिञ्जल ने गौरी को थैली दे दी। दीपक के पास जाकर गौरी ने पत्र पढ़ा और एक क्षण के लिये माथा पकड़ कर रह गई। यह है दुष्टता की पराकाष्ठा! गौरी ने कपिञ्जल के कान में पत्र का विषय सुनाया। गौरी हाँफ उठी थी। कपिञ्जल एक क्षण के लिये ध्यान मग्न हो गया। निश्चल।

'अब पूरा प्रमाण हाथ में आ गया बहिन, राजकुमार के पास अभी जाता हूँ। वहाँ आरुणि है। उनके आमन्त्रितों में सम्भव है और भी कई विश्वसनीय होंगे। ये राक्षस अपने किये का पावेगें। जाता हूँ।'

'भगवान तुम्हें सब सङ्कटों से बचावें भैया।' कापते स्वर में गौरी बोली।

कपिञ्जल ने कहा, 'धीरज को दृढ़ और साहस को स्थिर रखना, घबराने से काम नही चलेगा। केवल उस घड़ी की बात अचलता के साथ सोचो जब तुम्हें और मुझे यही न जाने क्या क्या करना पड़ेगा। मेरे अनेक साथी हैं जिन्हें तैयार कर लिया है। हम सब बहुत हैं।'

'मुझे कभी घबराया हुआ नही पाओगे, भैया। अब चिन्ता केवल यह है कि इस पत्र के समाचार से राजकुमार की विकृति कही और अधिक न हो जाय।'

'नहीं होगी बहिन! इसके धक्के से सब विकार पलायन कर जायेंगे। मैं जाता हूँ।'

'भोर की यात्रा के पहले मुझे कुछ समाचार मिल जाय तो अच्छा होगा।'

कपिञ्जल सतर्कता के साथ चला गया। थोड़ी देर बाद गौरी हिमानी के पास पहुँची। गौरी के मुख पर ओज था।

हिमानी हँसकर बोली, 'रेवती या तो तुम अब वह महुआसार या ताड़करन चूर्ण खाओ या सदा ऐसीं ही दिखो।'

'दवाइयो के नाम से ही रोग भाग गया। आप मुझे मरी-गिरी नही पायेंगी। मैं किसी से नही डरूँगी।'

'तुम्हारी सन्ध्या और हमारे बालदेव की पूजा ने किया न अपना प्रभाव। आज कुछ बातें सुनाती हूँ। जो रह जावेंगी उन्हे कल अवश्य।'

'जी, बहुत अच्छा।'

'तो पहली बात यह है कि राजकुमार के उस अत्याचार को मैं कभी नही भूली । आचार्य मेघ का उन बाप-बेटों ने बड़ा अपमान किया था । उसे वे नही भूले । राजा ने महाशालों की भूमि छीनी, हम लोगों को बहुत सताया यह हम कोई नहीं बिसार सके । यज्ञ बलिदान वाले ब्राह्मण शूद्रों की तपस्या की गहरी नोच-खरोंज कभी विस्मृत नहीं कर सके ।'

'मैं समझी नहीं ।'

'अपनी निजी और ब्याह से सम्बन्ध रखने वाली बातें कल बतलाऊँगी, शेष सब अभी बतलाती हूँ । इन्ही में बहुत समय बीत जायगा । फिर मैं सोऊँगी और तुम सो जाना । कल दूर नहीं है ।'

'जी हाँ',—गौरी ने कहा । वह झटपट सुनकर विदा लेना चाहती थी, क्योकि बहुत-सी बातें पहले ही इधर उधर सुन चुकी थी । कपिञ्जल भैया कोई अत्यंन्त महत्वपूर्ण समाचार कब आकर सुनायेंगे उसके सुनने के लिये उसका मन बहुत व्यग्र था ।

[७३]

उसी दिन सूर्यास्त के पहले वेद और कल्पक नैमिषारण्य से आ गये। धूल धूसरित शरीर को स्नान और मन को सन्ध्यावन्दन से स्वच्छ करके वे रोमक भवन के उस कक्ष में जा बैठे जिसमें रोमक प्रारिण और भुवन पहुँच गये थे। स्वागत और अभिवादन पहले ही हो चुका था।

वेद में गुरुदेव का आशीर्वाद सुनाया,—'उन्होने आदेश किया है कि धर्म अर्थ और काम को इस प्रकार भोगो कि एक दूसरे से टकराते न फिरें। तीनों मे से प्रत्येक की अति को वर्जित किया है।'

रोमक ने कहा, 'मैंने अपना कान पकड़ा। भविष्य में पूरा ध्यान रक्खूंगा।'

वेद कहता गया,—'उन्होंने यह भी कहा है कि मन का सन्तुलन प्राप्त करने पर रजोगुणी और तमोगुणी कर्तव्यपालन के समय आत्मा के निर्मल सतोगुणी प्रकाशमय कांच के सामने अपने को मत देखते फिरो। तन्मयता के साथ कर्तव्य का पालन करो और जब कर चुको तो जो कुछ किया है उसके लिये सन्ताप मत करो और न उसकी परछाहीं को आकाक्षा के साथ लौट लौटकर देखो। परिग्रह और विषाद की जलन को कभी मन मे न आने दो।'

रोमक ने शिरोधार्य किया,—'यदि मुझे राज्य फिर से कभी मिला तो वर्णाश्रम का पूरा पालन करूंगा—एकान्त साधना द्वारा जो अध्ययन और चिन्तन करके समाज को कल्याणकारी मार्ग पर चलने का सन्देश सुनाते हैं वे ब्राह्मण हैं, उनका पूजन करूंगा, वे कभी कोई दु:ख नहीं उठा सकेंगे। कोई अपराध भी करेंगे, क्योकि मानव-प्रकृति है तो उन्हें कम से कम दण्ड दूंगा; परन्तु यज्ञों में पशुओ का बलिदान कराने वाले और अन्य प्रकार के तामसी ब्राह्मणों का कोई आदर सत्कार न करूंगा और भरसक यज्ञों में पशु बलिदान न होने दूंगा। राष्ट्र की रक्षा में

अपना प्राण-विसर्जन करने के लिये तैयार रहने वाले क्षत्रिय हैं, समाज का आर्थिक कल्याण करने वाले वैश्य और वणिक। क्रम मे ये ब्राह्मण के कुछ पीछे हैं। बर्ताव भी अपेक्षाकृत उनके साथ शास्त्रों के अनुसार कम-बढ़ होगा—'

'और शूद्र पिता जी?' भुवन ने टोका।

'वे अपने अन्धविश्वासों के बसीभूत रहकर जड़ बने रहे वह दूसरी बात है। वैसे मैं तो शूद्रों का भी आदर सम्मान करूँगा। उन्हें सुखी बनाऊँगा। सबसे अधिक भूमि और धन-सम्पदा मैंने उन्ही को दी है। वे ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य, अपने अच्छे गुण और वृत्ति के अनुसार, हो सकेंगे। मैं चारों वर्गों का सामञ्जस्य करके चलूंगा। अति किसी बात की भी नही करूँगा। परमात्मा के सृष्टि-कार्य को समझने का प्रयत्न करता रहूँगा।'

रोमक उत्साह में था। वेद और कल्पक कुछ और भी चर्चा करना चाहते थे।

वेद ने कहा, 'पिताजी आप भोजन करलें। हम सब गुरू भाई एक साथ बैठकर खायेंगे। तब तक थोड़ी देर कुछ और चर्चा करलें।'

भुवन ने सकारा,—'इधर उधर की हांकने का इसका स्वभाव है पिता जी।' और हँसा।

रोमक समझ गया कि लड़के अपने अपने मनकी कुछ बातें करना चाहते हैं, विवाह का समागम है, न कि कोई दीक्षान्त समारोह! वह उठकर हँसता हुआ चला गया,—'अच्छा, अच्छा।'

हिमानी की चर्चा स्वभावतः प्रधान विषय बनी। पत्थर के साथ आँधी का व्याह हो रहा है इस वाक्य को लेकर उन तीनों ने भुवन की खिल्ली उड़ाई। भुवन की हँसी ने सहयोग दिया।

वेद ने चर्चा मोड़ी,— जब गुरुदेव की सेवा में निवेदन पहुंचा तब कुछ क्षण के लिये ध्यानमग्न हो गये थे। फिर बोले उस लड़की का क्या

हुआ जो खेड़े में रहती थी तो मैंने जैसा कुछ तुम लोगों के साथ यहां की यात्रा के समय उन गांव वालों से सुना था बतला दिया कि बाढ मे वह कर मर गई।'

भुवन की हँसी चली गई और वह बहुत उदास हो गया।

'क्या बात है भुवन यकायक अनमनें कैसे हो गये?' आरुणि ने पूछा।

'तुम्हे नही मालूम आरुणि, मैं ज़ानता हूँ—भुवन उससे प्रेम करते थे। नाम उसका कुछ—'

'एं! ओफ!!' आरुणि के मुंह से निकला 'पर अब उससे क्या?'

हां अब उससे क्या?, भुवन के मन ने कहा। गला ठीक करके भुवन बोला,—'गुरुदेव को मालूम हो गया था। फिर दो बरस मैंने अत्यन्त संयम के साथ बिताये।'

'भुवन भाई, मुझे क्षमा करना',—वेद ने संवेदना के साथ बतलाया, 'एक दिन जब मैं और कल्पक बैलों का जुआं कन्धों पर रक्खे खेत जोत रहे थे और बहुत कुडमुडा रहे थे तुम आकर हँस दिये। हम दोनों को बहुत क्रोध आया। तुम्हारे प्रति हमारे मन मे हिंसा ने घर किया, और जब तुम उस दिन खेड़े मे उस लड़की के साथ बहुत घुल मिलकर बातें कर रहे थे मैंने भाप लिया और गुरुदेव से जाकर कह दिया। इस पर गुरुदेव मुझ पर प्रसन्न नही हुये। रुखाई से बोले जा अपना काम देख। बहुत दिनो पीछे गुरुदेव को प्रसन्न कर पाया। तुम भी भाई क्षमा करदो।'

'अरे वाह! क्षमा किस बात की? तुमने उचित ही किया था। गुरुदेव के अनुशासन ने ही मुझे सँभाला। पर अब क्या—'

कल्पक बोला, 'छोड़ो भी इस गई-बीती को। भुवन के मन में अब कोई विषाद नही।'

गोरी के चित्र को अपने मन से झटकारने के लिये भुवन ने ऊँचे स्वर मे कहा,—'कोई भी विषाद नही।'

प्रहरी ने कमरे के किवाड़ खोले और निवेदन किया,—'नैमिषारण्य से एक कोई बूढ़े ऋषि पधारे हैं। आना चाहते हैं।'

वे चारों उछलकर एक साथ बोले,—'क्या गुरुदेव !'

फिर वेद ने तुरन्त कहा,—'वे नहीं हो सकते।' प्रहरी से पूछा, 'नाम बतलाया ?'

'जी नही।'

भुवन ने भीतर भेज देने का आदेश दिया। कुछ क्षण पीछे वृद्ध ऋषि उस कमरे मे आ गये। तुरन्त अपने पीछे किवाड़ बन्द कर लिये। वे चारो खड़े हो गये। ऋषि के सिर के बाल बिलकुल सफेद और लम्बे। दाढ़ी भी वैसी ही। गेरुये-रङ्ग की कोपीन। वे चारों विस्मय में थे—इनको तो नैमिषारण्य में पहले कभी नही देखा। ऋषि ने अविलम्ब दाढ़ी-मूछ उतार कर एक ओर रख दी। उन चारों ने पहिचान लिया—यह तो कपिञ्जल हैं !

योगी कपिञ्जल !

'नमस्कार योगिराज !!' उन लोगों ने बड़े हर्ष के साथ स्वागत किया। कपिञ्जल ने तुरन्त वर्जित किया।

भुवन उमङ्ग मे भर गया था,—'वाह ! आप तो बड़े बड़े ब्राह्मणों से भी बड़े हैं !!'

कपञ्जिल ने धीर-गम्भीर स्वर मे कहा,—'चुप ! चुप !! इसे पढ़ो और तुरन्त निश्चय करो। समय बहुत थोड़ा रह गया है। अच्छा हुआ वेद और कल्पक भी आ गये।'

कपिञ्जल ने अपने वस्त्रों मे से पत्र वाली थैली निकाल कर आरुणि के हाथ मे दे दी जो आगे बढ आया था।

झटपट थैली खोलकर आरुणि ने पत्र पढ़ा। पढ़ता गया और होठ से होठ सटाता गया, त्योरी तो चढ़ ही गई थी। एक हाथ की मुट्ठी तन गई।

फिर वेद ने पढ़ा। पढ़ते ही पैर पटक दिया। मुंह से निकला, 'ओफ !'

कल्पक छटपटा रहा था तुरन्त उसने वेद के हाथ से पत्र ले लिया। कल्पक ने पढ़ते ही दबा हुआ चीत्कार किया,—'हरे रे !'

पत्र में कोई अत्यन्त महत्वपूर्ण और गोपनीय रहस्य है—भुवन का कुतूहल प्रारम्भ से ही उत्कट हो गया था, परन्तु वह उसे सँभाल रहा था—पढ़े लेता हूँ अन्त में।

जब भुवन के हाथ में कल्पक ने पत्र दिया तब भुवन की ऊँगलियाँ काँप रही थीं।

और दीपक के पास खड़े-खड़े पढ़ते ही वह सन्न रह गया। पत्र हाथ से छूट गया। कपिञ्जल ने उठा लिया। भुवन पास की एक चौकी पर लड़खड़ाते पैरों बैठ गया।

आरुणि ने दौड़कर उसके कन्धे पर हाथ रक्खा। बोला,—'भुवन, संभलो।'

कपिञ्जल ने कहा,—'यह क्या ! उस दुष्टा के साथ ब्याह न होगा तो क्या बिगड़ जायगा ? बचने का और शत्रुओं के दमन करने का उपाय सोचो। कल का ही दिन तो बीच में है। भाग्य से यह पक्का प्रमाण हाथ लगा है।'

भुवन को जैसे किसी ने छाती में घूंसा मारा हो। बोला,—'मैं इस राक्षसी को कभी नहीं चाहता था। ब्याह नहीं करना चाहता, परन्तु माता-पिता के आग्रह ने विवश कर दिया।'

'तुम सच कहते थे भुवन, यह स्त्री बड़ी भयङ्कर है। मूर्ख मैं हूं, तुम मूर्ख नहीं हो। तुमने उसका वर्गीकरण ठीक किया था', आरुणि ने अपना प्रायश्चित सा किया।

वेद अकुला उठा,—'नील, हिमानी और दीर्घबाहु को तुरन्त पकड़ो।'

कल्पक ने समर्थन किया,—'इसी पल, मैं भोजन किये बिना ही अभी आक्रमण के लिये तैयार हूं।'

कपिञ्जल ने विरोध किया,—'नहीं, व्यर्थ ही रक्त की नालियाँ बह उठेंगी। इनका सबका कर्ता-धर्ता मेघ तो यहाँ से दूर है। उसी ने यह सारा जाल बुना है। इनकी पकड़-धकड़ से उसका क्या हो जायगा ? अपने को निर्दोष और आप-सबको अपराधी घोषित करता हुआ योधाओं के साथ अयोध्या पर आ चढ़ेगा ! फिर ?'

आरुणि ने कपिञ्जल का साथ दिया,—'ये ठीक कहते हैं। सहसा प्रवर्तन से बड़ी हानि हो सकती है। ठण्डक के साथ सोच-विचार कर समस्या का सामना करने की तैयारी करो। गुरुदेव ने सावधान किया था कि जहाँ तक बन पड़े रक्तपात को बचाना क्योंकि वे जानते थे कि कुछ न कुछ गड़बड़ होगी।'

कपिञ्जल ने पत्र थैली में रख कर ज्यों का त्यों बन्द कर लिया और अपने वस्त्रों में रख लिया। वैसा ही छद्मवेश रचकर बोला, 'मुझे आज्ञा दीजिये, मैं चलू। बड़े भोर इस पत्र को लेकर मेघ के पास जाना है।'

कलरक को सूझा,—'इस पत्र की प्रतिलिपि रख लें।

भुवन ने कहा, 'उससे लाभ क्या ? कुछ क्षण और ठहर जावें तो पिताजी भी यह पत्र पढ़ लें और माता जी भी।'

कपिञ्जल ने मान लिया।

भुवन की आँखो में कृतज्ञता के आँसू झलक आये—'आपने योगिराज उस बार मेरे अकेले के प्राण बचाये थे, अबकी बार न जानें कितने अनगिनतों की रक्षा कर रहे हैं!'

कपिञ्जल ने तुरन्त प्रतिवाद किया,—'पहली बात यह है कि मुझे योगिराज मत कहिये। गुरुदेव का छोटा सा शिष्य मात्र ही होने का गौरव है मुझे—'

वेद ने उत्साह भरे स्वर में टोका,—'आपने इन दिनो यहां आकर बहुत बहुत किया। पढ़ लिया। हम लोगों के शत्रु की टोह लगाते रहे और अन्त में उन पिशाचो के ऐसे सेवक बने ऐसे बन गये कि यह पत्र हाथ में कर लिया!'

'योग वहाँ साधा ! जानें किससे और कब !! बड़े चुप्पे हैं ये।'
'मेरे आराध्य—' भुवन ने कहा।

कपिञ्जल ने टोका,—'मैं वैसा ही अपढ-कुपढ़ आज भी हूँ। एक लड़की है वहाँ जो बहुत पढ़ी-लिखी, बहुत ऊँचे चरित्र की और बड़ी धुन लगन की है। मैंने उसे अपनी बहिन बना लिया है। इसका सारा पुण्य उसी को है। सबसे पहले उसी ने इस षड़यन्त्र को अपने कानों सुना और मुझे बतलाया और उसी की कृपा का फल है जो मुझे यह पत्र हाथ मे लगा। मैं तो छोटा-सा निमित्त मात्र हूँ। जिस दिन अपनी उस बहिन से सुना उस दिन यहाँ आकर कुछ नही कहा था, क्योंकि व्यर्थ होता, उस लड़की के प्राणों पर वार हो जाता—'

'आप और वह लड़की बड़े सङ्कट में हैं',—आरुणि धीरे से बोला।

'बहुत बड़े सङ्कट में ! क्या हो ?' भुवन ने गहरी चिंता व्यक्त की।

कपिञ्जल ने कहा,—'मेरे लिये कोई सङ्कट नही है। मुझे उसी की चिन्ता है। आपकी और महाराज की रक्षा के लिये सुमरिन किया करती है। एक दिन कह रही थी कि बाप-बेटे की रक्षा करने मे अपना अङ्ग-अङ्ग कटवा दूगी। बड़ी भोली और दुखिया है। उसके माँ-बाप नदी की बाढ़ में जब पहला दौगड़ा बरसा बहकर मर गये। नैमिषारण्य से बरसो के बाद लौट रहे थे अपने घर। अयोध्या आने के लिये अकेली बची—'

'उसका नाम ?' भुवन उछलकर खड़ा हो गया, होठों से शब्द फूट पड़े। आँखें पागल जैसी।

'नाम उसका हिमानी ने रेवती रख लिया है। वैसे माँ बाप का दिया नाम गौरी है—'

'गौरी ! गौरी !!'—भुवन के मुंह से छुटी हुई चीख मे होकर निकला और सिर पकड़ कर धम्म से चौकी पर भरभरा गया।

आरुणि बोला, 'ओह! तो यह वह गौरी है !! डूब कर नही मरी थी। बहुत अच्छा हुआ बच गई। ऐं ! यह क्या भुवन ?' उसने भुवन को अपनी बाहो मे भरकर दुलारा पुचकारा।

भुवन सिसक रहा था।

कपिञ्जल को आश्चर्य हुआ,—'क्या बात है ?'

'साधारण सी बात',—वेद ने कहा,—'भुवन का उससे बरसों से प्रेम था। अब उसी के साथ इनका विवाह होगा। बस।'

'बस जैसे ही उस चुड़ैल का और उन दानवों का दमन किया',—कल्पक बोला।

भुवन ने अपने को सम्भाला। आरुणि की बाहों से छूटकर कपिञ्जल के पैरो पर गिरने को हुआ कि उसने छाती से चिपटा लिया। कम्पित स्वर मे कपिञ्जल ने कहा,—'सुखी रहे आप और मेरी बहिन।'

थोड़ी देर मे वातावरण शान्त हो गया, क्योंकि सबकी आंखो में वही प्रश्न उतरा पड़ा था—अब क्या हो ?

वे सब रोमक के पास गये और सब हाल सुनाया। उसने और ममता ने पत्र पढा। उन्हें रोष को नियन्त्रित करना पड़ा। वेद और कपिञ्जल ने संक्षेप मे गौरी की कहानी बतलाई। रोमक और ममता कपिञ्जल के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हुये। 'ऐसी वधू का मिलना परम भाग्य की ही बात है' यह उन दोनों का भाव था।

कपिञ्जल चला गया। सोम पुरोहित को बुलाया गया। उस रात उन सबने अपनी तैयारी की रूप-रेखा बनाली।

गई रात ममता लेटे-लेटे सोच रही थी,—तभी भुवन इतना अनमना रहा करता था। इसीलिये वह इस सम्बन्ध को स्वीकार नही कर रहा था। मैंने स्त्री होकर भी यह बात न समझ पाई ! पर, मुझे नैमिषारण्य का कोई भी हाल तो नहीं मालूम था।

[७४]

कपिञ्जल बड़ी सतर्कता के साथ अपने निवास स्थान पर लौटा। अपने जिस मित्र से उसने क्षद्मवेश लिया था उसे लौटा दिया। उस युग मे एक श्रेणी के लोग इस प्रकार की वेश भूषा में स्वांग रचा खेला करते थे और भुवन-हिमानी के होने वाले विवाह के उपलक्ष में नाच-गान, खेलकूद और स्वांग चल ही रहे थे।

रात अधिक जा चुकी थी। चन्द्रमा ऊपर था। जैसे इतने खुले में भी उसे ठण्ड न लग रही हो! कपिञ्जल बहुत प्रसन्न था। वह गौरी से मिलने के लिये उत्सुक था—कहूँगा भुवन के माथे भीतर चक्कर काटने वाले सारे विकारों को इस पत्र के धक्के ने दूर भगा दिया है! वह सुखी हो जायगी। उसका साहस दुगुना चौगुना बढ जायगा। परन्तु किस बहाने मिलूं? हूं—ठीक है वहाँ किसी ने टोका तो कह दूंगा कि यात्रा व्यय कम पडता था, पूर्ति कराने आया हूं।

कपिञ्जल गौरी की कोठरी पर पहुँचा। किवाड़ वन्द थे। किवाड़ो की एक बहुत बारीक संधि में होकर टिमटिमाते दीपक का प्रकाश आ रहा था। अभी सोई नही है। हिमानी के सदन की आहट ली। वहाँ बिलकुल स्तब्धता थी। सो गई है। ठीक रहा। कपिञ्जल ने गौरी की कोठरी के किवाड़ पर बहुत धीरे से ठकठक की। गौरी जाग रही थी। उसने धीरे से किवाड़ खोल दिये और खुले रक्खे। वह भीतर बैठ गई, कपिञ्जल द्वार की चौखट पर—कोई आ जावे तो तुरन्त देख लूंगा और दोनो समाधान हो जायेंगे। इतनी रात आकर बात करने का बहाना भी उसने गौरी को सुझा दिया।

कपिञ्जल ने बहुत धीमें स्वर में उत्सुक गौरी को बतलाया,—'वेद और कल्पक भी आ गये हैं। पत्र को पढ़कर किसी का कुछ हाल हुआ और किसी का कुछ। राजा रोमक और रानी ममता को बड़ा क्षोभ हुआ। अब सब तैयारी पर चिपट गये हैं।'

'बहुत बड़ी बात हुई। तुम्हें देखकर वे सब बहुत प्रसन्न हुये होंगे।' गौरी ने कहा। वह कुछ और भी सुनना और जानना चाहती थी। उत्सुकता पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी।

कपिञ्जल ने उस 'कुछ और' को अन्त के लिये रख लिया था।

'हां बहिन, बहुत ही हर्ष मग्न हो गये थे। देखो न बाजार बाजार और गली गली मे मोद प्रमोद छाया हुआ है।'—कपिञ्जल बीच बीच में कुछ ऐसी भी मिलाता जा रहा था कि कोई यकायक आ जाय तो असली बात की कड़ी तोड़ने और नकली की जोड़ने मे कठिनाई न पड़े—'राजकुमार की दशा तो विचित्र ही हो गई थी—।'

'माथे का विकार ?'—गौरी का गला कांप गया।

'सब चला गया बहिन। दूर भाग गया। तुम्हारा नाम भी आकर ही रहा—।'

'क्या भैया क्या !' गौरी अपने को सम्भाल न सकी।

'इस काम का सारा पुण्य वे सब मेरी झोली में डाल रहे थे तो मैंने बतला दिया कि मेरी बहिन को श्रेय है। एक बात मैं आज तक नही जानता था। वह वहां मालूम हुई। उन सबको भ्रम था कि तुम माता पिता के साथ डूब गई हो ! मैंने जब ठीक बात बतलाई तो भुवन तुम्हारा नाम पुकार कर चीख पड़े और रोने लगे। यह कहो कि आरुणि ने उन्हें सम्भाल लिया नही नीचे गिर पडते और चोट खा जाते। वेद की एक बात मुझे बहुत अच्छी लगी। अरी बहिन ! हैं !!'

गौरी रो रही थी और सिसकियों को दबा रही थी। कपिञ्जल जब बात कर रहा था-उसके नेत्र और कान कोठरी के बाहर की आहट लेने पर लगे हुये थे इसलिये उसने उन सिसकियों को नही सुन पाया।

'सावधान ! सावधान बहिन !! यदि कोई यकायक आ जायेगा तो बहुत बुरा होगा। एक और बड़ी बात सुनाता हूं। शान्त होकर सुनो।'

गौरी ने घोर प्रयास करके अपने को संयत किया।

'क्या है भैया ?' गौरी का स्वर बहुत क्षीण था जैसे कोई सिसकी बोली हो।

'तुम ऐसे नही मानने की। मैं चला। जब वहाँ से लौटूंगा तब सुनाऊँगा',—कपिञ्जल ने कहा और चौखट पर से थोड़ा सा उठने का अभिनय किया।

'नही भैया नही—हाथ जोड़ती हूं। अब बिलकुल नही रोऊँगी।'

कपिञ्जल बोला,—'वेद ने कहा था कि अब भुवन का व्याह तुम्हारे ही साथ होगा। रानी और राजा रोमक ने भी निश्चय किया है।'

गौरी ने ठोड़ी से लेकर आँख तक अपना मुंह अञ्चल से छिपा लिया और मुड़कर खाट की पाटी को उँगलियो से कुरेदने लगी।

'भैया, मैं तो चाहती हूँ कि उनके बचाने में मेरे प्राण चले जायें तो सब कुछ पा गई',—गौरी ने बहुत धीमें परन्तु दृढ़ स्वर में कहा।

'पगली है मेरी बहिन,'—अब की बार कपिञ्जल के स्वर में कम्प था। आँख में जो एक आँसू बरबस आ गया था, कपिञ्जल ने तुरन्त पोंछ डाला।

बोला, 'बहुत सावधानी और साहस का काम है। खूब स्थिर बनी रहना। मैं अब जाऊँगा।'

गौरी ने हामी का सिर हिलाया।

कपिञ्जल चला गया।

गौरी ने किवाड़ बन्द कर लिये और दीपक बुझा दिया। बाहर से चन्द्रमा की किरणें प्रकाश की मन्द झाई भीतर भेजने लगी। गौरी हाथ जोड़कर खड़ी हो गई और देर तक खड़ी रही। आँखों से आँसू झर झर कर उसकी प्रार्थना पर अर्घ्य चढा रहे थे। शरीर की नसो मे इतना स्पन्दन था कि हाथ मे हथियार लेकर किसी भी सङ्कट समूह में कूद सकती थी।

रात में उसे बहुत ही कम नींद आई। सवेरे उठी तो थकावट बिलकुल नहीं; अङ्ग अङ्ग में शक्ति की प्रतीति थी।

[७५]

कपिञ्जल जब मेघ के गांव की ओर जा रहा था उधर से उसे वही व्यक्ति मिला जो कुछ ही दिन पहले नील के पास मेघ का सन्देशा ले गया था। उसने कपिञ्जल को पहिचान लिया।

'कहां जा रहे हो? कौन हो?'

'आचार्य मेघ के गांव। नील जी का सेवक हूं।'

'काहे के लिये जा रहे हो?'

'एक बहुत आवश्यक काम से।'

'क्या काम है ऐसा?'

'उन्ही से निवेदन करूंगा।'

'किसी का कोई पत्र लाये हो?'

'पत्र लाया है एक। वह दूसरे मार्ग से गाव निकल गया होगा।'

वह व्यक्ति हँसा,—'मैं केवल इतना ही जानना चाहता हूँ कि नील ने कोई पत्र भेजा है या नही। मैं नील के पास इसी प्रयोजन से जा रहा था।'

'भेजा है अवश्य। उसी नौकर के पास है, मुझे तो एक सन्देश का भुगतान करना है।'

'ठीक है। ठीक है। मैं सन्तुष्ट हो गया। लौट चलता हूं तुम्हारे साथ। सीधे रास्ते ले चलूगा।'

वह व्यक्ति कपिञ्जल के साथ हो लिया। सन्ध्या के कुछ पहले दोनों उस गाव पहुंच गये। मेघ की लम्बी-चौड़ी कुटी मे पहले की अपेक्षा बड़ा समूह था।

कपिञ्जल ने मेघ के हाथ में पत्र दिया। सन्ध्या के प्रकाश में वह उसे नही पढ सकता था। उस व्यक्ति को पढने के लिये दिया गया।

मेघ ने कहा, 'तुम बाहर जाओ दास।' कपिञ्जल बाहर जाने को हुआ।

जो व्यक्ति कपिञ्जल के साथ मार्ग में हो लिया था उसने सराहना की,—'बडा चतुर और सतर्क है यह। बहुत पूछने पर भी इसने यह नही बतलाया कि, पत्र साथ मे लिये है। कहता था कि कोई और पत्र लेकर आगे निकल गया है मुझे तो वैसे ही कुछ कहना है।'

'कहना है कुछ?'

'जी नही,' कपिञ्जल से उत्तर दिया।

मेघ प्रसन्न हुआ,—'अच्छा आँगन के ही कोने मे बैठ जाओ।'

कपिञ्जल एक कोने में सिकुड़-कर जा बैठा—जहाँ से वह सब कुछ देख और सुन सकता था। पत्र पढ़कर सुनाया गया। सब के सब हर्ष-मग्न हो गये।

'सफलता की कुञ्जी हाथ लग गई। अब कोई कसर नही रहेगी',—कई सामन्तों ने कहा।

मेघ बोला, 'आगे न कहना कि दीर्घबाहु बुड्ढा है, ऐसा वैसा है! कितनी जल्दी मान गया!!'

एक ने कृतज्ञता प्रकट की,—'अपनी शासक मण्डली में उसको ऊँचा पद दिये रहेंगे।'

'कही उतनी ही जल्दी बदल भी न जावे। पत्र को सावधानी के साथ सुरक्षित रख लेना चाहिये।' दूसरे महाशाल ने चेताया।

'मुझे दे दो पत्र। मैं रखूंगा अपने पास।' मेघ ने कहा और पत्र को लेकर अपने उत्तरीय के नीचे सावधानी के साथ रख लिया।

रात तीसरे पहर कूच कर देने का निश्चय किया गया। कपिञ्जल पहले ही चला जाना चाहता था। मेघ ने रोक लिया,—'नहीं, हम सब के साथ ही चलना। दिन के दोपहर तक अयोध्या पहुंच जायेंगे।' कपिञ्जल को मेघ ने नही पहचान पाया।

× × ×

उसी दिन सन्ध्या के पहले हिमानी ने गोरी को अपने और अधिक घनिष्ट सम्पर्क मे किया। वह बढ़िया साड़ी जो उसने एक दिन गोरी को

देते देते सन्दूक में फिर मे रखदी थी निकालकर दी। सोने के कुछ गहने भी दिये।

'मैं गहने नही पहनूंगी। इनके पहिनने पर काम नही कर सकूंगी', गौरी ने कहा।

हिमानी हँस पड़ी। फिर गम्भीर होकर बोली, 'अच्छा, अच्छा। सोने के सिक्के देती हूँ। ये तो नही हैं बोझिल ?'

'रक्खूंगी कहाँ मैं इन्हे ? मेरे पास छोटी सी पेटी तक नहीं है।'

'मैं दूगी। ये सिक्के अभी देती हूं और गहनों के साथ ही बहुत से कल के बाद। उत्सव काजों पर पहिन लिया करो। फिर किसी भले वर के साथ तुम्हारा ब्याह करवा दूंगी।'

गौरी ने सिर नीचा कर लिया।

'अब मेरी उन अत्यन्त निजी बातों के बतलाने की घड़ी आगई है।'

गौरी का सिर झटके के साथ ऊँचा हो गया। बड़ी आँखें विस्फीत हुईं।

'तुम्हे बहुत सी बातें पहले ही सुना चुकी हूँ। राजा ने यज्ञों में पशुओं का बलिदान बन्द कर दिया। बहुत लोगो को, जिनमें कुछ ब्राह्मण भी हैं, बुरा लगा। बुरा किया न राजा ने ?'

'हाँ हाँ।'

'हम लोगों पर बाप बेटे अब भी रूठे हुये हैं। उस दिन देखा जब मैं जयमाल डालने गई वहां से कैसे उठकर भागे थे राजकुमार जैसे मैं कोई डाकिनी होऊँ ! स्मरण है न ?'

'नही भूली हूँ।'

'वे मुझे नही चाहते, मै उन्हे नही चाहती। जयमाल और ब्याह सब ढोंग स्वांग है। यदि विवाह हो गया तो ये मुझे जीवन भर सतायेंगे।'

'मेरी समझ मे आ रहा है।'

'और ऊपर से मेरे पिता की सारी धन-सम्पत्ति डकार जाने पर तुल गये हैं।'

'स्पष्ट है। फिर?'

'फिर क्या? ब्याह नहीं होना चाहिये।'

'यह सब तैयारी?'

'बतलाऊँगी, बतलाती हूँ। मुझे दिखता है कि रोमक और भुवन ब्याह के समय मण्डप के ही नीचे या वहीं कहीं मेरा गला दबोच डालेंगे और सारा धन लूटकर चलते बनेंगे। एकबार इन्होंने हमारा सारा अन्न लूट लिया था। तभी तो रोमक को गद्दी पर से उतारने के प्रयत्न हम सबको करने पड़े। काला सांप यदि काटने को दौड़े तो उससे बचने के दो ही उपाय है—या तो उसके सामने से भाग जाय, या उसे बिना दात का कर दे। ये दोनों ठहरे बड़े बड़े भुजङ्ग। भागकर इनसे बच नहीं सकते। दांत इनके बिना वध के तोड़े नहीं जा सकते। इसीलिये—'

गौरी की आँखें पागलों जैसी विस्फारित हो गईं और उँगलियाँ जैसे कुछ पकड़ने के लिये फड़क गईं। देह ऐसी हिली मानो उछलने के लिये तैयार हो। दाँत भिच गये जैसे काट खाना चाहती हो!

हिमानी को गौरी के इस भाव से लगा कि मेरे उद्देश्य के साथ इसे पूरी सहानुभूति है।

'रेवती, सोचो तो तुमको इतने सुनने से ही पागलपन सवार हो गया है। एक मैं कि इतने समय से चुपचाप यह सब सहती चली आरही हूँ। तुम्हारी मोटी उँगलियाँ कोई हथियार मांग रही हैं जिनसे तुम मेरी सहायता कर सको। दूंगी, एक बढ़िया पैनी छुरी—'

'वह सब मण्डप के ही नीचे या?—'गौरी का गला भर्रा गया।

'मेरी रेवती इतना न अकुलाओ। धीरज से काम लो।'

गौरी को कपिञ्जल के वे शब्द याद आ गये,—सावधानी और साहस का काम है, स्थिर बनी रहना,—मुझे यह क्या हो गया था?

गौरी स्थिर होने लगी।

हिमानी ने कहा,—'मण्डप के नीचे नहीं। वहाँ होकर तो मेरा दीर्घबाहु के साथ होगा। बालदेव के सामने भुवन की बलि

चढ़ाऊँगी', गौरी के भीतर फिर ज्वाला भभकी, परन्तु उसने अपना दमन कर लिया। हिमानी की आंखें उसे ऐसी लगीं जैसे किसी कथा-कहानी की पिशाचनी की हों। उसे हांफ आने लगी थी।

दम साधकर हिमानी मिठास के साथ बोली, 'तुमने उस दिन सुन लिया था दीर्घबाहु मुझे किस तरह का सम्बोधन कर रहे थे—उस दिन जब मैं और वह अपने अपने सिर पर तिरा पहने थे ?

गौरी को स्मरण था परन्तु उसने कहा, 'कुछ ऐसा ध्यान नहीं दिया अपने काम से प्रयोजन रखती आई हूं।'

'सो तो मैं तुम्हे परख रही हूँ। वे मुझे कई बरसों से चाहते हैं। हम लोगों ने प्रण कर लिया था कि रोमक और भुवन से बदला लेने के उपरांत ही विवाह करेंगे। उन दोनों को वहीं समाप्त करके विवाह होगा और फिर हम सब का राज्य शासन सदा के लिये।'

बदले की भावना के साथ यह आकांक्षा भी जुड़ी हुई है! गौरी की समझ में बैठ गया।

हिमानी ने कहा, 'तो सोने के सिक्के और कुछ गहने ले लो। पेटी देती हूँ उसमें रक्खे रहना।'

'जी क्या करूँगी वहाँ रखकर! जैसे वहां तैसे यहाँ।'

'वाह वाह! यह भी कोई बात है? मेरा कहना मत टालो। अच्छा सोने के सिक्के अपनी साड़ी के छोर मे बाँध लो। कल वह साड़ी पहनना भला। गहने तुम्हारे लिये अपने पास रक्खे रहूँगी।'

'अच्छी बात है।'

हिमानी ने गौरी को सोने के सिक्के दिये। उसने साड़ी के छोर मे बांध लिये।

हिमानी ने कहा, 'अब बालदेव के मन्दिर मे चलो। सन्ध्या हो गई है।'

वे दोनों बालदेव के आश्रम में दीपक लेकर गईं । फूल मालायें चढ़ाईं और हिमानी मन ही मन सुमरने लगी,—हमारे शत्रुओं का नाश करना इत्यादि । गौरी को स्मरण हो आया—जब मेरा प्रसङ्ग आया वे रो पडे थे; मूर्छित हो रहे थे कि उनके सहपाठियों ने सँभाल लिया, यदि उन्हें पहले ही सब कुछ मालूम हो जाता तो—गौरी के चेहरे पर उदासी नही आई—खिल उठा । गौरी के मुंह से प्रार्थना निकली—'परमात्मन् मुझे शक्ति देना !'

हिमानी प्रसन्न हुई,—'हां यह भी ठीक है चलो मैं तुम्हें छुरी देती हूं ।'

× × ×

गौरी ऊषा काल में जाग उठी । श्यामा ऊषा के आगमन का गीत अपनी स्वर लहरी में गा रही थी । उधर से दूसरी, उसके बोल मे अपने बोल मिला रही थी । गौरी ने बाहर निकल कर देखा उद्यान लहरा रहा है । गौरी वह सब विज्ञान की दी हुई समझदारी के साथ नही प्रत्युत श्रद्धा द्वारा प्रदान की हुई अनुभूति के साथ देखने लगी ।

'आज—आज या तो यह राक्षसी नही या मैं नहीं ।'

× × ×

दोपहर के पहले ही कपिञ्जल लौटकर आ गया । उसने मेघ और उसके सहवर्गियों के तीसरे पहर तक आ जाने का समाचार दिया । नील हर्षमग्न हो गया । कपिञ्जल को कुछ स्वर्णखण्ड पुरस्कार मे मिल गये ।

नील के निवास के सामने जो पशुशाला थी उसका लम्बा-चौड़ा कमरा साफ सुथरा कराया गया—इसमें अतिथि ठहरेंगे । भवन के सामने सड़क चौड़ी थी । वहां बड़ा मण्डप बड़ी शीघ्रता के साथ बनाया-सजाया जा रहा था ।

हिमानी ने कपिञ्जल को गौरी के हाथों बुला भेजा । कपिञ्जल ने गौरी को संक्षेप में सब सुना दिया और कहा,—'सामने की पशुशाला में

इनके कुछ लोग इकट्ठे होंगे तो मेरे अपने सहवर्गी उनका सामना करने के लिये कमर कसे रहेंगे। दर्शकों के वेश में आयेंगे।'

गौरी ने अपनी बीती का सार सुनाया,—'तुम्हें भैया भीतर ही रहना पड़ेगा।'

'बहुत समय है। समझा दिया और समझा दूंगा।'

'राजा और राजकुमार को कुछ बतलाना होगा ?'

'घबराओ नहीं। देखूंगा।'

जब कपिञ्जल हिमानी के सामने पहुँचा तो उसने कहा, 'तुम और रेवती बहुत से फूल बीन लाओ। हार यहीं होकर बनाना। आज तुम्हें क्या क्या करना है बतलाऊँगी।'

× × ×

तीसरे पहर मेघ का दल आ गया। सूर्य की किरणें कोमल पड़ गई थीं। नगर में नाच-रङ्ग की बाढ़ सी आ गई थी। कहीं सामन्त और और अन्य जन जुआ खेल रहे थे। भोजनालयों में खाऊखप्पर खीर, पुये, दही, गुड़, शकर, मधु, फल इत्यादि गले-गले तक ठूसे चले जा रहे थे क्योंकि रोमक ने अपनी ओर से सेंतमेंत के खाने का प्रबन्ध पहले से कर रक्खा था। मेघ ने देखा कि इनको क्या मालूम सिर के ऊपर मृत्यु मंडला रही है—हाँ इनकी मृत्यु नहीं, उनकी!

मेघ और उसके प्रमुख साथी शीघ्र ही नील, दीर्घबाहु इत्यादि से मिले। तै हुआ कि भवन के सामने की पशु शाला के लम्बे कमरे में मेघ के सामन्त संध्या होते ही आ जायेंगे। जुआ खेलने और मनोविनोद का स्वाँग रहेगा। जैसे ही नील-भवन के भीतर शंखनाद हुआ कि निकलकर रोमक के साथी-सहयोगियों पर टूट पड़ेंगे जो सड़क पर खड़े, बड़े मण्डप के नीचे नाचरङ्ग में उस समय आनन्द-मुग्ध होंगे, और भीतर रोमक भुवन इत्यादि समाप्त।

कुछेक ने शङ्का की, 'घटना के बाद जन-मन में किसकिसापन आ सकता है, वह कैसे दूर किया जावेगा ?'

मेघ ने शङ्का का समाधान किया,—'पहले काल में कई बार ऐसा हुआ है कि किसी एक सुन्दर कन्या के विवाह के लिये दो वर आ गये। कन्या ने कह दिया कि पहले आपस में निबट लो। दोनों लड़ गये। मारा गया। जो जीत गया उसके साथ विवाह हो गया। रोमक या जो भी बीच में आ पड़ा वह भी समाप्त हुआ। आज कोई नई बात न होगी।'

दीर्घबाहु ने कहा, 'मैं ले लूंगा वह सब अपने सिर। व्याह तो अन्त मे मेरा ही होना है। घटना के उपरान्त तुरन्त घोषित कर दूगा कि भीतर मण्डप के नीचे मेरा उन लोगों से द्वन्द्व हो गया और मैंने मार गिराया। होगा भी यही जैसा कि मुझे दीख रहा है। बस।'

'होगा कुछ और।' नील बोला।

'कुछ भी सही, मैं सब बातो के लिये कमर कसे तैयार हूँ।'

दीर्घ की बात पर मेघ के कई सहयोगियों को सन्तोष के साथ सन्देह भी हुआ। उन्हे अपने शस्त्रों का विश्वास था।

थोड़ी सी और बातें करने के बाद—किसको क्या करना है—वे सब अपने अपने निर्दिष्ट काम पर लग गये।

× × ×

जब गोरी और कपिञ्जल उद्यान से फूल लेकर आ गये। हिमानी ने कपिञ्जल को अपनी योजना का कुछ अङ्ग बतलाकर शेष के लिये गोरी के हवाले किया और कहा, 'साथ बने रहना है और आवश्यकता पड़ने पर गोरी की सहायता करनी है।'

'जी, बहुत अच्छा', कपिञ्जल ने नतमस्तक स्वीकार किया।

'तुमको सारे सेवकों का मुखिया बनाऊँगी। काम थोड़ा अधिकार बहुत। है यह कि बिना मेन मीख के जिस तरह काम करते चले आये हो वैसे ही करते चले जाओ',—हिमानी ने प्रोत्साहन देते हुये सावधान किया।

सिर झुकाये हुये कपिञ्जल ने कहा, 'जी अपने कर्तव्य पर देह भी दांव पर लगा दूंगा।'

'हम पर बहुत प्रसन्न हैं दास। पुरस्कार पाओगे।'

गोरी की अधमुंदी तिरछी चितवन मे साहसिक व्यङ्ग होठों की झीनी मुस्कान में चुनौती और गाल की एक छोटी-सी रेखा के स्पन्दन में भीतर के हलचल की झटक थी। रेवती में मेरे इस कृत्य के साथ कितना अपमान है; हिमानी को लगा।

'एक जगह बैठकर कई हार गूंथ डालो—छोटे बड़े सब तहर के। सन्ध्या के उपरान्त क्या क्या करना है बतला दूंगी।'

[७६]

चौथा पहर लग चुका था। सूर्य किरणें धरती को झुक-झुक कर सहला रही थी। हरियाली को सोना मिल रहा था।

रोमक भवन के आगे भी मण्डप और वितान तने खड़े थे। उसारों में वाद्य मधुर स्वरों में मन्दलय के साथ बज रहे थे। ऊपर ऊपर आनन्द मग्नता मिचकियाँ ले रही थी—भीतर-भीतर सतर्क तैयारी और सावधानी के अनेक रूप धारण करती चली जा रही थी। कोई लोहे के छल्लों के जालीदार कन्चुक अपनी देह पर सटा रहा था। कोई कवच, झिलम और टोप लगा रहा था। उनके ऊपर रङ्ग-विरंगे ऊनी और रेशमी वस्त्र। झिलम टोप पर विविध रङ्गो के रेशमी उष्णीष कटि में फेंटे। पैरों में नोक और झब्बेदार जूते कमर से नीचे टखनों तक लटकने वाले श्वेत परिधान। ऐसे लगते थे ये बराती जैसे चलते फिरते छोटे मोटे झाड़ हों। रोमक ने भुवन और उसके सहपाठियों और संगियो ने इसी प्रकार की वेश-भूपा की। यहां तक कि सोम पुरोहित ने भी।

भुवन और उसके तीनों सहपाठी भवन की उस कोठरी मे गये जहाँ विविध प्रकार की तलवारों का संग्रह था। अपनी रुचि के अनुसार चुनाव करने लगे।

वेद ने भुवन से कहा, 'तलवार भांजने के लिये तुम्हे सम्भव है कि छोटासा स्थान मिले। छोटी या मझोली ले लो। हिमानी का शरीर होगा भी कितना ?'

भुवन एक तलवार को चुनते-चुनते बोला, 'मैंने उसे एक बार चाबुक से पीटा था। यदि आज वह मेरी पीठ पर दुगने तिगुने भी जड़ दे तो सह लूंगा

'तो कवच उतार दो न। इस पर तो लोहे के कोड़ा भी तुम्हे फूल की तरह लगेगा।'

'वाह ! तुमको हँसी की बात जान पड़ती होगी, मैं बिलकुल हृदय की कह रहा हूं।'

आरुणि ने सुनना चाहा, हिमानी को क्यों पीटा था ? भुवन ने संक्षेप मे बतलाया।

आरुणि ने कहा, 'ऐसा न हो कि वहा उस समय पश्चाताप के पानी से गीले पड़ जाओ और बिना हाथ पर हिलाये ही मार दिये जाओ।'

'नही आरुणि, मैं वहां लोहे का खम्बा वनकर जाऊंगा।'

रात लगे पीछे वर यात्रा का मुहूर्त था। बरात चक्कर काटते धीरे-धीरे नील भवन के सामने पहुंचनी थी। फिर वहां के बड़े मण्डप के नीचे शिष्टाचार, अभिनन्दन आमोद-प्रमोद। एक पहर यों चला गया। फिर दूसरे पहर में विवाह का मुहूर्त !

भुवन दूल्हा बनकर अपने गुरु-भाइयो सहित ममता के सामने पहुंचा। ऊपर लहर और भीतर जाग पड़ने वाले ज्वालामुखी की निश्शब्द झंझा। साहस की बातें सोचते तै करते भुवन की आंखो में दर्प और चेहरे पर रूखापन आ गया था। उसकी माता के भीतर की चिन्ता स्वभाव के तेज और धैर्य को जैसे ग्रसने ही वाली हो।

भुवन ने मां के चरणो मे माथा टेका। दूल्हा के ब्याह पर मां के चेहरे पर मुस्कान की आधी रेखा भी नही। आँखो में आसू जिन्हे वह पोंछ भी नही पा रही थी।

'मां आशीर्वाद दीजिये कि हम क्षत्रियों का जैसा काम करें,'—भुवन ने धीरज से सधे स्वर में विनय की।

ममता का आशीर्वाद उसके गले तक आकर हिलकी में समा गया।

भुवन उठ खड़ा हुआ उसकी आंखों में भीतर का पराक्रम आ बैठा। हाथ जोड़कर बोला,—'आप तो माता जी···' गले से निश्चय की प्रखरता बजी।

ममता ने भुवन के सिर पर हाथ फेरा। फेरती रही। जब अपने को संयत कर लिया टूटते स्वरो में आशीर्वाद दिया,—'सुखी रहो। विजय पाकर लौटो।'

वेद ने पैर छुये और कहा,–'माता जी मैं दूल्हा का छोटा भाई हूँ।

ममता ने आंसू पोंछ डाले। मुस्कुराई जैसे घने कुहरे में से यकायक सूर्य की किरण फूट पड़ी हो,—'चिरंजीवी हो बेटा।'

कल्पक ने भी इसी प्रकार आशीर्वाद पाया। आरुणि की भी समझ में आ गया कि मुझे क्या कहना चाहिये,—

'माता जी, मैं दूल्हा का बड़ा भाई हूँ।' और उसने अपने मोटे बलशाली हाथों ममता के छोटे से पैर छुये।

'पञ्चाल के विशाल गौरव, मेरे लाल, जियो, सुखी रहो।' अब ममता के स्वर का कम्प चला गया था और वह मानो तेज से भर रही हो।

जब वे चलने को हुये ममता ने कहा,—'गुरुदेव का उपदेश स्मरण रखना कि यदि पराक्रम तुम्हारे दायें हाथ में और धर्म हृदय में हो तो जय तुम्हारे हाथ में बनी बनाई।'

वेद बोला,—'माता जी हम विजय को भुवन की गांठ से बांधकर लायेंगे।' और चल दिया।

ममता भुवन की ओर देख रही थी—कदाचित् मुड़े। परन्तु वह नहीं मुड़ा।

× × ×

नील भवन के सामने वाला मण्डप विशाल और बड़ा सजीला था। छाया तने हुये रङ्ग–बिरंगे वस्त्रों की थी। मण्डप के खम्बे हरी पत्तियों के वेलबूटो से तीसरे पहर से ही सजाये जाने लगे थे। सन्ध्या तक सज गये और वेलबूटों के बहुत से पत्ते मुर्झा कर टपक गये। केवल द्वार के कदली खम्ब और उन पर लिपटे बेलबूटे हरे थे—ये बहुत पीछे लगाये सजाये गये थे।

सन्ध्या होते ही मेघ के सशस्त्र सामन्त नील भवन के सामने आ गये। उनको देखकर नील के तन-मन की थकान दूर हो गई। मेघ उसके पास पहले ही आ गया था।

मेघ ने उसे और भी प्रोत्साहित किया,—'उस घड़ी तक ये सब पशुशाला के उस कमरे में आमोद प्रमोद करते रहेंगे फिर जैसे ही उन्हें वह संकेत मिला कि मैदान मे आ कूदे। तुम्हारे भीतर का प्रबन्ध तो सब ठीक है ?'

'विलकुल आचार्य जी। नौकर चाकर सब हाथ के हैं।'

नील उन सामन्तों को पशुपालन के बड़े कमरे में आदर के साथ बिठला आया। वहाँ भोजन पान और जुये का प्रबन्ध था। वे सब भविष्य की आशा पर मौज मे थे।

नील भवन के उसारों मे वाद्य तीखे स्वरों में तीव्र लय के साथ बज उठे। तमाशा करने और देखने वाले इकट्ठे होने लगे। इनमे ऐसे भी थे जो काइँयेपन के साथ इधर उधर की निरख परख भी कर रहे थे। दीपस्तम्भो के दीप जला दिये गये। चहल पहल बढ गई।

× × ×

हिमानी ने अपनी सजावट कराई। सिर की मणिमुक्ता मालाओं के ऊपर फूलों की थोड़ी सी मालायें उसके भँवर वाले केशों के तेल को दमक देने लगी। गले मे हीरे माणिक मोतियों के हार, भुजाओं पर सोने के जड़ाऊ भुजबल और वलय कलाइयों पर सोने की जड़ाऊ चूड़ियाँ, अत्यन्त बहुमूल्य और बड़े बड़े छपकों वाली रङ्गीन साड़ी पर कमर में सोने की चौड़ी जड़ाऊ करधोनी और पैरों में महावर के ऊपर झुन-झुन करने वाला आभूषण। माथे पर लाल बिन्दी जो उसके हिमानी श्वेत रङ्ग को चमका रही थी। अङ्गराग, अलक्तक रस, अंजन, पुष्परेणु, केसर कपूर मिश्रित चन्दन सब यथा स्थान काम में लाये गये थे। सजावट करने वाली अपने शिल्प पर प्रसन्न हो हो जा रही थी। वे उस समय नही जानती थीं कि उन्होने किसी की मौत को सजाया है।

हिमानी ऊँची चौकी पर टिके हुये लम्बे चौड़े काँच के सामने पहुंची। जो कोई भी देखता उसकी सजधज और रेखाओं में आकर्षण

की प्रचुरता पाता। हिमानी ने ध्यान के साथ अपना रूप देखा—इतनी सुरूपता किसी में भी न होगी! किसके पास इतने गहने होंगे? और मेरी इसी एक साड़ी पर न जानें कितनी राजकुमारियों की साड़ियां न्योछावर हो जायंगी। इस समय मुझे कोई भी रानी राजकुमारी आकर देखे तो ईर्षा के मारे राख हो जायगी। उस भाव को देखकर मुझे हर्ष भी होगा और दया आयेगी। हिमानी मुस्कराई। रागरञ्जित कपोल उसकी बादामी आँखों की कालिमा को रङ्गने लगे। मेरी आंखें उस समय कैसी होंगी? मुस्कान चली गई नाक का नथना थोड़ा ऊपर की ओर सिकुड़ा। होठ से होठ जा सटा। कुछ घड़ी पीछे ही बस उसका वक्ष उठने बैठने लगा। हिमानी के उस रूप को देखकर सजावट करने वालियों की प्रसन्नता खिसकने को हुई।

हिमानी ने काँच के पास हटकर उनसे कहा, 'यहाँ का काम हो चुका। तुम सब जाओ। गाने बजाने की तैयारी करो। रेवती को भेज देना।'

वे सब चली गईं। गौरी एक टोकनी में फूल मालायें लिये आ गई।

'वाह मेरी रेवती! तुमने बहुत अच्छे बना डाले ये सब! उद्यान मे कल के लिये तो फूल बचे ही न होंगे।' हिमानी हँसी।

'जी दूसरे खिल जायेंगे।' गौरी के स्वर में मार्दव नहीं था।

'तुम्हारी दृढता को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूं।'

'काम बतलाती जाइये और देखती जाइये।'

हिमानी और भी प्रसन्न हुई।

'किवाड़ बन्द करके इधर आओ।'

गौरी ने किवाड़ बन्द कर दिये और उसके निकट जा पहुँची।

हिमानी ने अपने एक सन्दूक में से दो तेज छुरियां निकालीं। एक गौरी को दी।

'इसे अपनी पसलियों के पास छिपाये रखना। बालदेव के मन्दिर में जैसे ही भुवन आया कि पहला वार मेरा होगा। दूसरा तुम्हारा

यदि भुवन ने मुझे विफल करने की चेष्टा की तो तुम मेरी सहायता के लिये मुट्ठी कसे रहना। भुवन बचने न पावे। हिमानी के हाथ मे छुरी चमक रही थी।

गौरी की आँखों में भीषणता आ बैठी और नथने फूल गये। हिमानी की दी हुई छुरी मुट्ठी मे ऐसे कस गई मानो वह उसे पीसे डालती हो।

हिमानी पुचकार कर बोली, 'अरी मेरी रेवती! अभी यहाँ भुवन कहां है जो तुम इतनी तन गईं!!'

गौरी ने अपने को शिथिल किया। भर्राये हुये स्वर में कहा, 'मुझे कुछ वैसा ही दिखने लगा था।'

'आलय में दास भी रहेगा। सम्भव है तुम्हें उतना प्रयास और श्रम न करना पडे। बहुत सीधा होने पर भी कुछ तो करेगा ही।'

'जी बहुत कुछ।'

'अब तुम वह साड़ी पहिनकर आ जाओ। एक बड़ी मोती-माला पेशगी पुरस्कार मे देती हूँ। उसको पहिनो। मेरी सच्ची सखी जँचोगी।' हिमानी ने छुरी अपनी कञ्चुकी के नीचे सावधानी के साथ रख ली।

'मैं माला-वाला कुछ नही पहिनूँगी। काम के समय कही उसमे हाथ फँस गया या अटक गया तो? मुझे पहिनने का अभ्यास नही है। आपको अभ्यास है। अपनी जैसी मुझे न समझो।'

है भी नही। मुझ जैसी इस जन्म मे क्या कई जन्मों मे न हो पावेगी! पर निकली पक्के कलेजे की।

'तुम बड़ी दूरदर्शी हो! आरम्भ मे समझी थी कि मरियल हो और बोदी।'

'जी, आपसे बहुत सीखा।'

गौरी छुरी लेकर चली गई और थोड़ी देर मे उस बढिया साड़ी को पहिनकर आ गई। एक क्षण के लिये हिमानी को लगा...क्या यह मुझसे अधिक दिप रही है? अरे नही—न मेरा जैसा रङ्ग है, न रूप, और न वेशभूषा।

'छुरी रख ली ?'

गोरी ने पसलियों के पास हाथ रखकर संकेत में हामी भरी।

ढोल, मृदंग और रणतूर्य के दूर से आने वाले शब्द को सुनकर हिमानी ने कहा,—'बरात आ रही है, चलो' और फुफकार छोड़ी। गोरी की आंखें किंचित नीची हुईं भौंहें सिकुड़ीं और दांत भिंचे। उसने केवल सिर हिलाया और फूली हुई दम को साधती हुई हिमानी के पीछे हो गई।

× × ×

बरात नगर में निकल आई थी।

छज्जों पर नारियां मङ्गल-गीत गा-गाकर भुवन के रथ पर फूल बरसा रही थीं। बरात के साथ एक भीड़ थी जिसमें कपिञ्जल के कुछ सहवर्गी भी थे। आरुणि, वेद और कल्पक चौकसी के साथ कभी इस समूह में और कभी उस समूह में होकर पैदल चल रहे थे। इनके साथ रोमक के कुछ विश्वसनीय योद्धा भी थे।

रोमक के संग रथ में पुरोहित सोम बैठा हुआ था। अनेक विपत्तियों का भुगता हुआ रोमक आने वाली समस्या के सामने छाती ताने था—जब तक मेरी छाती मे एक भी सांस रहेगी मेरे पुत्र का एक बाल भी बाका न हो सकेगा।

पुरोहित सोम ने उसके कान में कहा,—'अयोध्या के नर-नारियों की यह पुष्प-वर्षा आगे आने वाली विजय की पदचाप है।'

'आपका आशीर्वाद, आर्य।' रोमक ने पूरे हृदय के साथ संक्षेप में कृतज्ञता प्रकट की।

× × ×

नील-भवन के सामने की पशुशाला के भीतर आंगन में कुछ भैंसें, थोड़ी-सी गायें थीं। कुछ गधे, घोड़े, खच्चर और बछिया-बछड़े भी थे।

आँगन स्वच्छ कर लिया गया था, फिर भी जानवर तो जानवर ही है। लीद और गोबर के ढेर लगने लगे। उनके लिये नील के पास कोई स्थान था ही नही। फिर थोड़ी ही देर का तो काम था। मेघ के सशस्त्र सामन्त खा-पीकर कोई किसी आमोद मे थे कोई किसी में। कई जुआ खेल रहे थे। उनको एक बँधे संकेत पर मैदान मे कूद पड़ना था! इस समय बाहर वालों से, अरात-बरात से उन्हें कोई प्रयोजन न था।

एक ने दाँव जीता तो चिल्लाया,—'वह मारा है!'

दूसरा भी मौज मे था। बोला,—'आ रही है घड़ी जब हम तुम एक नहीं कई दाव मारेंगे।'

[७७]

बरात आ गई। बराती मण्डप के द्वार की दिशा में पैदल बढ़े। नील उस जमाव को देखकर अस्थिर हुआ। घिग्घी सी बँध गई। मेघ ने देख लिया। धीरे से परन्तु फटकार के स्वर मे बोला, 'हें ! साहस, साहस !! आगे बढ़कर उन सबका स्वागत करो। मैं उधर मञ्च के पास जाता हूँ। मेरा काम स्वागत करने का नही है। मैं आचार्य हूं।'

नील ने अपने को किसी तरह से संयत करके मेघ से कहा, 'यदि रोमक ने आपसे यहाँ क्षमा माँगी तो ?'

'क्षमा दे दी तो फिर हाथ मे रह ही क्या जायगा ? घबराओ मत क्षमा देकर आत्मघात नही करूँगा। मैं आंगन वाले मण्डप मे चला जाता हूँ। क्षमा याचना के पहले ही बहुत कुछ हो जायगा। अपने यहां की रीति को याद रखना।'

'जी।'

मेघ वहाँ से चला गया। दीर्घबाहु नील के पास ही था।

धीरे से बोला,—'आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें, मैं भी क्षमा न करूँगा। जहाँ कहिये तहां उन्हे समाप्त करने को तैयार हूँ।'

दीर्घ की आतुर तत्परता ने नील को तुरन्त चेताया,—'चुप चुप। वही सब होगा। मेरे साथ बने रहो। देखो, वे सब आ रहे हैं। आओ।'

नील और दीर्घबाहु ने रोमक, भुवन इत्यादि का बड़ी नम्रता के साथ स्वागत किया, अर्घ्य दिया, मधुपर्क भेंट किया। बराती मण्डप के नीचे आ गये। परस्पर परिचय कराया जाने लगा।

नील ने कहा, 'कुछ अतिथि उस घर मे आमोद-मग्न हैं। जुआ खेल रहे हैं। परम्परा है। थोड़ी देर मे नमस्ते करने आ जावेंगे।'

रोमक हँसकर बोला,—'हां हां, मिल लूँगा उनसे। कोई आतुरता नहीं। नमस्ते देर-सबेर हो जायगी।'

नील-भवन के आगन से स्त्रियों के मङ्गल-गान की ध्वनि आई। भुवन रोमक के निकट ही अपने गुरुभाइयो के साथ था। गौरी इस

पिशाच-भवन में क्या कर रही होगी ? वह भी गाना जानती है, परन्तु गा नही रही होगी । कही उदास पडी होगी । चिन्ताओ के मारे रोग-ग्रस्त न हो गई हो ! भुवन सोच रहा था ।

वेद ने चुटकी काटी,—'किस उधेड़-बुन मे दूल्हा जी । उस गायन मे क्या बहूरानी का स्वर ढूँढ़ रहे हैं ?'

'अरे वाह !' भुवन मुस्कराया । मुस्कान फीकी थी । आरुणि ने वेद और कल्पक को आँख के संकेत से अपने पास एक ओर किया ।

'समझ गये ? उस घर मे जुआ हो रहा है । धीरे-धीरे वहा पहुँच जाओ ।' वे दोनों उस ओर चले गये ।

रोमक ने नील से पूछा, 'आचार्य मेघ कहां है ? उनके दर्शन नही हुये !'

'आचार्थ मेघ विवाह-मण्डप मे भीतर हैं । होम हवन की तैयारी कर रहे हैं ।' नील ने उत्तर दिया ।

'कोई बात नही । वही कर लूंगा उनके दर्शन,' रोमक ने कहा ।

नील ने बरातियो को ऊँचे मञ्च पर बिठला दिया । मञ्च के नीचे गायक और नर्तक गाने नाचने के लिये हुये ।

परम्परा की विधि के अनुसार भुवन ने गायकों से कहा, 'राजा के यश का गान करो । यदि उनसे भी बढ़कर कोई हो तो उसकी कीर्ति का बखान करो ।' इस गर्वोक्ति ने भुवन के कण्ठस्वर का मेल नही पाया । उसके स्वर मे विरक्ति अधिक थी ।

वेद और कल्पक इधर-उधर चक्कर काटते बातें करते नील की पशु-शाला के सामने जा पहुँचे । वहां भी थोड़ी सी भीड़ थी ।

वेद कह रहा था, —'यह सब हो जाय तो कल जङ्गली पशुओं के आखेट के लिये चलेंगे । पास के जङ्गलो मे बहुत सुने गये हैं ।'

भीड़ का एक व्यक्ति निकट खड़ा था । उसने पशुशाला की ओर अपनी आँखें घुमाईं और धीरे से कहा,' इसी मे बन्द हैं बहुत से,' और वह द्रुतगति से कहीं समा गया ।

कलाक ने सकेत में वेद से प्रश्न किया, 'यह कौन ?'

वेद ने धीरे से कहा, 'योगिराज के वर्ग का अपना कोई मित्र ।'

भवन के भीतर आँगन मे एक छोटा सा बहुत रुचिर मण्डप बना हुआ था । उसके नीचे होम के लिये छोटी सी वेदिका और हवन-सामग्री रक्खी हुई थी । मेघ आँखें चढ़ाये उस सामग्री को कभी इधर और कभी उधर कर रहा था । वेदिका के आसपास थोड़ी सी ऊनी आसनें बिछी हुई थी । बड़े बड़े दीपो के प्रकाश मे आँगन चमचमा रहा था । फूलों की सुगन्धि इतनी कि ठण्ड को भी नाक फुलानी पड़े । आँगन की दालानों मे पड़ोस की स्त्रियां झूम–झूमकर हँस–हँसकर मङ्गल-गीत गा रही थीं । हिमानी एक ओर से मण्डप मे आई । उसके पीछे गोरी और कुछ सेविकायें थी । गोरी के हाथ मे फूल-मालायें । उसके पीछे कपिञ्जल एक टोकनी में और बहुत से फूल लिये था । हिमानी ने मेघ के पैर छुये ।

मेघ ने हिमानी को असीसा,— अपने काम मे सफल होओ । सुखी रहो ।'

गोरी ने सिर नीचा किये मन ही मन मेघ को गाली दी,—'राक्षस कही का !'

मेघ ने एक सेविका से कहा, 'दूल्हा को बाहर से बुलवाओ । मुहूर्त आ गया है ।'

हिमानी ने गोरी को आज्ञा दी,—'मालायें दास को दे दो और वहां मन्दिर मे चलो ।'

गोरी ने मालायें कपिञ्जल को दे दीं । हिमानी बाल के मन्दिर की ओर चली । उसकी अन्य सेविकायें भी साथ लगने को हुईं कि हिमानी ने वर्जित कर दिया,—केवल गोरी और दास रहेंगे वहां । भीड़ के लिये स्थान ही नहीं है इतना ।'

हिमानी गोरी और कपिञ्जल को लेकर बाल की कोठरी में जा पहुंची । हिमानी ने गोरी और कपिञ्जल को कुछ ध्यान के साथ देखा । गोरी उसे पत्थर की जैसी जान पड़ी । आँखों में जैसे कोई भाव ही न

हो। कपिञ्जल सिर झुकाये खड़ा हो गया था। आज्ञा में तन्मय जान पड़ा।

मेघ का बुलावा नील के पास बाहर के मण्डप में पहुँच गया। नील ने बड़ी विनय के साथ निवेदन किया,—'मुहूर्त आ गया है।' और सिर नीचा कर लिया। उसका कलेजा धडक रहा था।

सोम, रोमक, भुवन और आरुणि ने एक दूसरे के प्रति एक क्षण में दृष्टि फेरी।

रोमक ने कहा, 'जानता हूँ। चलिये।'

रोमक और भुवन के साथ सोम और आरुणि तो उठे ही और भी कई बराती उठे।

नील ने नम्रता के साथ निषेध किया,—'मण्डप के नीचे स्थान बहुत थोडा है। स्त्रियाँ वहाँ खचाखच भरी हैं।'

सोम पुरोहित ने हँसकर कहा,—'कोई बात नही। हम चार के लिये तो स्थान है?'

मेघ ने आरुणि की ओर संकेत करते हुये प्रश्न किया,—'यह कौन है!'

'आरुणि, दूल्हा के गुरु भाई, बड़े भाई से भी बढकर।'

नील ने उसी नम्रता के साथ उत्तर दिया,—'फिर और किसके लिये स्थान होगा? मण्डप के नीचे कन्या और उसकी कुछ सखियाँ होंगी। आचार्य मेघ, मैं और यह दीर्घबाहु होगे। बस।'

नील के सजे हुये प्रवेश द्वार से थोड़ा सा हटकर एक सुन्दर गाय बँधी हुई थी। उसके गले और सींगों पर विविध रंग के फूलों की मालायें बँधी हुई थी। उस युग में गाय को ऐसे ही किसी स्थान में बाँध रखने की रीति थी। गाय के समक्ष होते ही भुवन को उस दिन का स्मरण हो आया जब नैमिषारण्य में टीले पर गौरी थी और नीचे गाय खड़ी उसकी ओर देख रही थी। गौरी का उद्धार अत्यन्त आवश्यक है चाहे कुछ हो जाय, भुवन ने अपने निश्चय को और भी दृढ़ किया।

उसने गाय का बन्धन खोल दिया। यह रीति के अनुसार था। गाय का रखवाला उसे लेकर चला गया।

फिर वे सब भीतर जा पहुँचे। स्त्रियों ने उन पर फूलों की बरसा की। धान फेंके। भुवन और रोमक ने मेघ को प्रणाम किया। उसने कल्याण-स्वीकृत का हाथ साप के फन जैसा उठाकर नीचे कर लिया। वे सब के सब अलग अलग आसनो पर बैठ गये। स्त्रियां गीत गाने लगी। बाहर तो नृत्य-गान चल ही रहा था।

मेघ ने कहा,—'मुहूर्त आ गया है। नीलपणि के परिवार में रीति चली आई है कि वर-वधू पहले इनके बालदेव की पूजा करते हैं फिर विवाह होता है। कन्या बालदेव के आलय मे पहुंच चुकी है। राजकुमार को भी भेज दीजिये। कुछ क्षणों का ही काम है वहाँ बस फिर यहां। वहाँ का काम समाप्त होते ही शँख फुकेगा।'

सोम बोला, 'नील के परिवार की रीति निभाने और आपकी आज्ञा के पालन करने मे इधर आक्षेप ही क्या है ?'

रोमक ने कहा, 'ठीक है, जाओ भुवन। अपने परमात्मा का भी स्मरण करना।' रोमक ने कठिनाई के साथ कण्ठावरोध रोक पाया।

भुवन खडा हो गया। उसे मन्दिर का मार्ग नही मालूम था। इधर उधर देखने लगा—गौरी कहां होगी ?

'दीर्घबाहु जी पहुँचा देंगे।' नील बोला। आरुणि उठ खड़ा हुआ,—'मैं भी देख लू देवता का आकार-प्रकार कैसा है।'

'जी नही।'—नील ने कहा,—'वहां और कोई नही जा सकता। वर-वधू के लिये ही उसमे स्थान थोड़ा है और फिर वहां आंगन की ओर एक ही द्वार है भीतर जाने और लौटने के लिये। उस द्वार मे आपकी देह ही न समावेगी। दीर्घबाहु द्वार तक पहुंचा कर लौट आवेंगे।'

मेरी देह पर इस पिशाच को बड़ी जलन है। है भी एक ही चांटे का। आरुणि ने मन में कहा और हँसकर उकडूँ बैठ गया।

दीर्घबाहु भुवन को उस स्थान के द्वार तक पहुँचा कर लौट आया। किवाड़ भिड़े हुये, परन्तु भीतर से बन्द न थे। भुवन ने किवाड खोले और भीतर प्रवेश किया। दीप स्तम्भ पर एक बड़ा दीप उस छोटी सी कोठरी को प्रकाशमान कर रहा था। फूलो की महक दीपक के धुये को घोटती सी जारही थी।

हिमानी ने-नमस्कार के साथ उसका स्वागत किया और दीपक के सम्मुख हो गई। दीपक भुवन के पार्श्व मे पड़ता था। गौरी हिमानी के पीछे परछाही मे परछाही की भांति खड़ी हुई थी। भुवन ने उस पर आँख नही पसारी। हिमानी को पैनी दृष्टि से देखा होठो पर हिलती हुई मुस्कान थी। हिमानी ने अपनी चितवन पर कामुकता को चढ़ाया, अधमुंदी करके सिर को अभिमान के साथ थोडा सा मोड़कर गौरी से कहा,—'किवाड बन्द कर दो।'

गौरी ने किवाड़ अटका दिये। भुवन एक पग आगे बढ़ा। गौरी फिर हिमानी के पीछे आ गई। भुवन ने उसे अभी नही देख पाया था, वालदेव को थोड़ा सा जाचा पड़ताला। एक छोटी ऊँची मञ्चिका पर सोने की कुछ बड़ी सी प्रतिमा फूलो से ढकी हुई थी। उसके इधर उधर कोई भी नही छिपा है भुवन ने एक क्षण मे अनुमान कर लिया। फिर उसने छत को देखा। पक्की थी। वहाँ कोई धोखा नही पाया। जब इधर उधर देखा तो कमरे मे कोई और द्वार नही था कि बाहर से कोई घातक आक्रमण होता। फिर तुरन्त कपिञ्जल पर दृष्टि गई। डाली में फूल लिये नतमस्तक खड़ा था। बहुत अच्छा हुआ—एक से दो हुये—ये यहाँ न भी होते तो परमात्मा भीतर और कमर मे खड्ग तो है!

'ये ही हैं हमारे देवता जिनकी पूजा होनी है।' हिमानी ने वड़ी मधुरता के साथ कहा। रूखे होठो पर धीरे से जीभ का अगला भाग फेर लिया। गौरी दम साधे खड़ी थी। पसली पर एक हाथ था जहा वह छुरी छिपी हुई थी।

'तो करिये आरम्भ पूजा का',—भुवन बोला और उसने बाल की मंचिका पर रक्खे हुये एक बड़े शंख को देखा।

'जैसे ही पूजन समाप्त हुआ मैं इस शंख को फूकूगी। सबको मालूम हो जायगा कि इधर का काम समाप्त हो गया और मण्डप के नीचे का आरम्भ किया जाय। फिर हम दोनों परिक्रमा होम इत्यादि के लिये यहाँ से चलेंगे। पहले आप पूजन करें। केवल दो घुटने टेक कर सिर झुकाना है और फूल चढ़ाने हैं। वह दास लिये खड़ा है। फिर मैं इसी प्रकार पूजा करूँगी और शंख फूक दूंगी।' हिमानी हँसी। गौरी ने अपनी उङ्गलियों से छुरी को फिर टटोला। कपिञ्जल ने टोकनी जरा-सी आगे की जैसे फूल भेंट कर रहा हो—सोच रहा था अभी तुरन्त फेकता हूँ इसे और कही!

'अच्छा',—भुवन ने हँसकर कहा,—'मैं ही आरम्भ किये देता हूँ, परन्तु हमारे यहाँ दोनों घुटने नहीं टेकते। एक ही टेकूंगा।'

'कोई बात नहीं, कोई बात नही',—हिमानी हंसने की चेष्टा करती बोली, 'नेत्र मूद कर कहियेगा कि हिमानी का जीवन सुखी हो। फिर जब मेरी वारी आयगी तब मैं आपके सम्बन्ध मे प्रार्थना करूंगी। बस इतनी-सी है परम्परा हमारी। शेष सब आपकी।'

गौरी हिल पड़ी। अब भुवन की दृष्टि उस पर गई। गौरी नीचे नीचे ही से देख रही थी। भुवन चौका। गौरी यहाँ। मेरे लिये सब प्रकार का उत्सर्ग करने को तैयार!! इसकी रक्षा अब सहज है। भुवन ने अपने को तुरंत संयत किया। उसका साहस चौगना हो गया। गौरी ने आँखें उठाईं। ये आँखें क्या गाय चराने वाली की है? इनसे तो शक्ति वरस रही है। गौरी ने अपनी दृष्टि हटाकर छिपी हुई छुरी पर डाली। हिमानी ने मुड़कर देखा।

'स्वस्थ हो न?' हिमानी ने पूछा।

'बिलकुल', गौरी ने बहुत मन्द स्वर में कहा जैसे रुई के गद्दे मे छिपा हुआ खंड बोला।

हिमानी भुवन के सम्मुख हुई। बोली, 'आप कुछ चौंके तो मैं समझी कि कही रेवती को कुछ हो तो नही गया है—यह कभी-कभी यकायक बीमार पड़ जाती है।' हिमानी को आशङ्का हुई थी कि गौरी ने असमय ही छुरी बाहर न निकाल ली हो! भुवन के साधारण से उत्तर पर सन्तुष्ट हो गई—'रथ में देर तक बैठे-बैठे गर्दन की नस जकड़ गई थी उसी को ठीक किया।'

'मूहूर्त निकला जा रहा है, आरम्भ करिये', हिमानी ने स्नेहाग्रह किया।

'नही निकल पावेगा', भुवन ने एक घुटना टेका सिर थोड़ा सा झुकाया एक हाथ हिमानी के भीषण प्रयत्न के रोकने और दूसरा तलवार पर पहुँचने के लिये सन्नद्ध हुआ।

हिमानी ने अपनी तौल सम्भाली। उसका नथना ऊपर को बेतरह सिकुड़ा। भुवन ने एक क्षण के बहुत छोटे से खण्ड में देख लिया कि हिमानी के बराबर कुरूपा कदाचित् ही कोई स्त्री हो। हिमानी की छुरी निकल पड़ी। वह हुमककर छुरी को भुवन की पीठ के आरपार भेजना चाहती थी। परन्तु गौरी की छुरी पहले ही खिच आई थी। गौरी ने प्रचण्ड वेग के साथ हिमानी की छुरी वाली बाहँ को अपनी बाहँ मे लपेट कर जोर का झटका दिया। हिमानी चक्कर खा गई। गौरी ने इतने वेग के साथ उसे अपने घुटने की हूल दी कि हिमानी औंधी जा पड़ी। दोनों छुरियाँ दीपक के प्रकाश में चमक गईं—कोई इस दिशा मे कोई उस दिशा मे। गौरी की छुरी उस प्रयास में छूटकर गिर गई। वह हिमानी की पीठ पर चढ़ बैठी। कपिञ्जल ने फूलो की डाली फेक दी और वह भुवन के पास आ खड़ा हुआ। भुवन उछल कर खड़ा हो गया था। उसने वस्त्र मे से एक छोटी सी तुरही निकाली और फूंकी। बाहर भी तुरहियों के फूंके जाने का शब्द हुआ।

उसी समय हिमानी ने कहा,—'रेवतिया—रेवतिया चुड़ैल, यह क्या पागल हो गई है!'

गौरी ने वेद को देखते ही पहिचान लिया। नमस्कार करके सिर झुका लिया। वेद ने नमस्कार का उत्तर सिर नवाकर दिया।

'यही हैं वह! यही तो हैं वह!!' वेद ने भुवन से धीरे से कहा।

'चुप! चुप!! ठहरो भी वेद।' भुवन ने रोका। वेद को कुछ कहे बिना चैन कहाँ? कपिञ्जल को धन्यवाद देने लगा,—'योगिराज धन्य हो!'

मेघ की नीची निगाह ऊपर को हुई, परन्तु उसने कपिञ्जल को पहिचान नहीं पाया।

नील के मुंह से आह के साथ निकला,—'मैं यों ही मारा गया! मिट गया!!' और वह अचेत होने को हुआ।

मेघ को उस पर क्रोध आया,—इसी ने कोई बड़ी भूल कर डाली है जिस कारण यह सब नष्ट हो गया और कुछ बरबराया जैसे शाप देने के लिये कोई मन्त्र पढ़ रहा हो!

बाहर से फिर वही पुकार हुई,—'मार दो हत्यारों को!'

'क्या कहना है आचार्य मेघ आपको?' सोम ने चुनौती दी।

दीर्घबाहु बँधा हुआ होने पर भी इस प्रकार फड़क रहा था जैसे किसी पशु ने नशा किया हो। परन्तु आरुणि सतर्क था।

मेघ अडिग था। बोला, 'हमने किया ही क्या है? रोमक ने राज्य की पुनः प्राप्ति और नील का धन हरण करने के लिये यह सब जाल रचा है!'

वेद ने व्यङ्ग कसा,—'पशुओं वाले घर में वे हथियारबन्द योद्धा हमी लोगों ने तो इकट्ठे किये न।'

'हिमानी के हाथ में छुरी किसने पकड़ाई थी?' आरुणि ने प्रश्न किया।

उस समय दो परिचारिकाओं के साथ वहाँ ममता आ गई। उसको घटना का समाचार अविलम्ब मिल गया था।

भुवन ने उसके पैरो मे माथा टेका । फिर गोरी ने उसी प्रकार प्रणाम किया । ममता ने गोरी को अपने हृदय से लगा लिया । कहा—'बेटी, तुम्हें कोई चोट तो नही आई है ?'

'नही माता जी ।'

सोम ने मेघ से कहा—'कुछ कहना है ? दण्ड की व्यवस्था की जा रही है ।'

उसने गुर्राकर उत्तर दिया,—'मैं निर्दोष हूँ । मैंने कुछ नही किया । मुझे दण्ड देने वाला रौरव नरक में जायगा ।'

भुवन हँस पड़ा,—'माता जी, इनमें से कोई भी अपने कुकर्म को स्वीकार करने के लिये तैयार नही ।'

'कोई पक्का प्रमाण चाहते होगे', ममता ने कहा ।

रोमक की दृष्टि सहसा कपिञ्जल पर गई । कपिञ्जल आगे आया । बोला,—'प्रमाण है ।'

'कहां है ?' मेघ ने चुनौती दी ।

आपकी छाती पर ही भूत की तरह पाप का वह प्रमाण सवार होगा ।'

मेघ के बँधे हुये हाथ यकायक उसकी छाती की ओर उठ गये ।

कपिञ्जल ने भुवन से कहा, 'ले लीजिये राजकुमार प्रमाण को अपने हाथ में । वही है, वही है !'

झपटने ने लिये भुवन के पैर उठे । रोमक वर्जित करके बढ़ा । मेघ की वही दशा हुई जो जङ्गली बिल्ली की चारो ओर से घिर जाने पर होती है । रोमक ने मेघ की उत्तरीय के नीचे से वह पत्र निकाल लिया और उसे चिल्ला-चिल्लाकर पढ़ा—'दीर्घबाहु मान गये हैं । आप सबका साथ देंगे । रोमक और भुवन को समाप्त करके फिर आपकी सहायता से सामन्त्र-तन्त्र की स्थापना होगी । ठोस होकर आ जाइये । हिमानी सब काम कुशलता के साथ कर रही है और करेगी ।'

'सेवक नील । सेवक दीर्घबाहु ।'

'रेवतिया नहीं, गौरी ! चण्डी !!' गौरी की हाँफ मे से निकला।

कपिञ्जल ने किवाड़ खोल दिये।

सङ्गीत बन्द हो गया था—आँगन का और बाहर मण्डप का भी। यहा स्त्रियाँ इधर-उधर भाग उठी थीं, क्योंकि मेघ को सोम ने जकड़ लिया था, नील को रोमक ने और दीर्घबाहु के खड्ग से आरुणि का खड्ग टकरा उठा था। बाहर कोलाहल मच गया।

वेद और कल्पक ने पशुशाला के किवाड़ों की साँकल बाहर से चढा दी। कपिञ्जल के सहवर्गी उन दोनो के पास आकर इकट्ठे हो गये। मंडप के नीचे जो थोड़े से बराती थे, वे तलवारें निकालकर पैंतरे बदल रहे थे। मेघ के सहवर्गी सब चौपट हुआ जानकर इधर-उधर खिसके। गाने-नाचने वाले और तमाशा देखने वाले सिर पर पैर रखकर भागे।

पशुशाला के भीतर सामन्त बन्द हो चुके थे। बाहर निकल पडने के प्रयत्नों मे वे पशुओं से जा भिड़े। पशुओ ने घबराकर अपने रस्से तोड़ डाले। पशु उन योधाओं में और योधा उन पशुओं में उलझते फिरे। किसी पर गधे और खच्चर की दुलत्ती पड़ी, किसी को गाय-भैंस के सीगों की ठोकर मिली! बाहर भीतर त्राहि त्राहि सी मच उठी।

आँगन वाले मण्डप के नीचे आरुणि ने दीर्घबाहु को निशशस्त्र करके दबोच लिया।

बाल कोठरी में कपिञ्जल ने भुवन से अनुरोध किया,—'वहां जाओ, मण्डप के नीचे। यहाँ मैं हूँ।'

भुवन ने कहा, 'हिमानी के हाथ पीछे से बाँध लो। छुरी अब भी लिये है। गौरी, सावधान।' भुवन बाहर आ गया।

गौरी ने कपिञ्जल के फेंटे से हिमानी के हाथ पीछे कस दिये। उसकी छुरी छीन ली गई। वे दोनो उसे मण्डप के पास ले आये। वह एक आसन पर धम्म से बैठे कर लेट गई। गौरी के पैर थक गये थे। हाथ में अपनी छुरी लिये हुये उसके पास बैठ गई। हिमानी सासें भरने लगी।

कपिञ्जल भुवन के निकट आ गया ।

नील, मेघ और दीर्घबाहु बाँध लिये गये ।

रोमक ने नील को धिक्कारा,—'यह है तेरे देवता की पूजा ! ब्याह का ढोग रच के हम सब का वध कराना चाहता था ! ! अपनी पुत्री को इस भीषण षड़यन्त्र मे डालने के समय तुझे लाज न आई नीच ! ! ! और क्यो रे मेघ ! कहता था नील की इस परम्परा की साधना पहले होगी, ब्याह पीछे !'

मेघ की मूर्छा में रोमक का व्यङ्ग तीर की तरह जा चुभा ।

हिमानी चिल्लाई—'चुड़ैल ! डायन ! !'

'हुँ !' गौरी के सूखे गले से तीखेपन के साथ फुफकार निकली । रोमक उसके पास तुरन्त आया ।

'बेटी गौरी'—रोमक का गला रुद्ध हो गया था,—'बेटी, धन्य है यह देश जहाँ तुम्हारी सरीखी नारियां जन्म लेती रही हैं !' उसने गौरी के सिर पर हाथ फेरा,—'तुम मुझे भुवन से भी अधिक प्यारी हो बेटी !'

गौरी ने धीरे-से उठकर चुपचाप उसके पैर छुये ।

बाहर हल्ला हुआ,—'नील और हिमानी को समाप्त कर दो ! पापी मेघ भी न बचने पावे !!'

इतने में हाथ में तलवार लिये हुये वेद आ गया । आते ही चिल्लाया,—'पशुओ वाले घर में मेघ के बिना सीग पूंछ के पशु, सब के सब, बन्दी कर लिये गये हैं । कड़ा पहरा बिठला आया हूँ । बाहर किसी प्रकार का संकट नही ।'

'धन्य हो तुम सब ।' रोमक ने प्रसन्न होकर वेद को गले लगा लिया ।

वेद भुवन के पास जा खडा हुआ । हिमानी की ओर देखकर बोला, 'ये होने जा रही थी अयोध्या की रानी महारानी !'

हिमानी के सिर की फूल-मालायें टूट कर धरती पर बिखर गई थीं ।

गौरी ने वेद को देखते ही पहिचान लिया। नमस्कार करके सिर झुका लिया। वेद ने नमस्कार का उत्तर सिर नवाकर दिया।

'यही है वह ! यही तो हैं वह !!' वेद ने भुवन से धीरे से कहा।

'चुप ! चुप !! ठहरो भी वेद।' भुवन ने रोका। वेद को कुछ कहे बिना चैन कहाँ ? कपिञ्जल को धन्यवाद देने लगा,—'योगिराज धन्य हो !'

मेघ की नीची निगाह ऊपर को हुई. परन्तु उसने कपिञ्जल को पहिचान नही पाया।

नील के मुह से आह के साथ निकला,—'मैं यों ही मारा गया ! मिट गया !!' और वह अचेत होने को हुआ।

मेघ को उस पर क्रोध आया,—इसी ने कोई बड़ी भूल कर डाली है जिस कारण यह सब नष्ट हो गया और कुछ बरबराया जैसे शाप देने के लिये कोई मन्त्र पढ़ रहा हो !

बाहर से फिर वही पुकार हुई,—'मार दो हत्यारों को !'

'क्या कहना है आचार्य मेघ आपको ?' सोम ने चुनौती दी।

दीर्घबाहु बँधा हुआ होने पर भी इस प्रकार फड़क रहा था जैसे किसी पशु ने नशा किया हो। परन्तु आरुणि सतर्क था।

मेघ अडिग था। बोला, 'हमने किया ही क्या है ? रोमक ने राज्य की पुनः प्राप्ति और नील का धन हरण करने के लिये यह सब जाल रचा है !'

वेद ने व्यङ्ग कसा,—'पशुओ वाले घर मे वे हथियारबन्द योद्धा हमी लोगो ने तो इकट्ठे किये न।'

'हिमानी के हाथ में छुरी किसने पकड़ाई थी ?' आरुणि ने प्रश्न किया।

उस समय दो परिचारिकाओं के साथ वहां ममता आ गई। उसको घटना का समाचार अविलम्ब मिल गया था।

भुवन ने उसके पैरों मे माथा टेका । फिर गौरी ने उसी प्रकार प्रणाम किया । ममता ने गौरी को अपने हृदय से लगा लिया । कहा—'बेटी, तुम्हे कोई चोट तो नही आई है ?'

'नही माता जी ।'

सोम ने मेघ से कहा—'कुछ कहना है ? दण्ड की व्यवस्था की जा रही है ।'

उसने गुर्राकर उत्तर दिया,—'मैं निर्दोष हूँ । मैंने कुछ नही किया । मुझे दण्ड देने वाला रौरव नरक में जायगा ।'

भुवन हँस पड़ा,—'माता जी, इनमें से कोई भी अपने कुकर्म को स्वीकार करने के लिये तैयार नही ।'

'कोई पक्का प्रमाण चाहते होगे', ममता ने कहा ।

रोमक की दृष्टि सहसा कपिञ्जल पर गई । कपिञ्जल आगे आया । बोला,—'प्रमाण है ।'

'कहां है ?' मेघ ने चुनौती दी ।

आपकी छाती पर ही भूत की तरह पाप का वह प्रमाण सवार होगा ।'

मेघ के बँधे हुये हाथ यकायक उसकी छाती की ओर उठ गये ।

कपिञ्जल ने भुवन से कहा, 'ले लीजिये राजकुमार प्रमाण को अपने हाथ मे । वही है, वही है !'

झपटने ने लिये भुवन के पैर उठे । रोमक वर्जित करके बढ़ा । मेघ की वही दशा हुई जो जङ्गली बिल्ली की चारो ओर से घिर जाने पर होती है । रोमक ने मेघ की उत्तरीय के नीचे से वह पत्र निकाल लिया और उसे चिल्ला-चिल्लाकर पढ़ा—'दीर्घबाहु मान गये हैं । आप सबका साथ देंगे । रोमक और भुवन को समाप्त करके फिर आपकी सहायता से सामन्त्र-तन्त्र की स्थापना होगी । ठोस होकर आ जाइये । हिमानी सब काम कुशलता के साथ कर रही है और करेगी ।'

'सेवक नील । सेवक दीर्घबाहु ।'

'अब अपने घर चलना चाहिये। नगर वाले जहा तहां उत्सुक होकर इकट्ठे हो रहे होंगे। वे हम सबकी कुशल का समाचार जानने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। सम्भव है कुछ लोग मारकाट की तैयारी कर रहे हों, उनसे भी निबटना पड़ेगा।'

गौरी ने ममता से धीरे से कहा, 'मैं कोठरी में से अपना सामान उठा लाऊँ ?'

'मैं सहायता किये देता हूँ।' कपिञ्जल बोला। वेद ने तुरन्त टोका, 'तुम क्यों ? भुवन जायेगा उनके साथ।' आरुणि देर से चुप था। उसने सोचा मुझे भी कुछ कहना चाहिये,—'हां हां ठीक तो है—' आगे कुछ नहीं कह सका। ममता ने भुवन को हाथ का संकेत किया—चले जाओ।

गौरी के पीछे पीछे भुवन गया।

गौरी की कोठरी में दीपक नही जल रहा था। पूर्व दिशा की खिडकी मे होकर पूर्णिमा के चन्द्र की किरणें बरस सी रही थीं।

'मैंने तुमसे उस दिन मुंह फेर लिया था और फिर टेकड़ी पर बैठा जब भूख के मारे पत्ते चबाकर खा रहा था और तुम मेरे लिये पके आम लाईं मैं निठुरता के साथ भाग गया ! मुझे बड़ा क्लेश रहा।'

'मैंने भी तो उस दिन पीठ फेरली थी जब अन्न नीचे गिरकर बिखर गया और तुम बीनने लगे। तुम्हे क्या हो गया था ? मैं आज तक न समझ पाई !'

'हो क्या गया था—कुछ भी नही। गुरुदेव को मेरे तुम्हारे प्रेम की बात मालूम हो गई तो उन्होने निषेध का अनुशासन दो वर्ष के लिये रख दिया ! मुझे अपने सुधार के लिये मानना पड़ा।'

'तुमने मुझे बताया क्यो नही ?'

'बात करने और सिर ऊपर उठाने तक की मनाई थी।'

'ओ भगवान ! आज मालूम हो प[illegible] मैं यों ही चिन्ता मे इतने दिनों धधकती[illegible]

'कहिये और भी किसी प्रमाण की आवश्यकता है ?'

वेद से न रहा गया,—'आपके वे योद्धा जो अयोध्या जनपद का राज्य करने यहाँ आये थे पशुशाला मे गधो और खच्चरों के आदेशों पर नाच रहे हैं !'

दीर्घबाहु के मुंह से निकला,—'आचार्य ! और—ऐसी नासमझी !!'

मेघ सन्न रह गया। परन्तु वह सूखे पेड़ की तरह अब भी अकड़ा खड़ा था।

दण्ड की व्यवस्था होने लगी। उन सब को प्राणदण्ड देने की बात उठी। रोमक राजा नही था इसलिये बन्दीगृह मे डाल रखने की चर्चा हुई।

सोम ने कहा,—'जब तक राजा को फिर से गद्दी नही मिली शासक मण्डल का सदस्य मैं तो हूँ। मैं दण्ड देता हूँ।'

'इन्हे दण्ड देने के पहले मुझे नील का रिन चुका लेने दीजिये,'—कपिञ्जल ने विनय की।

नील सचेत हो गया। कपिञ्जल ने उसके सामने जाकर अपने कपड़े के छोर से सोने के सिक्के खोले और नील के सामने रख दिये,—'मैं आपका दास कपिञ्जल आज उऋण हुआ।'

'कपिञ्जल ! ओफ !!' नील और मेघ के कण्ठों से एक साथ निकला। मेघ के आहत अभिमान ने उसे ऐसा झकोरा जैसे सूखे पेड़ को आंधी का बवण्डर उखाडे डाल रहा हो। 'कपिञ्जल ! धूर्त !! हाय !!!' हिमानी के होठो पर से भी छूटा, परन्तु कराह के साथ।

फिर कपिञ्जल बोला,—'मैं प्रार्थना करता हूँ कि इनको प्राणदण्ड न दिया जाय। ये अपने स्वभाव के दास हुये हैं जो बड़ी कठिनाई से बदलता है।'

'एक बढ़िया और सुन्दर दण्ड का सुझाव देता हूं'—वेद ने उल्लास के साथ कहा,—'इसी मण्डप के नीचे अभी अभी भुवन और गौरी का

'अब अपने घर चलना चाहिये। नगर वाले जहा तहां उत्सुक होकर इकट्ठे हो रहे होंगे। वे हम सबकी कुशल का समाचार जानने की प्रतीक्षा कर रहे होगे। सम्भव है कुछ लोग मारकाट की तैयारी कर रहे हों, उनसे भी निबटना पड़ेगा।'

गौरी ने ममता से धीरे से कहा, 'मैं कोठरी में से अपना सामान उठा लाऊँ?'

'मैं सहायता किये देता हूँ।' कपिञ्जल बोला। वेद ने तुरन्त टोका, 'तुम क्यो? भुवन जायेगा उनके साथ।' आरुणि देर से चुप था। उसने सोचा मुझे भी कुछ कहना चाहिये,—'हां हां ठीक तो है—' आगे कुछ नही कह सका। ममता ने भुवन को हाथ का संकेत किया—चले जाओ।

गौरी के पीछे पीछे भुवन गया।

गौरी की कोठरी मे दीपक नहीं जल रहा था। पूर्व दिशा की खिड़की मे होकर पूर्णिमा के चन्द्र की किरणें बरस सी रही थीं।

'मैंने तुमसे उस दिन मुह फेर लिया था और फिर टेकड़ी पर बैठा जब भूख के मारे पत्ते चबाकर खा रहा था और तुम मेरे लिये पके आम लाईं मैं निठुरता के साथ भाग गया! मुझे बड़ा क्लेश रहा।'

'मैंने भी तो उस दिन पीठ फेरली थी जब अन्न नीचे गिरकर बिखर गया और तुम बीनने लगे। तुम्हे क्या हो गया था? मैं आज तक न समझ पाई!'

'हो क्या गया था—कुछ भी नही। गुरुदेव को मेरे तुम्हारे प्रेम की बात मालूम हो गई तो उन्होंने निषेध का अनुशासन दो वर्ष के लिये रख दिया! मुझे अपने सुधार के लिये मानना पड़ा।'

'तुमने मुझे बताया क्यों नही?'

'बात करने और सिर ऊपर उठाने तक की मनाई थी।'

'ओ भगवान! आज मालूम हो पाया मुझे!! मैं यों ही चिन्ता में इतने दिनो धधकती रही!!!'

'अब सब भूल जाओ। परमात्मा को धन्यवाद देकर घर जाओ। हम तुम सब मिल कर स्वराज्य के लिये सदा प्रयत्न करते रहें—यतेमहि स्वराज्ये।'

गौरी ने भी दुहराया—'यतेमहि स्वराज्ये।'

फिर दोनों ने पूर्व दिशा की ओर मुंह करके हाथ जोड़कर प्रार्थना की। उन दोनों के मुखों की आभा एक दूसरे से होड़-सी लगा रही थी। चन्द्रमा उस आभा पर अपनी किरणों की मुस्कानें बिखेर-बिखेरकर हंस रहा था।

+ × ×

गौरी अपनी पोटली लेकर भुवन के पीछे पीछे आई। पोटली एक ओर रखकर उसने रोमक के पैरों पर सिर रक्खा। रोमक का अशीर्वाद विकल होकर कण्ठ तक आया, परन्तु उसे स्वर नहीं मिल पाया—गला रुंध गया था। आंखों के आंसुओं में होकर झर पड़ा और गौरी के केशों मे जाकर रम गया। रोमक उसके सिर पर वरदहस्त फेरने लगा। गौरी धीरे से खड़ी हुई। मुड़कर उसने अपने अञ्चल में से सोने के खण्ड निकाले और रोमक के पैरों के निकट रख दिये। हाथ जोड़कर नतमस्तक खड़ी हो गई।

विस्मय और भ्रान्ति के सन्नाटे में कठिनाई के साथ रोमक के मुह से टूटे स्वर में निकला,—'यह क्या बेटी?'

'मेरे पिता पर ऋण था—उसे—,' गौरी आगे कुछ न कह सकी। ऋण था और ऋण पर इतने वर्षों का व्याज! इसे वह किस भाषा में कहती?

'ऋण कैसा?···कब का?' वैसे ही स्वर में रोमक ने पूछा।

धीरे से गौरी ने उत्तर दिया,—'जब वे अयोध्या से नैमिषारण्य जाने को थे, उन्होंने अन्न और वस्त्र लिया था।'

अब आया स्मरण—रोमक हंस पड़ा। उसकी हंसी आंसुओं से भीग गई। गद्गद् हो गया। सोम मुस्कराया। वेद और कल्पक स्तम्भित हो

गये। ममता ने पीठ फेरकर अपनी आंखें पोंछी। भुवन के मन में विजय का उल्लास, विनय का अभ्यास और उमङ्ग का उन्मेष द्वन्द्व मचा उठे—पुलक पर पुलक आने लगे। कपिञ्जल नेत्र मूंदे कोई जप-सा करने लगा। बाहर अब भी हल्ला हो रहा था। भीतर की निश्शब्दता ने उससे कुछ क्षण होड़-सी लगाई।

थोड़े ऊँचे स्वर में रोमक बोला, 'बेटी तुम्हारे माता-पिता हमको और हमारे वंश को जो कुछ दे गये हैं उसके लिये हम परमात्मा के चिर-ऋणी रहेंगे।'

गौरी के पैर कांपने लगे—उस रात में पिता का अन्तिम आदेश कानों में गूंज गया। यदि इन्होंने स्वर्ण न लिया तो—तो मैं क्या करूँ? कैसे करूं? अस्फुट पवित्रता के भीतरी लावण्य की मञ्जुलता, बीती के विषाद की करुणा और वर्तमान की निरूपमता ने गौरी की आंखों को और भी झुका दिया जैसे नीचे दूर पाताल में से कुछ खोज रही हो।

सोम ने हँसकर रोमक से कहा, 'उठा लीजिये स्वर्ण। गौरी के मन को पूरा आनन्द तभी मिलेगा।'

रोमक ने उठा लिये और गौरी पर न्योछावर करके बाहर आकर कपिञ्जल के साथियों में वितरित कर दिये।

× × ×

एक दिन आया जब गौरी भुवन का विवाह होम-हवन के मन्त्रों के बीच सम्पन्न हुआ, और, जनपद-समिति ने कल्याणकारी शासन की परम्परागत सौगन्ध लेकर रोमक को राज्य लौटा दिया।